प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी

[सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी

डॉ० गजानन शर्मा





रचना प्रकाशन

४५-ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद-१

विषय सूची

छ. रामायण काल में नारी।

गृहस्थ, आश्रम, परिवार। कन्याओं की स्थिति, कुमारियों की मांगलिकता, कन्या, माता-पिता की चिन्ता का कारण, कन्या का त्याग। नारी शिक्षा। विवाह, विवाह की आयु, विवाह में प्राथमिकता, विवाह के लिए प्रशस्त कन्या, विवाह के प्रकार, विवाह-प्रणाली, दहेज और स्त्री धन। बहु पत्नित्व, सपत्नियों में ईर्ष्या, देश के धन का अपव्यय, एक पत्नीव्रत, बहुपतित्व। वैवाहिक सम्बन्धों में कटुता, विवाह-विच्छेद या पत्नी का त्याग। प्रणयोपासना। उद्दीपक सुरा, यौनवृत्ति की अदम्यता, दाम्पत्य प्रेम में वासना का अंश, प्रेम और काम का आदर्श। विवाह का आदर्श और लक्ष्य, काम और प्रेम के विषय में नीति वाक्य, अन्तर्जातीय विवाह। नारी, वधू रूप में नारी, पत्नी रूप में, धार्मिक क्रियाकलापों में सहयोगी और पूरक पातिव्रत्य का आदर्श, पति सेवा, गृहस्थी की आन्तरिक अवस्था, वस्त्राभूषण, पत्नी का एक मात्र श्रृंगार, पत्नी-प्रेम, पति-हित व्रतचर्या, आदर्श पत्नी, प्रोषितभर्तृका की रीति नीति। स्त्री का ओज-तेज-आक्रोश, नारी की शासन-सम्बन्धी योग्यता। अंतःपुर का जीवन, रहन सहन। पत्नी के प्रति पति के कर्त्तव्य, स्त्री संरक्षण में रहे, पर्दाप्रथा, स्त्री: पति की निजी सम्पति, पत्नी को तुच्छ समझना, नारी-स्वातन्त्र्य, कन्याओं का उन्मुक्त विचरण, बड़े बूढ़ों के समक्ष, आश्रमों में न्यायालय में। नारी-अपहरण, अपहृत नारियां। गणिका। मातृत्व : नारी की चरम परिणति, पिता की प्रधानता। वन्ध्यत्व। वैधव्य, राक्षसों और वानरों में विधवाओं का पुनर्विवाह। राक्षसों में विधवा का परपुरुष गमन। आर्यों में देवर-भाभी सम्बन्ध। सती-प्रथा। नारी-स्वभाव-निन्दा। उपसंहार।

ज. महाभारत काल में नारी।

महाभारत में कन्या, स्त्री शिक्षा, कन्यादर्शन की मांगलिकता, कन्याओं का आत्म त्याग, कन्याओं का अक्षत योनित्व, विवाह के प्रकार, पत्नी का सम्मान, भार्या का भरण, पत्नी का रक्षण, पत्नी का ताडन, अथवा वध, पत्नी का पति पर प्रभाव, पति-सेवा, स्त्रीत्व की महिमा, स्त्री-जाति की निन्दा, भार्योपजीवी की निन्दा, पत्नी का विनियोग, स्त्री के प्रति हीन विचार।

झ. स्मृति काल में नारी।

पत्नी का सम्मान, पत्नी के कर्त्तव्य, पति-सेवा, सतीत्व की महिमा, यौन-नैतिकता का मानदण्ड, यौन नैतिकता का दुहरा मानदण्ड, स्त्री की अवध्यता, पत्नी की ताड़न, पत्नी का रक्षण, स्त्री-जाति की निन्दा,

भार्योपजीवी की निन्दा, स्त्रियों का अनयन-निषेध, स्त्रियों के लिए यज्ञ-निषेध, कन्याओं का अक्षत-योनित्व, कन्या-दर्शन का मंगलत्व, नारी-सम्मान, माता, माता का सम्मान, व्यास स्मृति, स्त्री सम्पत्ति की मालिक, नारी निन्दा, स्मृतिकाल मे परिवार और स्त्री की स्थिति पति-पत्नी सम्बन्ध, पत्नी के अधिकार भरण-पोषण पाने का अधिकार साम्पतिक अधिकार।

ट. पुराणों मे नारी।

कन्या, पतिव्रता, पति सेवा और आज्ञा पालन, नारी दूषित नहीं होती, सतीत्व-महिमा।

ठ. बौद्धकाल मे नारी।

सती महिमा, बौद्ध काल मे सास-बहू सम्बन्ध, सास-बहू कलह, माता-पिता की महिमा, बाद्धधर्म संघो मे स्त्रियों का स्थान, भिक्षुणिया,

ड. संस्कृति साहित्य मे नारी-चित्रण

दिव्यावदान। आर्य शूर। भास। चाणक्य नीति। शुक। कालिदास। कुमार सम्भव, रघुवंश-माता रूप मे नारी, कन्या रूप में नारी, पत्नी मेघदूत, शृंगार तिलक, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयम, अभिज्ञान-शकुन्तलम्। अश्वघोष-बुद्ध चरित्र। शंकराचार्य। हाल की सतसई। भवभूति। मयूर। राजशेखर। दिङ्नाग। श्री हर्ष। नेमिदूत। भारवि कुमारदास। माघ। जयदेव। धोयी। उमापतिधर। शिवदास। मेण्ठ। शिवस्वामिन दामोदर गुप्त। ज्ञानेन्द्र। सोमप्रभ। भट्ट उर्वीधर। वैनतेय। बृहत्संहिता। हितोपदेश। गुणाढय वृहत्कथा, नर वाहनदत्त। वैतालपंचविंशतिका। शुकसप्तति। दशकुमार चरितम्। सुबन्धुकृत वासवदत्ता। प्रबंधचिन्तामणि। बाण; हर्षचरित। चम्पू। शृंगार शतक। राजतरंगिणी। भोज प्रबंध। पंचतंत्र।

ढ. अपभ्रंशकाल में नारी चित्रण।

ण. नाथ सिद्ध साहित्य मे नारी।

सामान्य जीवन, जादू टोने, चमत्कारो पर विश्वास, मानव-बलि, वामाचार के पंचमकार, सिद्ध साहित्य का काव्य पक्ष, वज्रयानी शब्द, खसम की मृत्यु और उस पर उल्लास, सुरति; मुद्रा, तान्त्रिक गुह्याचारो का निर्गुण सम्प्रदाय पर प्रभाव, गुरू गोरखनाथ का निर्गुण सम्प्रदाय पर प्रभाव, शाक्तों की निन्दा, डाकिनी, योगिनी, सास-ससुर आदि शब्द, सिद्धो और सन्तों मे अन्तर,

त. खुसरो के समय मे नारी।

प्रथम अध्याय
सौन्दर्य तत्त्व एवं नारी

लज्जावासो, भूषणं शुद्ध शीलं,
पादक्षेपो धर्म मार्गे च यस्याः,
नित्यं पत्युः सेवनं, मिष्ट वाणी
धन्या सा स्त्री पूतयत्येव पृथ्वीम्।

मानव जीवन का लक्ष्य—

विकासवाद की दृष्टि से देखा जाय अथवा पौराणिक विवेचन का आश्रय लिया जाय, यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि मानव किसी मूल इकाई से अवतरित, निर्मित या विकसित हुआ है। चाहे हम यह मान लें कि वह एक 'कोष्ठाणु' से विकसित होता हुआ इस रूप को प्राप्त हुआ है, अथवा यह कि उसे परमात्मा ने अपने ढाँचे में ढाला है—यह बात ज्यों-की-त्यों स्थिर है कि मानव की मूल चेतना एकत्व की ओर ही अनुवृत्त रहती है। अपने मूल एकत्व की खोज में उसकी भावना निरंतर व्यग्र रहती है। विश्व की अनेकानेक रंगीनियों से उसका रागाकुल आकर्षण इसी अन्तर्निहित मूल वासना का परिणाम है। विभिन्न अवस्था विशेषों में उसका अनुराग विभिन्न लक्ष्यों को त्यागता और ग्रहण करता चलता है और प्रायशः वह किसी भी सांसारिक वस्तु पर अपने राग का स्थायित्व नहीं कर पाता इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेकत्व में एकत्व को खोजने की मूल वृत्ति तब तक संतुष्ट नहीं हो सकती, जब तक वह अपने मूलाधार की अनुभूति न कर ले। विश्व के समस्त दर्शनों का यही लक्ष्य है। इसी का सम्यक् ज्ञान सत्य की प्राप्ति है।[1]

आनन्द की प्राप्ति :—अनेकत्व में एकत्व का दर्शन ही आनन्द की प्राप्ति है। अपने राग को अनेकधा बिखेर कर भी मानव को तब तक तोष या तृप्ति नहीं हो सकती, जब तक कि वह परम एक की प्राप्ति न कर ले। अतः तात्विक विचारणा का निष्कर्ष यही है कि मानव का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति ही है। भारतीय दर्शन का प्रकाश्य-शब्द 'सच्चिदानन्द' भी यही प्रतिपादित करता है कि मूल सत्ता के परिज्ञान के अनन्तर ही आनन्द की उपलब्धि होती है, और परमात्म तत्व में आनन्द की प्रमुखता है। अपनी शारीरिक, भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रवृत्तियों में मानव अपने किसी अभाव को भरना चाहता है, और ये सब प्रयत्न—चाहे वे सांसारिकता में उलझे, बिरमे या भटके हुए ही हों—मूलतः आनन्द-

1. 'We know that according to Plotinian metaphysics, spirit is the direct emanation of the One...It is also on this metaphorical conception that the conception of love that draws soul to Beautiful (spirit) and the latter to the One is based.'—Western Aesthetics (page 132-3) by K. C. Pandey.

न्वेषण के प्रयास है।[1] मानव का रुदन और हास, खगकुल का किटकिट और कलरव, कोयल की हूक और कूक, वनचरो का रोर और शोर, एवं जलचरो की कलबल और हलचल सभी उनकी आनंद-लिप्सा के भावाभाव पक्ष की अभिव्यक्तियां है।

समाज का लक्ष्य भी आनंद-प्राप्ति है। व्यष्टिश: मानव का जो भावनागत लक्ष्य है, वही समष्टिश भी उसका लक्ष्य होगा ही। अतः समस्त मानव-समाज का भी चरम लक्ष्य आनन्दोपलब्धि ही है। और यही कारण है कि मानव ने इसकी सम्प्राप्ति के हेतु सम्मिलित प्रयत्न किये है। ललित कलाओ के समस्त विकास उसकी इसी अभिलाषा के पूरर्थ्थे हुए हैं। इतना ही नही, उसने भौतिक उपयोग की निर्मितियों के लिए भी कलाओ का प्रश्रय लिया और ऐसी दक्षता को उपयोगी कला से अभिहित किया। सुरम्य उपवन, आवास, देवालय, चित्र आदि तो उसके आनन्द के साधन है ही, उसके दृष्टि क्षेत्र मे आने वाली तुच्छ से तुच्छ वस्तु को भी उसने आनन्दप्रद रूप देकर ही सतोष किया है।

सौन्दर्य से आनन्द लाभ .—ललित और उपयोगी कलाओ के माध्यम से मनुष्य जो आनन्द प्राप्त करता है, उस पर यदि हम विचार करें, तो यह ज्ञात होगा कि ऐसे पदार्थों में एक मनोरम सुन्दरता का आधान किया जाता है। उदाहरण के लिए मेज पर कागजो को दाब कर रखने का कार्य एक बेडौल पत्थर से ही लिया जा सकता था, किन्तु मानव ने जो सुडौल कागज-दाब बनाया है, वह रंग-बिरंगी पुष्पाकृतियो से हृदयाभिराम हो गया है। ऊषा का हास, सुमनो का उल्लास, निशिकर की जगर-मगर, समीरण की सरसर, लहरियों का नर्तन और भ्रमरियो का नि.स्वन ऐसे प्रकृति सौन्दर्य से जैसे मानव आनन्दित होता है, वैसे ही उसने अपनी ही कृतियो में भी सौन्दर्य समाविष्ट करके उन्हे आनन्द का साधन बनाया है। यही कारण है कि रगो की रंगरेली और काट-छाट की अठखेली ने अनगिन 'डिजाइनो

---

१. प्रो० श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' के 'कला और सौन्दर्य' लेख से—"सहज आकर्षण, सहज सौन्दर्य, आत्मा की सहज आनन्द वृत्ति है—सच्चिदानन्द का स्फुरण व्यापार है। यह न हो तो विश्व का सचरण बन्द हो जाए, सृष्टि बन्द हो जाए। कला इस सहज वृत्ति की सहज विकृति है, क्योंकि आनन्द व्यापार का अधिक से अधिक विस्तार ही सच्चिदानन्द की अंतिम कोटि की लक्ष्य सिद्धि है।" पृष्ठ ४।

... ...

'सौन्दर्य-भावना आनन्द रूप ब्रह्मवृत्ति ही है, अर्थात् सौन्दर्य भावना आनन्द तत्व का ही प्रतिफलन है।' पृष्ठ ८।

... ...

'फिर भी प्रकृति माया मात्र है। वह मिथ्या है, इसलिये कि वह किसी असल की नकल करती है। अत: उसके द्वारा जिस पूर्णता को हम देखते है वह भी एक आभास ही है। पूर्ण सौन्दर्य-आनन्द की वृत्ति जब इसे समझ लेती है तो मनुष्य योगी बन जाता है और चिरन्तन ज्योति के अखिल सौन्दर्य को प्राप्त कर वह अपने अखिलानन्द रूप को प्राप्त करता है। सच्ची कला यही है, क्योंकि सौन्दर्य भी प्रकाशरूप ही है। उससे हमारी आंखें खुल जाती है, आंखें खुल जाती है,—कि हृदय खुल जाता है।' पृष्ठ १२

की ठेलापेली कर रखी है और मानवोपयोग की प्रत्येक वस्तु इसी कारण, नित नवीन रूप धारण कर सुहेली बन जाती है[1] इस प्रकार आनन्द सौन्दर्य का प्रभाव अथवा परिणाम है।

सौन्दर्य और आनन्द :—

आनन्द सौन्दर्य का आध्यात्मिक रूप है। सौन्दर्य में व्यापकता और व्यतिशयता के परस्पर विरोधी गुण एक साथ विद्यमान रहते हैं। सौन्दर्य वस्तु में, पार्थिवता में तो व्याप्त रहता ही है, पार्थिवता से ऊपर उठकर वह शुद्ध अध्यात्म तत्व भी है। ईशावास्योपनिषद् में परमात्मा के लिए जो यह कहा गया है, वह सौन्दर्य के लिए भी उतना ही सत्य है, कि वह वस्तु के भीतर भी है, उससे बाहर भी है, वह मूर्त भी है अमूर्त भी। सौन्दर्य तत्व की तुलना दार्शनिकों ने वाक् से की है। जिस प्रकार वाणी शब्दमय होते हुए भी अर्थ रूप में आध्यात्मिक व्यतिशय है, उसी प्रकार सौन्दर्य भी स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है।[2]

सौन्दर्य की यह व्यतिशयता ही रस की उत्पादिका है। सुख-दुखात्मक मानवीय सहज प्रवृत्तियों—कामनाओं, वासनाओं, और मूल पशुवृत्तियों—को जब रसिक स्थूलता के बंधनों का उच्छेद कर आध्यात्मिकता के साथ चर्वणा करता है, तब उनसे अपूर्व रस की अनुभूति होती है। ऐसी दशा में प्रेरणा का सर्वथा अभाव रहता है।[3] जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ तो प्रेरणा अवश्य उत्पन्न करती हैं, किन्तु साहित्य में रसिक की उन्हीं परिस्थितियों का कर्तव्योपशम दशा में आस्वादन होता है।[4]

पाश्चात्य मनोविज्ञान ने भी भरत के इस मत की पुष्टि की है। जार्ज सेण्ट्याना काम वासना को सौन्दर्य के मधुर संवेदन की जननी मानता है, ऐसी वासना को जो दूर से जाग्रत

---

१. प्रो० श्री गुलाबराय के लेख 'काव्य का क्षेत्र' से—

'भेद में अभेद यही सत्य का आदर्श है और यही शिव का भी मापदण्ड है।'

'सौन्दर्य बाह्य रूप में ही सीमित नहीं है वरन् उसका आन्तरिक पक्ष भी है। उसकी पूर्णता तभी आती है जब आकृति गुणों की परिचायिका हो। सौन्दर्य का आन्तरिक पक्ष ही शिव है। वास्तव में सत्य, शिव और सुन्दर भिन्न-भिन्न क्षेत्र में एक दूसरे के अथवा अनेकता में एकता के रूप हैं। सत्य ज्ञान की अनेकता में एकता है, शिव कर्म-क्षेत्र की अनेकता की एकता का रूप है, सौन्दर्य भाव क्षेत्र का सामंजस्य है। सौन्दर्य हम वस्तुगत गुणों या रूपों के ऐसे सामंजस्य को कह सकते हैं, जो हमारे भावों में साम्य उत्पन्न कर हमको प्रसन्नता प्रदान करे तथा हमको तन्मय कर ले। यह सौन्दर्य रस का वस्तुगत पक्ष है।'

२. उत त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

ऋग्वेद १०।७१।४

३. भरतमुनि तथा अन्य सभी भारतीय रस-शास्त्री।

४. तेन त्यक्तेन भुंजीथाः :—ईशावास्योपनिषद्।

होती है—और प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं करती।[1] पोलहन भी मानता है कि सौंदर्यानुभूतिकारक उत्तेजनाएँ इतनी निर्बल होती है कि उनका पर्यवसान किसी क्रिया मे नही हो सकता। उत्पन्न होते ही प्रेरणा का दमन कर दिया जाता है और वस्तुओ का वर्णन किसी बाह्य उद्देश्य के समर्थन के लिए नही किया जाता, वरन् उनका अपने आप मे ही महत्व माना जाता है।[2]

भरत मुनि के अनुसार रस अथवा आनन्द का यह प्रेरणाहीन ससार मायिक होता है, द्रष्टा के विश्वास और वासना पर आधृत होता है। शकुक ने इसी बात को चित्रतुरंग-न्याय से स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार चित्रलिखित घोडा सत्य नही होता, किन्तु उसे असत्य मान लेने पर उससे सौन्दर्य की प्रतीति भी नहीं हो सकती, उसी प्रकार द्रष्टा को भी स्वय—सचारित माया की सृष्टि को सत्य ही मानना होता है, तभी वह उससे सौन्दर्य एव रस की उपलब्धि कर सकता है।

इसी को वर्डसवर्थ ने अविश्वास का ऐच्छिक स्थगन[3] कहा है और जर्मन दार्शनिक ग्रूस ने सचेतन आत्म-प्रवचन[4] कहते हुए स्पष्ट किया है कि सौन्दर्य भावना वस्तुत: कल्पना की भावना है,[5] जो सत्यासत्य दोनो से परे है। इससे स्पष्ट है कि सौन्दर्य-चेतना प्रेरणामय क्रिया-कलापो या अनुभवो से जागृत नही होती। स्त्री-सौन्दर्य की सम्यक् और पूर्ण अनुभूति भी वासना को तिरोहित कर देने पर ही हो सकती है।

---

1. "From the radiation of the sexual passion, beauty borrows its warmth, and the whole sentimental side of our aesthetic sensibility without which it would be perceptive and mathematical is due to our sexual organisation remotely stirred "

Sense of Beauty (Page 58) George Santayana as quoted in 'Saundarya Shastra' of Dr. Hardwari Lal Sharma.

2. "In this case the stimulation is too weak to terminate in action and it is precisely because the tendency is unable in this case to reach its customary goal, because it is absolutely inhibited as soon as produced, that the phenomena are considered by themselves and not as a means to a special end, and that is the characteristic of aesthetic emotion,"

"The Laws of Feeling"—Paulhan as quoted in 'Saundarya Shastra' by Dr. Hardwari Lal Sharma.

3. 'Willing Suspension of disbelief.'
4. 'Conscious Self illusion '
5 'Assumption-feeling'.

इस दृष्टि से कामायनी के मनु द्वारा वासनासहित और वासनारहित दशा में अनुभूत सौन्दर्य की तुलना कीजिए :—

(क) वासनासहित अनुभूत सौंदर्य

कौन हो तुम खीचते यों मुझे अपनी ओर
और ललचाते स्वयं हटते उधर की ओर,
ज्योत्स्ना-निर्झर ठहरती ही नहीं यह आँख
तुम्हें कुछ पहचानने की खो गई सी साख।

आनन्द की लयावस्था :—सौंदर्य में अवगाहन करने से जगत्-विस्मृति और आत्म-विस्मृति स्वयं ही हो जाती है। जब व्यक्ति को न जगत् के 'नानाविध माया जालों'[1] का और

कहा मनु ने-तुम्हें देखा अतिथि कितनी बार
किन्तु इतने तो न थे तुम दबे छबि के भार
पूर्वजन्म कहूं कि था स्पृहणीय मधुर अतीत
गूंजते जब मदिर घन में वासना के गीत।
मधु बरसती विधु किरन है कांपती सुकुमार
पवन में है पुलक मंथर चल रहा मधु भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर प्राण।
चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानन्द
मानती-सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छन्द
अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह।
और जीवित है, न छाले हैं न उनमें दाह।
कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार
हृदय जिसकी कांत छाया में लिए निःश्वास
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश।

वासना सर्ग : कामायनी

(ख) वासनारहित अनुभूत-सौंदर्य

अरुणाचल मन मन्दिर की वह मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा,
लगी सिखाने स्नेहमयी-सी सुन्दरता की मृदु महिमा।
उस दिन तो हम जान सके थे सुन्दर किसको हैं कहते।
तब पहचान सके, किसके हित प्राणी यह दुख-सुख सहते।
जीवन कहता यौवन से कुछ देखा तूने मतवाले।
यौवन कहता सांस लिए चल कुछ अपना सम्बल पा ले।
हृदय बन रहा था सीपी-सा तुम स्वाती की बूँद बनी,
मानस शतदल झूम उठा जब तुम उसमें मकरन्द बनी।
तुमने इस सूखे पतझड़ में भर दी हरियाली कितनी।
मैं समझा मादकता है तृप्ति बन गई वह इतनी।

× × ×

तुम अजस्र वर्षा सुहाग की और स्नेह की मधु रजनी,
चिर अतृप्ति यौवन यदि था तो तुम उसमें संतोष बनी।

—निर्वेद सर्ग : कामायनी

१. प्रवर कृत 'भामिनी'

तन्मय हो जाता है। समस्त क्षुद्र भौतिक बन्धनों को तोड़कर आत्मा नामरूपात्मक उपाधियों से ऊपर उठकर अनन्त परम सत्ता में लीन हो जाती है, उसी का एक अंग हो जाती है।[1] सौन्दर्य-शास्त्र की दृष्टि से, अनेक की एकता ही सत्य है, और यही सौन्दर्य है।[2] विज्ञान की दृष्टि से, अनेक की एकता ही सत्य है, क्योंकि अनेक अनुभूतियों का सामंजस्य ही तो सत्य की उपलब्धि है।[3] अतः सत्य और सुन्दर एक ही अर्थ के, भिन्नाभिन्न दृष्टिकोणों से रखे गये, दो नाम हैं।[4]

'ब्रह्मानन्द' की इस अनुभूति में सत्य और शिवत्व की भी सहयुति है। सौन्दर्यानुभूति, इस प्रकार, सत्यानुभूति और शिवानुभूति की तद्रूपता है। शिवकामना मनुष्य जीवन का परमध्येय है। यह चरमादर्श तभी प्राप्त हो सकता है जब मानव ने परमसत्य का दर्शन कर लिया हो, अनेकत्व में एकत्व की प्रतीति व्यष्टिगत भेदों को दूर भगाकर उसे समष्टि का अंग बना लिया हो। वस्तुतः शिवत्व धर्ममर्यादित आध्यात्मिक विकास की उदात्त परिणति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य की चेतना सत्य का उद्घाटन करती है। सत्य की प्रतीति से पुनः सौन्दर्य का विस्तार होता है, जो शिवत्व की उपलब्धि करता है। शिव-दृष्टि से सुन्दर में नूतनता और रमणीयता का उदय हो जाता है। इस प्रकार सत्य, सुन्दर और शिव एक ही रसानुभूति के विभिन्न उपनाम हैं।[5] काव्य, चित्र, नृत्य, संगीत, तक्षण और स्थापत्य एवं

---

1. "Beauty, according to him, Baumgarten (1714-1762) a German Philosopher is felt perfection. Distinction between beauty and truth is purely subjective. The same attributes (perfection) of reality is called truth or beauty according as it is grasped by reason or feeling. In his conception of perfection here, he follows Wolff, according to whom it was nothing but logical relation of the whole to parts, of unity in multiplicity. Beauty, therefore, according to him is nothing but felt harmony of parts with one another and with the whole. Accordingly ugly is the absence of this feeling of harmony."......As represented by K. C. Pandey in Western Aesthetics, page 291.

2. "Thus, the aesthetic experience, according to Descartes, is the experiance of intellectual joy accompanied by an emotion and therefore, by the other three types of joy, sensuous, imaginative and emotional." (ibid Page 213)

3. "Aesthetic experience, therefore, according to Locke, is a pleasant deception, caused by artistic presentation of false creations of imagination." (ibid Page 232)

4: "But feeling, though not identical with aesthetic activity or intention, is a necessary accompaniment of it. For Croce holds that all the forms of spiritual activity are closely related to one another and that every one of them is accompanied by the elementary pleasure or pain. Pleasure is due to the attainment of the aim of a spiritual activity, whether it be theoretical or practical. (ibid Page 510)

5. 'Beauty is truth, truth Beauty'---that is all Ye know on Earth and all ye need to know.

(Keats : Ode on Grecian Urn)

अम्बर-सुमन-सरितादिक का सौन्दर्य सत्य की प्रतीति कराते हुए अनुभूति का आनन्द प्रदान करता है।

सौन्दर्य और नीति—

नीति अथवा धर्म की मान्यताएँ वस्तुत: सत्य की ही अनुभूतियाँ है। अत: नीति से सौन्दर्य का प्राणन और विस्तार ही होता है। हमारे आचार-विचार और व्यवहार हमारी सांस्कृतिक निधियाँ है, जिनकी मुखरता से सौन्दर्य शिव में और भाव कर्तृत्व में अनुप्राणित हो जाता है। किन्तु नीतिगत सत्य देश-काल की सीमाओं से आबद्ध और प्रभावित अवश्य होता है, यथा, बुद्ध ने करुणा, ईसा ने क्षमा और मुहम्मद ने विश्व-बन्धुत्व की भावना में सत्य का साक्षात्कार किया था। यह सब सत्य अवश्य है, किन्तु एक सीमा में बँधे हुए व्यापक सत्य के ये सब अंश मात्र है, और जीवन के विकास के साथ-साथ इन सत्यांशों से आगे अन्यान्य सत्यांश भी प्रकट होकर सत्य की व्यापकता की प्रतीति कराता रहता है।[१] सत्य की व्यापकता से तदनुसारी सौन्दर्य का विस्तार भी होता रहता है। अत: यह कथन असंगत न होगा कि नीति से सौन्दर्य पुष्ट अवश्य होता है, किन्तु सौन्दर्य नीति के सीमा-बन्धन से सदा ऊपर उठा रहता है। सत्य और सौन्दर्य स्वयं में पवित्र और शिव है, उन्हे नीति के शिवत्व और पुनीतत्व के आरोप की अपेक्षा नही होती। उनकी पुनीतता और शिवता नीति-जन्य पवित्रता से कही अधिक व्यापक है।

सौन्दर्य और संस्कृति—इस प्रकार सौन्दर्य नीति का गुण-भाग ग्रहण करता हुआ मधुर रूप मे उपस्थित होता है, जो मनुष्य की रागात्मकता को ही नही अपितु प्रज्ञा को भी आप्लावित कर देता है। सौन्दर्य के प्रभाव से मानव-चिन्तन भी सुन्दरता धारण कर लेता है और

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त :—

(क) वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप,
हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों मे लावण्य अनूप,
लोक सेवा में शिव अविकार।

—परिवर्तन-युगवाणी

(ख) प्रवर :— जो सौन्दर्य वही तो शिव है
सुन्दर सत्य, न और।

—मानिनी

(ग) प्रवर :— पल भर की चल स्वप्न झलक यह
शाश्वत जीवन-निधि होगी,
आहों से शोधित उदात्त हो
चिर अतृप्ति सुख-विधि होगी।

—आह

वस्तु की बाह्य रमणीयता मानव की आन्तरिक रमणीयता का प्रकाश करती है।[1] नारी रूप के लिये भी यह पूर्णतया चरितार्थ होता है। नारी-सौन्दर्य के प्रभाव ने अनेक दुराचारियों में पुनीति, सुरुचि और संस्कृति का संचार कर दिया है।[2]

सौन्दर्य साहित्य का प्राण है—सत्य और नीति के साथ शिवत्व का योग जिस अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि कराता है, वह अनुपम रूप से हृदय-हारी होता है। हृदयानुरंजन काव्य का प्रधान गुण है, अतः काव्य अथवा साहित्य का प्राण सौन्दर्य ही है। सौन्दर्य के साथ ही आनन्द और लयावस्था अनिवार्य रूप से सम्बद्ध हैं, अतः सौन्दर्य-चित्रण से ही काव्य का ब्रह्मानन्द सहोदरत्व निष्पन्न हो जाता है, और उसी से उसका साधारणीकरण भी प्रस्फुट हो जाता है, क्योंकि सौन्दर्य-बोध समस्त मानव-चेतना में एक-सा है। सौन्दर्य-बोध से जिस परम सत्य की उपलब्धि होती है, वह सभी मानवात्माओं को भावभूमि की एकता पर पहुँचा देता है। सौन्दर्य ही निश्चयेन मानवता और संस्कृति का उद्भावक है, सौन्दर्य-निष्ठा से ही भव-मानव संस्कृत होकर नव-मानव के रूप में विकसित होता है।[3]

सुन्दर क्या है—अतः प्रत्येक साहित्यिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सुन्दर के रूप से भली-भाँति अवगत हो। सौन्दर्य को विशदरूप से समझाने के लिये सौन्दर्य-शास्त्र के अनेक मनीषियों ने प्रयत्न किये हैं, जिनमें कुछ परस्पर विरोधी भी हैं। फिर भी हम उनकी समन्वयात्मक संक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रकार उपस्थित कर सकते हैं।

रूप, भोग और अभिव्यक्ति के सामंजस्य से सौन्दर्य की प्रतीति होती है। जो वस्तुएँ

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त :—

कहाँ खोजने जाते हो, सुन्दरता औ' आनन्द अपार ?
इस मांसलता में हैं मूर्तित, अखिल भावनाओं का सार।
मांस-मुक्ति है भाव-मुक्ति, औ' भाव-मुक्ति जीवन-उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक-मुक्ति, भव-जीवन का जो चरम विकास।
मांसों का है मांस मानुषी, मांस करो इसका सम्मान,
निर्मित करो मांस का जीवन, जीवन-मांस करो निर्माण।

—जीवन-मांस—युगवाणी,

२. रम्य सृष्टि हो रूप जगत् की, रम्य धरा शृङ्गार,
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का, होंगे रम्य विचार।

—रूप निर्माण : युगवाणी,

३. सुमित्रानन्दन पन्त

सुन्दर ही पावन, संस्कृत ही पावन निश्चय,
सुन्दर हो भू का मुख, संस्कृत जीवन-संचय !
सुन्दर हो भव-आलय, संस्कृत जड़-चेतन-समुदय,
सुन्दर नव-मानव, संस्कृत भव-मानव की जय !

देखिए—भूत जगत्—'युगवाणी'।

या भाव इन तीनो के साम्य भाव से सम्पन्न होने के कारण रसिक वा भाविक या प्रेक्षक में अन्तश्चेतना जागृत करते हुए उसे रसचर्वणा में सक्षम बनाती हैं, वे 'सुन्दर' कहलाती हैं।

१. भोग—भोग उस पदार्थ की संज्ञा है, जो वस्तु का कलेवर बनाता है। इसमें रंग और ध्वनि के माधुर्य की प्रधानता होती है। रंग प्रकाश का ही एक रूप है। सूर्य-प्रकाश में सात रंग होते है। जो पदार्थ उन प्रकाश-किरणों में से जैसी किरणों को अभिशोषित कर लेते है, वे उसी रंग के दिखायी देते है। मानव जीवन से भी प्रकाश का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विभिन्न रंग की किरणो के, उसके शरीर और मन पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं, और तदनुरूप उसकी गतिविधियो मे भी अन्तर आ जाते हैं। यही कारण है कि साधारणतया मानव के अनजाने भी प्रकाश उसके जीवन के लिये अनिवार्य हो गया है, उसकी वेदना और संवेदनाओं से प्रकाश का अपरिहार्य सम्बन्ध हो गया है। कुछ रंग मानव की संवेदनाओं के अनुकूल होते है, कुछ प्रतिकूल। समय एवं परिस्थितियो के परिवर्तन से इस अनुकूलता या प्रतिकूलता में भी न्यूनाधिक्य या आवर्तन हो सकता है। कभी-कभी रंगो के हल्के और गहरे होने-न-होने का भी अवस्थानुकूल प्रभाव पड़ता है। रंगो का सामंजस्य तो प्राय: रुचिकर होता ही है। इन सूक्ष्म प्रभावो के कारण रंग मानव को अति प्रिय लगते हैं, और इसी कारण वे तत्तद् वस्तुओ में मनुष्यो की रुचि और प्रियता जाग्रत करते है।

ध्वनि का माधुर्य भी वस्तु में सौंदर्य की प्रतीति कराता है। कर्कश शब्द मनुष्य को प्राय: रुचिकर नही लगते। युद्धादिक अवस्थाओं में कठोर नाद भी अवसरानुकूलता के कारण अच्छे लगते हैं, तथापि सामान्य अवस्थाओं में श्रुति मधुरता ही रुचि-सम्पन्नता का साधन बनती है और वस्तु को सुन्दर बनाती है।

२. रूप—रंग और ध्वनि—भोग्य पदार्थों के उचित विन्यास से रूप का उदय होता है। अनेक मे एक का बोध 'रूप' है। जब अनेक रंगो को इस प्रकार संगत और विन्यस्त कर दिया गया हो कि उनसे रंगों की विभिन्नता प्रतीत न होकर एक ही इष्ट रंग की प्रतीति होने लगे, तब हमे रूप की उपलब्धि या सम्बुद्धि होती है। यही बात ध्वनि पर भी चरितार्थ होती है। ध्वनि के विन्यास से भी रूप का उदय होता है। सप्त स्वरो को भिन्न-भिन्न प्रकार से विन्यस्त करने पर भिन्न-भिन्न राग-रागिनियाँ उत्पन्न होती हैं, और जिस प्रकार विभिन्न रंगों के भिन्न विन्यासों से भिन्न-भिन्न रूपाकृतियाँ बनती हैं, उसी प्रकार विभिन्न स्वरों[१] के ताल, लय और मात्रा के विभिन्न विन्यासों से पृथक्-पृथक् स्वरूप-रागरागिनियाँ बनते हैं। रंगो के विभिन्न रूप जैसे मानव मे विभिन्न सम्वेदनाएँ जागृत करते हैं, वैसे ही विभिन्न राग-रागिनियो में भी भिन्न-भिन्न सम्वेदनाएँ तरंगित होती हैं।

रूप के प्रकार—रूप तीन प्रकार का होता है, १. ज्यामितिक या सन्तुलित रूप, जिसमें वस्तु की माप सब ओर से ठीक और आनुपातिक होती है। सममात्रा भी इसी का एक गुण है। २. सजीव रूप—जीवधारियो में और उनके कार्यों में रूप की सजीवता रहती है। संगीत, नृत्य, अभिनय, मानव, पशु आदि मे सजीव रूप होता है। ३. प्रतीकात्मक रूप—प्रतीक वह रूप है जो अपने से अभिधार्थ में भिन्न किसी अन्य सूक्ष्म अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है; यथा, कमल को विमल सौन्दर्य का, सिंह को शक्ति एवं आत्म-विश्वास का, और कोकिल या वसन्त को जीवनोल्लास का प्रतिरूप माना जाता है; और जैसे जायसी ने पदमावती को बुद्धि

का मूर्त रूप माना है।[1]

रूप की सुडौलता—यूरोपीय सौन्दर्य शास्त्रियों ने, जिनका मत यूनानी मूर्तिकला के सिद्धान्तों से प्रभावित है, रूप की सुन्दरता के लिये सापेक्षता, सम्मात्रा, संगति और सन्तुलन के गुण अपेक्षित बताये हैं, जिससे वस्तु को एक व्यवस्थित क्रम तथा निश्चित आकार प्राप्त हो जाय। सन्तुलन को तो आनन्दवर्धनाचार्य ने भी आवश्यक कहा है, क्योंकि वह 'प्रधान गुण भाव' है।[2] सापेक्षता का अर्थ है अवयवों का ऐसा संयोजन कि वे परस्पर सम्बद्ध और पूरक बन जायँ। सम्मात्रा का आशय यह है कि वस्तु के एक ओर का भाग दूसरी ओर के भाग का ठीक प्रतिरूप हो। विरोध के अभाव को संगति कहते हैं। अनेक की एकता रूप कहलाती है, और अनेक में एकता, समन्वय वा सामंजस्य कराने वाले हेतु को संगति कहते हैं। परिणाम की समता सन्तुलन है।

रूप को सुन्दर बनाने वाले गुण—माधुर्य, लावण्य, औदार्य एवं सुखकारिता के होने से रूप सुन्दर लगता है, अन्यथा रूप के होते हुए भी हमारा उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं हो सकता।

(क) मधुरता—श्रीमद्रूप गोस्वामी के अनुसार रूप की मधुरता तब होती है, जब रूप का आविर्भाव करने वाले उसके अवयव भी पृथक-पृथक रूप से आस्वादन योग्य हों। अवयवों का अविरोधी विन्यास[3] जिससे खण्ड से अखण्ड, और अखण्ड से खण्ड की ओर अवधान हो जाय, मधुरता है। इस प्रकार समग्र में अवयवों का चमत्कारी गुण ही मधुरता है, जिससे आकर्षण और विकर्षण की क्रिया चित्त में एक अपूर्व आह्लाद उत्पन्न करती है, चित्त को द्रवित करती है।[4] संक्षेप में अवयवों के उचित संस्थान से उत्पन्न अविरोधी, समन्वित प्रभाव को ही हम माधुर्य नाम से अभिहित करते हैं।

(ख) लावण्य—लावण्य सजीव रूप में ही होता है। जब किसी सजीव रूप के अवयव इस प्रकार सम्बद्ध हों कि उनमें जीवन ओज की तरलता की तरंग प्रतिभासित होती हो तब वह लावण्य कहलाता है। गौर वर्णता और सुष्ठु मुखाकृति से भिन्न लावण्य की अपनी पृथक सत्ता होती है।

(ग) उदारता—उदारता विशेष रूप से ज्यामितिक रूप में होती है। जब सन्तुलित रूप में तरलता की तरंग की प्रतीति होती है तब हम उसे उदारता कहते हैं। ज्यामितिक रूप प्राणियों के शरीर का भी होता है, अतः उदारता मनुष्यों के रूप में भी होती है; उदाहरणार्थ, श्री हर्ष ने दमयन्ती के रूप को उसके उदार गुणों के कारण प्रशस्त कहा है। श्री हर्ष का कथन है कि उदार गुण के कारण जब चाँदनी भी समुद्र को तरल बना देती है, तो दमयन्ती

---

१. तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
पृष्ठ ३०१, 'जायसी ग्रन्थावली।'

२. ध्वन्यालोक उद्योत

३ 'भवेत्सौन्दर्यं भंगानां सन्निवेशो यथोचितम्'—रूप गोस्वामी।

४. 'चित्त द्रवीभावमयोऽऽ आह्लादो माधुर्यमुच्यते'—साहित्य दर्पण

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य-शास्त्रियों के दो वर्ग हैं—एक तो वे जो सौन्दर्य पर विभाव [प्रमेय वा विषय] की दृष्टि से विचार करते हैं, दूसरे वे जो आश्रय [प्रमाता वा विषयी] की अनुभूति को प्रधानता देते हैं। इनमें पहला दृष्टिकोण भौतिकवादी ही है, और दूसरा आध्यात्मिक। क्योंकि मानव न केवल तन है न केवल मन, बल्कि तनमन का संघात है, अतः ये दोनों दृष्टिकोण एकांगी रह जाते हैं। यद्यपि डॉ० जेराडं, डॉ० सली तथा बैन आदि विद्वान् दोनों के समन्वय की ओर झुके हैं, तथापि सर्वतोगत्वा वे भी विभाव पक्ष की सीमा को पार नहीं कर सके हैं।[1]

प्रमेय पक्ष—प्रमेय वा विभाव की दृष्टि से रूपगोस्वामी आदि भारतीय सौंदर्यकों और अरस्तू आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने जो विचारणाएँ की हैं वे सब क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धांत में समाहित हो जाती हैं। वस्तुतः वे सब उपमितियाँ या प्रतिपत्तियाँ औचित्य का ही अंग हैं। रूपगोस्वामी का 'यथोचित संनिवेश' औचित्य ही तो है। इसी प्रकार अरस्तू कथित सौंदर्यांग—सम्मात्रा, क्रम और आकार, होगार्थ-प्रतिपादित सौंदर्यात्मपद—सम्मात्रा, विभिन्नता, स्पष्टता, जटिलता, क्षमता और विशालता, डाइदेरो और बर्क द्वारा निर्धारित सौंदर्यीकरण—लघुता, मसृणता, कोमलता, शुद्धता, आभा एवं क्रमिक रूपान्तरण, तथा रिचर्ड प्राइस और कूसाज द्वारा निश्चित सौंदर्योपादान—एकता, मध्य भाव विभिन्नता, व्यवस्था और अनुपात—ये सब इतने विभिन्न नाम होते हुए भी औचित्य का सीमोलंघन नहीं करते, औचित्य के ही विभिन्न पक्ष हैं। अतः यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि 'औचित्य' [उचित स्थान विन्यास] में ही सौन्दर्य है, जैसा कि रूपगोस्वामी ने सिद्ध किया है।

कतिपय विभाव पाक्षिक सौंदर्यशास्त्री परम्परावधारित सौन्दर्य आदर्श को सौन्दर्य का हेतु मानते हैं। इस विचारधारा में प्रमाता की अनुभूति भी सौन्दर्य निश्चयीकरण का एक अंग मानी गई है किन्तु यह अनुभूति सर्वथा विभावाधृत ही होती है। अतः इस मत में भी आध्यात्मिकता नहीं ही है। इस मत के प्रस्थापक हैं बफ़ी महोदय जिनका मत लार्ड कैमे, विलियम शेन्स्टन तथा अब्राहम टूकर के मतों का अनुसारी है। डॉ० जेराडं ने आकृति और वर्ण के सौन्दर्य के अतिरिक्त उपयोग सौंदर्य को भी स्वीकार किया है, जिससे प्रमाता या अनुभावक भी सौन्दर्य चेतना में गृहीत हो गया है। डॉ० सली का मत है कि सांवेगिक वा वस्तुगत सौंदर्य के साथ ही अनुभावक [विषयी] के केन्द्रीण और साहचरिक अभिव्यक्ति-सौंदर्य का भी अस्तित्व रहता है। एलीसन जैसे तथा बैन आदि सौंदर्य-शास्त्री 'साहचर्य-नियम' का प्रतिपादन करते हुए सौंदर्य-मीमांसा में विभाव को स्थान नहीं देते, फिर भी उन्होंने प्रकारान्तर से विभाव ही को सर्वस्व स्वीकार कर लिया है, क्योंकि उनके साहचर्य नियम से जो सुखद सौन्दर्यानुभूतियाँ होती हैं, वे अनिवार्यतः विभाव के प्रभाव से ही जगती हैं।

कुछ ऐसे विचारक हैं जो विभाव को नहीं, किन्तु सामान्य-प्रकृति-को महत्व देते हैं। रैनाल्ड्स के विचार से प्रकृति प्रत्येक प्राणी और पौधे को एक पूर्व निर्णीत रूप की ओर विकसित करती जा रही है, जिस रूप से अस्पस्त होकर भी हम उसके सौन्दर्य की चर्वणा करते

१. डाइदेरो के मत से सौन्दर्य वस्तु के अंगों के पारस्परिक संबंध में अवस्थित है :—
"Beauty consists in the perceptions of relations," —Diderout

क. वेदकाल में नारी

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु सम्मनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।

—अथर्ववेद ३।३०

(क)

वेद-काल में नारी एक रत्न थी । उस समय में राजा की सहायता के लिए जो पदाधिकारी होते थे, वे 'वीर' या 'रत्न' कहलाते थे । बुद्धकाल में भी रत्नों का उल्लेख मिलता है । पुरोहित सेनानी एवं समग्रह नामक रत्नों के साथ ही 'महिषी' को भी रत्न-संज्ञा से अभिहित किया गया है । इससे स्पष्ट है कि राज-रानी को राज-कार्य में प्रमुख स्थान प्राप्त था । नारी-सम्मान का ऊँचा आदर्श भारत में सदा से प्रचलित रहा है ।

वैदिक परिवार में स्त्री की प्रधानता :—इस काल में आर्य-जन परिवार के रूप में रहते थे । परिवार ग्राम की इकाई होते थे । आजकल के भारतीय ग्रामों की भाँति ही उस समय के ग्रामों की भी सामाजिक व्यवस्था थी । कुटुम्ब में सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति पिता, पितामह या अग्रज—परिवार का प्रधान होता था । घर की बड़ी स्त्री, अपने पति के अधीन रहती हुई भी, समस्त गृह-प्रबन्ध की संचालिका होती थी । घर के सारे कार्य उसकी संरक्षता में तथा उसी की इच्छानुसार होते थे । यज्ञ, हवन और उत्सव उसके बिना सम्पन्न नहीं हो सकते थे । इतना ही नहीं, विवाह होने पर पति-गृह में आते ही वधू सास-ससुर आदि सबकी दृष्टि में साम्राज्ञी बन जाती थी ।[1] सम्पन्न घरानों की स्त्रियाँ परिचारकों का भी कर्तव्य निदेशन करती थीं । समस्त आर्य-स्त्रियाँ अपने गृह-कार्यों को गाते-गाते करती थीं । इसमें उन पर पुरुषों का तनिक भी दबाव नहीं था । वे अपने कर्तव्य-कार्यों में पूर्ण प्रफुल्लित रहती थीं ।

स्त्रियों के आवास :—अन्तःपुर को 'पत्नीनां सदनं' कहा जाता था, जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की दृष्टि से अलग स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करती थीं । कमरों में आने-जाने में तो कोई रुकावट नहीं होती थी, किन्तु बाहर जाते समय स्त्रियाँ चादर से अपना शरीर ढँक लिया करती थीं ।[2]

स्त्रियों का उपनयन संस्कार :—प्रारम्भिक काल में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ती थीं और सन्ध्या-वन्दनादिक करती थीं, किन्तु बाद में स्मृतिकाल में उनके लिए

---

१. यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवं त्वं सम्राज्ञ्येधि भत्युरस्तं परेत्य ॥

—अथर्ववेद १४।१।४३, ४४

२. गुहा चरन्ती योषा —ऋग्० १।१६७।३

इनका निषेध कर दिया गया, जैसा कि हम आगे देखेंगे।[१]

स्त्री-शिक्षा :—उस समय स्त्री-शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। गार्गी मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने शास्त्रार्थ में नाम कमाया था, इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को उदारतापूर्वक शिक्षा दी जाती थी। कहीं-कहीं तो सह-शिक्षा भी थी। किन्तु इसका प्रसार-प्रचार नहीं था। पढ़ने लिखने में स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं रहती थीं। काव्य, संगीत, नृत्य तथा अभिनय आदि ललित कलाओं में भी उन्हें दक्षता प्राप्त थी।

हारीत-संहिता के अनुसार "स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवाह' (Straight-Way married) ब्रह्मवादिनी यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने, वेदाध्ययन करने और अपने ही घरों से भिक्षा मांगने की अधिकारिणी है। माधवाचार्य के मत से स्त्रियों का विवाह उपनयन के पश्चात् होना चाहिये॥[२]

उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में से कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती थीं, इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। अन्य स्त्रियां गृहस्थ-जीवन का संचालन करती थीं। किन्तु गृहस्थाश्रम-प्रवेश के पूर्व वे ब्रह्मचारिणी रहकर अध्ययन कर चुकी होती थीं।[३]

ब्रह्मवादिनी स्त्रियां वेदाध्ययन करतीं, कविताएँ बनातीं, और त्याग-तपस्या के द्वारा ऋषि-भाव प्राप्त करके मंत्रों का साक्षात्कार भी कर लेती थीं। ऋग्वेद के अनेक सूक्त स्त्रियों ने साक्षात्कृत किये हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद दशम मंडल के ३९ और ४०वें सूक्त तपस्विनी ब्रह्मवादिनी घोषा के हैं। और ऋग्वेद के ८।२७।१७ मंत्र की ऋषि रोमशा, ५।२८ मंत्र की विश्वारा १०।१४५ मंत्र की इन्द्राणी, १०।१५९ मंत्र की प्रलोमतनया शची, और ८।९१ मन्त्र की ऋषि अपाला थीं। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा ने पति के साथ ही सूक्त का दर्शन किया था। सूर्या भी एक ऋषिका थी।

सैनिक शिक्षा :—पति के साथ स्त्रियां भी युद्ध में जाती थीं, उनके रथ का संचालन करती थीं। विश्पला पति के साथ युद्ध में गई थी। युद्ध-भूमि में उसकी टांग टूट गयी थी, जिसे अश्विनी कुमारों ने ठीक किया था। वृत्रासुर के साथ उसकी माता दनु भी युद्ध में इन्द्र के द्वारा मारी गयी थी। नमुचि के पास तो स्त्रियों की एक पूरी सेना ही थी। मुद्गल-पत्नी इन्द्रसेना ने सुदक्ष रथ-संचालन और अस्त्र-संचालन करके वीरतापूर्वक इन्द्र के शत्रुओं का नाश किया था। उसने शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर उनसे अपहृत गौएँ छुड़ा ली थीं।[४]

दौत्य-कर्म :—दौत्य-कर्म में भी स्त्रियां निपुण थीं। इन्द्र की ओर से दूत बनकर सरमा

---

१. अयमुत्वा विचर्षणे जनी-रवाभिसंवृतः —प्रसोम इन्द्र सर्पतु। ८।१७।७

२. मनुस्मृति —४।२०५

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्य. सद्योवाहश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनीनामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति॥

—हारीत कृत वीरमित्रोदय [संस्कार प्रकाश]

३. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। —अथर्व ११।५।१८

४. ऋग्वेद —१०।१०२।२-११

पाणि असुर के पास गयी थी। सरमा-पाणि-संवाद तत्कालीन स्त्रियों की प्रखर बुद्धि का विस्मय कर उदाहरण है।

वेदकाल में पारिवारिक स्थिति :—पूर्व वैदिक युग में सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा थी। कीथ और मेकडानल की एतद्विषयक शंकाएँ निर्मूल हैं।[1] ऋग्वेद में पुरोहित का वर-वधू को यह आशीर्वाद कि—'तुम यहीं रहो, वियुक्त मत होओ, अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते और आनन्द मनाते हुए सारी आयु का उपयोग करो।[2] और वधू को यह आशीर्वाद देना कि—'तू सास ससुर, ननद देवर पर शासन करने वाली रानी बन'[3] सिद्ध करते हैं कि उस समय संयुक्त परिवार थे। अथर्ववेद के स्वापन-सूक्त[4] में परिवार के अनेक व्यक्तियों को सुलाने के मन्त्र हैं और सामनस्य-सूक्त[5] में कुटुम्ब में सभी व्यक्तियों को एक सात प्रेमपूर्वक रहने की प्रेरणा है। एक साथ भोजन और भजन, एक साथ कार्य-भार को उठाने और एक समान ही व्यवसाय के जुए में जुड़ने का भी आदेश है।

उस काल में शत्रुओं से रक्षा के लिए भी बड़े परिवार बना कर रहना आवश्यक था।

---

१. Vedic Index 1/527 Macdowell, Vedic Religion P. 158.

२. इहैव वस्त मा वियौष्ठं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे॥
—ऋग्वेद १०।८५।४२

३. ऋग्वेद १०।८५।४६ तथा अथर्ववेद १४।१।२२

४. प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्या वह्यशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि॥
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभ।
अंगान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे॥
ये आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि॥
स्वपतु माता स्वपतु पिता, स्वपतु श्वा, स्वपतु विश्पतिः
स्वपन्त्वस्य ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः॥
—अथर्व ४।५।३-६

५. सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवघ्न्या॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनस्कृणोमि॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहयो युनज्मि।
सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥
सध्रीचीनान्वः संमनस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

इनका निषेध कर दिया गया, जैसा कि हम आगे देखेंगे।[1]

स्त्री-शिक्षा :—उस समय स्त्री-शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। गार्गी मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने शास्त्रार्थ में नाम कमाया था, इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को उदारतापूर्वक शिक्षा दी जाती थी। कहीं-कहीं तो सह-शिक्षा भी थी। किन्तु इसका प्रसार-प्रचार नहीं था। पढ़ने लिखने में स्त्रियाँ पुरुषों से पीछे नहीं रहती थी। काव्य, संगीत, नृत्य तथा अभिनय आदि ललित कलाओं में भी उन्हें दक्षता प्राप्त थी।

हारीत-संहिता के अनुसार 'स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवाह' (Straight-Way married) ब्रह्मवादिनी यज्ञाग्नि प्रज्वलित करते, वेदाध्ययन करते और अपने ही घरों से भिक्षा माँगने की अधिकारिणी है। माधवाचार्य के मत से स्त्रियों का विवाह उपनयन के पश्चात् होना चाहिये ॥[2]

उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में से कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती थी, इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। अन्य स्त्रियाँ गृहस्थ-जीवन का संचालन करती थी। किन्तु गृहस्थाश्रम-प्रवेश के पूर्व वे ब्रह्मचारिणी रहकर अध्ययन कर चुकी होती थी।[3]

ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती, कविताएँ बनाती, और त्याग-तपस्या के द्वारा ऋषि-भाव प्राप्त करके मंत्रों का साक्षात्कार भी कर लेती थीं। ऋग्वेद के अनेक सूक्त स्त्रियों ने साक्षात्कृत किये हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद दशम मंडल के ३९ और ४०वें सूक्त तपस्विनी ब्रह्मवादिनी घोषा के है। और ऋग्वेद के १।१७।७ मंत्र को ऋषि रोमशा, ५।२८ मंत्र की विश्ववारा १०।८५ मंत्र की इन्द्राणी, १०।१५९ मंत्र की प्रलोभनवती शची, और ८।९१ मन्त्र की ऋषि अपाला थी। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा ने पति के साथ ही सूक्त का दर्शन किया था। सूर्या भी एक ऋषिका थी।

सैनिक शिक्षा :—पति के साथ स्त्रियाँ भी युद्ध में जाती थी, उनके रथ का संचालन करती थी। विश्पला पति के साथ युद्ध में गई थी। युद्ध-भूमि में उसकी टाँग टूट गयी थी, जिसे अश्विनी कुमारों ने ठीक किया था। वृत्रासुर के साथ उसकी माता दनु भी युद्ध में इन्द्र के द्वारा मारी गयी थी। नमुचि के पास तो स्त्रियों की एक पूरी सेना ही थी। मुद्गल-पत्नी इन्द्रसेना ने सुदक्ष रथ-संचालन और अस्त्र-संचालन करके वीरतापूर्वक इन्द्र के शत्रुओं का नाश किया था। उसने शत्रुओं के घेरे से छुड़ाकर उनसे अपहृत गौएँ छुड़ा ली थीं।[4]

दौत्य-कर्म :—दौत्य-कर्म में भी स्त्रियाँ निपुण थी। इन्द्र की ओर से दूत बनकर सरमा

---

१. अयमुत्वा विचर्षणे जनी-रवाभिसंवृतः —प्रसोम इन्द्र सुर्पतु। ८।१७।७

२. मनुस्मृति —८।२०५

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवाहश्च।

तत्र ब्रह्मवादिनीनामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति ॥

—हारीत कृत वीरमित्रोदय [संस्कार प्रकाश]

३. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। —अथर्व ११।५।१८

४. ऋग्वेद —१०।१०२।२-११

पाणि असुर के पास गयी थी। सरमा-पाणि-संवाद तत्कालीन स्त्रियों की प्रखर बुद्धि का विस्मयकर उदाहरण है।

वेदकाल में पारिवारिक स्थिति :—पूर्व वैदिक युग में सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा थी। कीथ और मेकडानल की एतद्विषयक शंकाएँ निर्मूल हैं।[१] ऋग्वेद में पुरोहित का वर-वधू को यह आशीर्वाद कि—'तुम यहीं रहो, वियुक्त मत होओ, अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते और आनन्द मनाते हुए सारी आयु का उपयोग करो।[२] और वधू को यह आशीर्वाद देना कि—'तू सास ससुर, ननद देवर पर शासन करने वाली रानी बन'[३] सिद्ध करते हैं कि उस समय संयुक्त परिवार थे। अथर्ववेद के स्वापन-सूक्त[४] में परिवार के अनेक व्यक्तियों को सुलाने के मन्त्र हैं और सामनस्य-सूक्त[५] में कुटुम्ब में सभी व्यक्तियों को एक साथ प्रेमपूर्वक रहने की प्रेरणा है। एक साथ भोजन और भजन, एक साथ कार्य-भार को उठाने और एक समान ही व्यवसाय के जुए में जुड़ने का भी आदेश है।

उस काल में शत्रुओं से रक्षा के लिए भी बड़े परिवार बना कर रहना आवश्यक था।

---

१. Vedic Index 1/527 Macdowell, Vedic Religion P. 158.

२. इहैव स्त मा वियोष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि मोदमानौ स्वे गृहे॥
—ऋग्वेद १०।८५।४२

३. ऋग्वेद १०।८५।४६ तथा अथर्ववेद १४।१।२२

४. प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्या वह्यशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि॥
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम्।
अंगान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे॥
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता, स्वप्तु श्वा, स्वप्तु विश्पतिः
स्वपन्त्वस्य ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः॥
—अथर्व ४।५।३-६

५. सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।
सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सामनसो वो अस्तु॥

इसीलिए दस पुत्रों की कामना की जाती थी।[1] परिवार के पाँचो आधारो—मातृ-स्नेह, पितृ-प्रेम, दाम्पत्य-आसक्ति, अपत्य-प्रीति, और सहधर्मिता—की अनिवार्यता प्रतीत होती थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद में पितरो की[2] तथा अग्नि की पूजा[3] के अनेक मंत्र है। इनमें परिवार के संयुक्त बने रहने में सहायता मिलती थी। वैदिक युग मे कृषि मुख्य व्यवसाय था।[4] इस कारण भी परिवार बडे हुआ करते थे। परिवार में तीन पीढ़ी तक के व्यक्ति प्रायशः सम्मिलित रहते थे।[5]

वैदिक युग में पितृ सत्ताक परिवार होते थे।[6] मातृसत्ताक परिवार का वर्णन वैदिक साहित्य में नही मिलता। पिता की स्थिति इतनी ऊँची थी कि देवो की उपमा भी पिता से दी जाती थी। वेद कालीन पितृ-प्रधान समाज मे पुत्र, पुत्री, पत्नी, तथा पुत्र-वधू सब गृहपति की छत्र-छाया में रहते थे। मुखिया होने के कारण भी पिता का ही सम्पत्ति पर भी एकाधिकार माना जाता था। इतना ही नही, उसे परिवार के प्राणियो पर भी असाधारण अधिकार प्राप्त थे। यही कारण है कि संतान बेचने वाले अजीगर्त, और कठोर दण्ड देने वाले ऋज्राश्व जैसे पिता भी, दो-एक दिखायी दे जाते हैं। किन्तु पिता को प्रभुता का यह अर्थ नही था कि माता की सत्ता कम मानी जाती हो। उसे तो पिता से पहले आदर दिया जाता था, यथा, मातृदेवो भव के पश्चात् ही 'पितृ देवो भव' कहा गया था।

वैदिक देवियाँ :—वेद काल में अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, सिनीवाली पृश्नि आदि प्रसिद्ध देवियाँ थी। इनमें अदिति देवी का उल्लेख सर्वाधिक हुआ है। ये सभी सर्वशक्तिमत्ता और विश्व हितैषिणी मानी गई है। इनके अतिरिक्त दिति, सीता, सूर्या, वाक् सरस्वती का भी स्तवन हुआ है। देवियो की इस स्तुति से स्पष्ट है कि आर्य-जन नारियो का कितना सम्मान करते थे। वस्तुतः पुरुष की नारी-विषयक श्रद्धा का उदात्त रूप देवी स्तवन से प्रकट होता है।

वेद-काल मे नारी सम्मान :—आर्य जन नारियो का बड़ा सम्मान करते थे। समाज मे नारियो का महत्वपूर्ण स्थान था। जैसा कि 'पत्नी' शब्द की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है, वह यज्ञ से यजमान की सहधर्मचारिणी होती थी। पत्नी के बिना पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार कदापि नही था, क्योंकि 'पत्नी अपना ही आधा भाग है, तथा 'जाया ही घर है।'—यह वेद-काल मे एक सर्वमान्य भावना थी। दुहिता, पत्नी और माता तीनो रूपो में नारी सम्माननीया

---

१. इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि ॥ ऋ० १०।८५।४५

२. यजुर्वेद, उन्नीसवाँ अध्याय अथर्ववेद, अठारहवा० काण्ड

ऋ० ६।५२।४, १०।१५।६

३. ऋ० ७।१।२ यो दम आसनित्यः। तथा ७।१।१ गृहपतिः

४. ऋग्वेद १०।३४।१२, १०।१०१।४-५

५. आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं च पितामहम्।
जाया जनित्रीं मातरं ये प्रिया स्तानुपह्वये। —अथर्व ६।५।३०

६. मनु० २।२२५—पिता मूर्तिः प्रजापतेः, महाभारत, १२।२६७।२ पिता पर देवतम्
—ऋ० १०।४८।१,

थी। गायों के दुहने का कार्य दुहिता के जिम्मे रहता था। परिवार का यह आवश्यक कार्य करने से वह माता-पिता की लाड़ली होती थी। यद्यपि दहेज के कारण और विवाह के पश्चात् उसके पितृ-गृह त्याग के विचार से दुहिता के स्नेह में दुःख-भाव भी निहित रहता था,[1] तथापि कन्या पवित्रता की प्रतीक और वात्सल्य का आधार थी। जाया से तो पुरुष ही पुनः उत्पन्न होता है।[2] इससे वही शोभा है, वही ऐश्वर्य है,[3] जाया कल्याणी और सुषमामयी है।[4] जाया ही घर है और विश्रामस्थल है।[5] माता तो सर्वाधिक आदरणीया है।[6]

---

१. यास्क ने दुहिता की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बतायी है :

(अ) दुहिता दुर्हिता, दूरे हिता —नि० ३।४।४

दुर्गाचार्य ने यास्क को स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

'सा हि यत्रैव-दीयते, तत्रैव दुहिता भवति' अर्थात् वह जहाँ भी दी जाती है, वहाँ ही उसका स्वागत नहीं होता। अथवा 'दूरे हिता दुहिता' :—दूरे सति सति सा पितुः हिता पर्य्यंभवति इति दुहिता, इत्युच्यते।' उसके दूर रहने में ही पिता का हित है।

(ब) 'दोग्धेर्वा' :—अथवा दुहने से। इस पर दुर्गाचार्य की व्याख्या है—'सा हि नित्यमेव पितः सकाशात् द्रव्यं दोग्धि, प्रार्थना परस्वात्।' वह पिता से धन दुहती रहती है।

ऐतरेय ब्राह्मण में दुहिता को दुःख की खान कहा गया है। 'कृपणं ह्वि दुहिता, ज्योतिर्हिपुत्रः।'

इसके भाष्य में यह श्लोक उद्धृत किया गया है :—

सम्भवे स्वजन दुःखकारिका, संप्रदान समयेऽर्थ हारिका यौवनेऽपि बहु दोष कारिका, दारिका हृदयदारिका पितुः।

यही कारण है कि वैदिक युग में केवल पुत्रोत्पत्ति की ही कामना की जाती थी, विवाह का उद्देश्य था—'पुंसे पुत्राय वेत्तवे।'

अथर्व पुंसवनसक्त ६।११।३, अथर्व ८।६।५, आश्वलायनगृह्य सूत्र १।७

किन्तु पुत्र कामना का प्रधान कारण कन्या का कष्ट न होकर, तत्कालीन संघर्षपूर्ण जीवन था, जिसमें वीर पुरुषों की आवश्यकता रहती थी। कन्या निन्दा के इन वाक्यों के आधार पर वेस्टरमार्क, जिमर, डेल ब्रुक, वेवर और राजवाड़े का यह निष्कर्ष निकालना कि वैदिक युग में कन्या-वध प्रचलित था—सर्वथा भ्रमपूर्ण है। इन सबके तर्कों का युक्तियुक्त खण्डन श्री हरिदत्त वेदालंकार ने अपने ग्रंथ 'हिन्दू परिवार मीमांसा' पृष्ठ २४४-२४५ में कर दिया है।

कालान्तर में पतंजलि ने कन्याओं पर कृपा दिखाई है :—

'यदि पुनाति प्रीणातीति वा पुत्रः दुहितर्यप्येतद् भवति।'

—अष्टाध्यायी १।२।६२ पर महाभाष्य

२. ऐतरेय ब्राह्मण—'तज्जाया जाया भवति यादस्यां जायते पुनः'।

३. एतरेय ब्राह्मण—इसी से वह 'आभूतिरेषाभूतिः' है।

४. ऋ० ३।५३।६—'कल्याणी जाया सुरणं गृहे ते'।

५. ऋ० ३।५३।४—'जायेदस्तं मघवन् सेदु योनिः'।

६. मान् + तृ—मातृ=आदरणीया।

क्योंकि वह निर्मात्री जननी है।[१] ऋग्वेद में माता शब्द अंतरिक्ष, नदी, जल तथा पृथ्वी अर्थ में भी आता है, जिससे माता के महत्व का परिचय मिलता है।

वैदिक युग में माता :—ऋग्वेदानुसार माता सर्वाधिक घनिष्ठ और प्रिय संबंधी है।[२] भक्त परमात्मा को पिता की अपेक्षा माँ कह कर अधिक सन्तुष्ट होता है।[३] माता-पिता के समास में माता को प्रथम स्थान दिया गया है।[४] वेद ने माता को गुरु माना है[५] अथर्ववेद में आदेश है कि माता के अनुकूल मन वाले बनो।[६] शाङ्खायन धर्मसूत्र के अनुसार उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम अपनी माता से भिक्षा माँगने का विधान है, इससे माता का पिता से अधिक अधिकार एवं उत्कर्ष सिद्ध होता है[७]। वैदिक युग में माताएँ ही कन्याओं को सजाया करती थी।[८] कन्याओं के विवाह में माताओं के अधिकार अधिक होते थे। दार्म की कन्या के साथ श्यावाश्व का विवाह तभी हो सका जब कन्या की माता ने स्वीकृति दे दी।[९] वीरिणी [वीर-जननी] होने के कारण भी माता की प्रतिष्ठा अधिक थी।[१०] 'वीर' शब्द ही पुत्र-वाची हो गया है—'पुत्रो वै वीरः।' स्त्री का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है, अतः वन्ध्या हेय दृष्टि से देखी गई है।[११] अपुत्रा 'नृऋतिं गृहीता' होती है।[१२]

वेद में गृहिणी :—वैदिक युग में पत्नी को बहुत आदर प्राप्त था। वे आर्य पत्नी को ही घर मानते थे—'पत्नी ही घर' है।[१३] 'पत्नी घर पर रानी की भाँति रहे।'[१४] उनके गृहस्थ धर्म का आशय था—नारी के साथ रहकर धर्मानुष्ठान और यज्ञ-सम्पादन करना। बिना नारी के गृह का अस्तित्व कहाँ है, और गृह के अभाव में गृहस्थ-धर्म का सम्पादन हो तो कैसे! इस विचार-धारा में गृहिणी गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा का एक मात्र सहायक आधार थी। पति-पत्नी

---

१. यास्क—मातृ = निर्मातृ—निर्माण करने वाली जननी।
२. ऋ० ११२४११, ७११०११३
३. त्वं हि नः पितावसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
—ऋ० ८।९८।११
४. ऋ० ४।६।७
५. मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।
६. माता भवतु सम्मनाः
—अथर्व० ३।३०।२,
७. सांख्या गृ० ग्र० २।६।५
८. ऋ० १०।१८।११
९. बृहद्देवता ५।४१ अनु०
१०. यजु० ४।२३ तथा शत० ब्रा० ३।३।१।१२
११. अथर्व० १४।१।१८
१२. शत० ब्रा० ५।३।१।१३
१३. ऋग्वेद ३।५३।४—जायेदस्तम्
१४. ऋ०—१०।८५।४६

दोनों मिलकर यज्ञ करते थे।[१] यही नहीं, स्त्रियाँ पृथक रूप से भी यज्ञ करती थीं।[२]

शस्य-वृद्धि के लिए सीता स्वतंत्र रूप से यज्ञ करती थी। यज्ञ वेदी के निर्माण में और स्थालीपाक में दानों के छिलके अलग करने तथा अन्य अनेक याज्ञिक कार्यों में वे पति की सहायता करती थीं। पूर्व मीमांसा[३] के अनुसार पति-पत्नी दोनों सम्पत्ति के स्वामी होते थे, अतः अपत्नीक को यज्ञ का अधिकार नहीं था।[४] परन्तु कालान्तर में स्त्रियों के मासिक धर्म, उपनयन संस्कार के अभाव, अन्तर्जातीय विवाह और कर्मकाण्ड की जटिलता के कारण उनका यज्ञ में भाग लेना कम होता गया।

पशु रक्षिणी और वीर-प्रसविनी नारी का उस समय बड़ा आदर था, क्योंकि आर्य-जन शत्रुओं से रक्षा करने के लिए वीर सन्तान की इच्छा करते थे, और पशु-धन उनकी समृद्धि का मुख्य साधन था। ऐसी पत्नी की प्राप्ति के लिए देवताओं की प्रार्थनाएँ और उपासनाएँ की जाती थीं।[५] ऋग्वेदानुसार ज्ञात होता है कि लोग स्त्री की प्राण-रक्षा और मर्यादा-रक्षा के लिए आत्म-बलिदान तक कर देते थे।[६] समाज में उन्हें बहुत ही आदर और दुलार के साथ रखा जाता था। सूर्या द्वारा आविष्कृत मन्त्रों से स्पष्ट है कि यद्यपि स्त्री पति के अधीन थी, तथापि घर पर उसी का एकाधिपत्य था। नौकर-चाकरों पर भी उसी का शासन था।

गृहिणी के नामों में जाया, जनी और पत्नी प्रचलित थे। पति का प्यार पाने वाली 'जाया', संतान की माता 'जनी' और पति की सहधर्मिणी 'पत्नी'—ये तीनों एक ही भार्या की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के नाम थे। इन नामों से तथा विवाह की पद्धति से यह स्पष्ट है कि उस समय पत्नी के हाथों घर के समस्त अधिकार दे दिये गए थे, और वही सबकी भौतिक आवश्यकताओं एवं सुख-समृद्धि का प्रबंध करती थी। पत्नी सम्मान और सहानुभूति की पात्र थी, यहाँ तक कि जुआरी भी अपनी पत्नी की दुर्दशा पर दुःखी होता था।[७] ऋग्वेद के कुछ मंत्रों से सती-प्रथा[८] का प्रचलन भी प्रकट होता है, जिसमें मृत पति के साथ पत्नी के भी गाड़े जाने के उल्लेख हैं।

---

१. शत० ब्रा०—१०।२।३, १०।२।३।३, १।६।२।१, १।६।२।५-२१-२५
ऋग्विधान—३।११६-११७, आश्व० श्रौ० सू० १।११।१, लाट्या० श्रौ० सू० ५।१०।७, आश्व० गृ० सू० १।८।५, पारस्कर गृ० सू० १।६,

२. अथर्व० ११।१।१७-२७ —योषितो यज्ञिया इमाः, पार० गृ० सू० २।१७

३. पूर्व मीमांसा—६।१।१७।२१

४. शत० ब्रा०—२।२।२।६,—तै० ब्रा०—३।३।३।१

५. ऋ० १०।८५।४४

६. ऋ० १०।३९।४०

७. ऋग्वेद १०।३४।११

८. ऋग्वेद १०।१८।७, १०-१३

पत्नी के प्रति पति के कर्तव्य :—

घर में सधवा स्त्रियों का प्रथम स्थान है।[1] पत्नी पुरुष का आधा स्वरूप है।[2] इसी लिये पत्नी के बिना पुरुष अपूर्ण है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पत्नी के बिना पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता।[3] पत्नी के बिना वह किसी यज्ञ का अधिकारी भी नहीं बनता।[4] यही कारण था कि यज्ञ के समय राम को सीता की स्वर्ण-मूर्ति रखनी पड़ी थी[5] और इसी कारण याज्ञवल्क्य ने यह विधान किया कि 'एक पत्नी के मरने पर यज्ञ कार्य के लिए तुरन्त दूसरा विवाह करें।'[6] क्योंकि यज्ञ में साथ बैठने वाली स्त्री को ही 'पत्नी' कहते हैं।[7] विवाह का तीसरा प्रयोजन रति कहा गया है, जिसे ब्रह्मानन्द—सहोदर तथा धार्मिक कर्तव्य माना गया है।

पति को पत्नी का समादर करना चाहिये। वह लक्ष्मी का स्वरूप है।[8] पत्नी की यह पूजा पुरुष को संसार में फसा देने के कारण नहीं होती, वरन् पत्नी की कर्तव्य-परायणता के कारण होती है।[9] स्त्रियों का नाम 'मेना' है क्योंकि वे पुरुष की सम्माननीया हैं।[10] पत्नी का नाम 'जाया' है, क्योंकि उसमें पति गर्भ-रूप से उत्पन्न होता है।[11] नारी 'सखा' है।[12] पति-पत्नी का संबंध सरस और प्रेममय होता है। इस मार्ग में आधय से अपकार नहीं, वरन् प्रशंसा और धनलाभ होता है।[13] दम्पति सहयोग-पूर्वक अपने जीवन को सफलता से पार कर

---

१. ऋग्वेद १०।१८।७

२. ऐ० ब्रा० ३।१।६-५

३. 'स रोक्ष्यञ्जायामामन्त्रयते, जाये एहि स्वो रोहावेति। रोहावेत्याह जाया। तस्माज्जाया-मामंत्रयते। अर्धोह जाया वैष आत्म-नोयञ्जाया।' अर्थात्—वह पुरुष स्वर्गलोक पर आरूढ़ होते समय पत्नी को सम्बोधित करता है—जाये चलो, स्वर्ग में चलें', पत्नी कहती है—स्वर्ग लोक में चलें। इसलिए जाया को आमंत्रित करता है, क्योंकि जाया इस शरीर का अर्धांश है।

४. तै० ब्रा० २।२।२।६

५. वा० रा० ८।६१।२५

६. दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृतवती पतिः।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन्॥

—याज्ञ स्मृ० १।८६

७. पाणिनि—४।१।१३३

८. श० ब्रा०—१३।२।६।७

९. श० ब्रा०—१।६।२।३

१०. निरुक्त—३।२१

११. ऐ० ब्रा० ७।१३

१२. ऐ० ब्रा० ८।३।१३—सखा ह जाया, ३।३।१

१३. अथर्व० १४।२।८

लेते हैं।[१] दोनों का सामूहिक नाम ही 'दम्पति' है।[२] इसका अर्थ है—घर का स्वामी, अर्थात् दोनों मिलकर ही घर के स्वामी होते थे। पति-पत्नी परस्पर समान ही नहीं थे, वरन् एक ही सत्य के दो अंग थे। ऋग्वेद में पत्नी को पति का 'नेम' आधा अंग कहा गया है।[३] तैत्तिरीय संहिता का भी यही मंतव्य है।[४] शतपथ ब्राह्मण में इसकी व्याख्या करते हुए पति-पत्नी को दाल के दो दलों की भांति कहा गया है।[५] बृहदारण्यक उपनिषद् में भी यही शब्द है।[६] इस प्रकार वे दोनों मिलकर एक मन होकर सब कार्य करते थे—यथा, सोमरस निकालते, यज्ञ करते, तथा काम-सुखोपभोग करते थे।[७]

पति के प्रति पत्नी के कर्तव्य :—स्त्री की 'नारी' संज्ञा 'लाजा-होम' के समय होती है, जब वह अपने लिए सर्वप्रथम 'नारी' अभिधान का प्रयोग करती है।[८] इसी समय उसका नर-संबंध प्रारंभ होता है। नारी होने पर ही उसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है।[९] सौभाग्य का प्रधान अर्थ पति का नीरोग-जीवन है।[१०] अतः नारीत्व को प्राप्त करते ही उसके दो प्रधान आदर्श हो जाते हैं—(क) 'आयुष्मानस्तु पतिः'—मेरा पति पूर्ण आयु प्राप्त करे, और (ख) 'एधन्तां ज्ञातयो मम'—मेरी जाति की अभिवृद्धि हो। पत्नी को विचारशीला,[११] पतिपरायण,[१२] पतिव्रत धर्मनिष्ठ[१३] होना चाहिये। नारी के लिए पातिव्रत्य-धर्म प्रशस्त माना गया है, नैतिक स्खलन गर्हा का विषय होता है।[१४] पुंश्चली को वरुण संबंधी पाप लगता है।[१५] पति परायणा

---

१. अथर्व० १४।२।११

२. ऋ०—५।३।८, ८।३१।५, १०।१०।५, १०।६८।२, १०।८५।३२, अथर्व० ६।१२३।३, १२।३।१४, १४।२।६

३. ऋ० ५।६१।८

४. तै० सं० ६।१।८।५ अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी, तै० ब्रा० ३।३।३।५

५. स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ। ततः पतिश्चपत्नी।
चाभवताम्। तस्मादर्धबृगलमिव स्वः इति हस्माऽऽह याज्ञवल्क्यः।
श० ब्रा० १४।४।२।४-५

६. बृह० उप०

७. ऋ० ८।३१।५–६

८. पा० गृ० सू०—१।६२, अथर्व—१४।२।६३

९. पा० गृ० सू० १।८।९ अथर्व १४।१।३८

१०. ऋ० १०।८६।११

११. ऋ० १।१२८।३

१२. ऋ० १०।८५।४७

१३. पा० गृ० सू०—१।८।८

१४. वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सती अन्येन चरति।
शत० ब्रा० २।५।२।२०

१५. वरुणं वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति।
शत० ब्रा०—१२।७।२।१७

होने के साथ ही स्त्री को स्वसुर, घर और समाज की पुष्टि का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।[१] नेत्र में शान्ति रखनी चाहिये तथा प्राणिमात्र के लिए हितकारिणी होना चाहिये। अपने सत् कर्तव्य से सास-श्वसुर, देवर-ननद आदि पर साम्राज्य प्राप्त करना चाहिये।[२]

नैतिकता :—नैतिकता नारी ही नहीं, सभी के लिये भूषण है। आर्य नारियाँ सदाचार के लिए विख्यात थी। बाल्यकाल में पिता के यहाँ, और विवाह होने पर पति के आश्रय में रहती थी। इसके अपवाद अत्यल्प और नगण्य हैं।

सन्तति :—पुत्र-सन्तति से स्त्री की प्रशंसा है।[३] बीस सन्तति होने पर भी जिसके शरीर में विकृति न आवे, वह स्त्री भाग्यशालिनी मानी जाती थी।[४] वैसे साधारणतया दस सन्तति का आधान होता है।[५] अधिक सन्तान होने से जीवन कष्टमय हो जाता है।[६]

विवाह :—वेस्टरमार्क की दृष्टि में, 'मनुष्य समाज के इतिहास में यथासम्भव कभी कोई ऐसी अव्यवस्था नहीं रही है, जबकि किसी न किसी रूप में विवाह-प्रथा विद्यमान न रही हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य को वैवाहिक जीवन किसी वानर-जाति के पूर्वज से प्राप्त हुआ है।'[७]

वेदकालीन समाज में विवाह की प्रथा सुव्यवस्थित थी। विवाह एक पुण्य संस्कार था; यह सम्बन्ध शारीरिक मात्र नहीं, आध्यात्मिक भी था। संघर्षशील जाति को वंश-वृद्धि की अपेक्षा रहती ही है। अतः आर्यजन विवाह के समय एक स्त्री से दस वीर पुत्रों की उत्पत्ति के लिए, देवताओं की प्रार्थना करते थे।[८]

ऋग्वेदीय विवाह-पद्धति से स्पष्ट है कि उस समय युवावस्था में ही विवाह होते थे।[९] बाल-विवाह के संकेत नहीं मिलते। 'पत्येशसत्ती'[१०] का सायणकृत अर्थ 'पति-कामा' और 'पर्याप्त यौवना है'। वधु को दिया जाने वाला यह आशीर्वाद भी कि वह सास आदि पर सम्राज्ञी

---

१. अथर्व०—१४।२।२७

२. ऋग्वेद—१०।८५।४६ तथा अथर्व० १४।१।२२

साम्राज्ञी श्वशुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवृषु॥

३. ऋ० १०।८६।६

४. ऋ० १०।८६।२३

५. ऋ० १०।८५।४५

६. ऋ० २।३।२०

७. Westermark—'Origin and Development of Moral India.'
जैसा कि श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' ने अपनी पुस्तक 'कला और सौंदर्य' पृष्ठ १०१ पर उद्धृत किया है;

८. दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि। —ऋ० १०।८५।४५

९. यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा। —अथर्व० १।२९।५

१०. सोमो वधूयुरभवदश्विना स्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्येशसन्तीं मनसा सविता ददात्॥ ऋ० १०।८५।९

बनें, किसी बालिका-वधू के लिए चरितार्थ और उपयुक्त नहीं होगा। गृह्यसूत्र के कथनों से भी पूर्ण-यौवन प्राप्त स्त्री-पुरुषों के ही विवाह सिद्ध होते हैं। उनमें विवाह के अनन्तर रजःशुद्धि के पश्चात् वरवधू-अभिगमन की आज्ञा दी गई है।[१]

ऋग्वेद में ही कतिपय उपाख्यान ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उस काल में छोटी कन्याओं के भी विवाह यदा-कदा हो जाया करते थे। उषस्ति ऋषि का विवाह छोटी आयु की कन्या के साथ हुआ था। नासत्यगण ने विमला का विवाह उसकी बालिकावस्था में ही किया था। इन्द्र ने कक्षीवन को वृचया नाम्नी बालिका समर्पित की थी।

ऋग्वेद काल में एक विवाह प्रथा (Monogamy) प्रचलित थी, किन्तु बहुविवाह (Polygamy) के भी उल्लेख मिलते हैं। विवाह के तीन प्रकार थे—क्षात्र या राक्षस, स्वयंवर और प्राजापत्य। इनके क्रमशः उदाहरण हैं, राजा पुरुमित्र की कन्या कमयु का विमद द्वारा अपहरण,[२] सूर्या द्वारा सोम का वरण[३]—जिसमें अश्विन् ने दिधिषु (Go-between) के रूप में कार्य किया था। प्राजापत्य विवाह सामान्यतया होते थे। इनमें 'संस्कार' होते थे। विवाह-पद्धति में सम्माननीय आध्यात्मिकता की अभिहिति थी। वह एक पुण्य संस्कार था।

भाई-बहिन का विवाह :—यम-यमी संवाद[४] के अनुसार भाई-बहिन का विवाह हेय माना जाता था। यम-यमी संवाद केवल नष्ट होती हुई वन्य-प्रथा के अवशेष को व्यक्त करता है। इससे विदेशी विद्वानों का यह निष्कर्ष निकालना कि वैदिक समाज में ऐसे विवाह होते थे, बिलकुल असमीचीन है।

विवाह में पिता की आज्ञा :—युवावस्था में भी स्त्री-पुरुषों के विवाह उनके माता-पिता की सम्मति से ही होते थे। कन्या का विवाह तो माता-पिता की इच्छा पर ही निर्भर था, और वह इसे ही श्रेयस्कर भी समझती थी। राजा रथवीति ने अपनी विदुषी रानी शशीयसी की सहमति से अपनी पुत्री श्यावाश्व ऋषि को दी थी। वृद्ध च्यवन ऋषि से विवाही सुकन्या का कथन है कि मेरे माता-पिता ने मुझे जिस व्यक्ति को दिया है, उसे मैं जीते जी नहीं छोड़ूँगी।'[५]

कन्या का विवाह पिता का अनिवार्य कर्तव्य था, अपनी दुहिता के लिए अच्छे वर का प्रबंध कर सकना पिता के लिए असीम सुख का कारण होता था।[६] ऐसी दशा में यह कल्पना कि वेद काल में विवाहों पर माता-पिता का तनिक भी नियमन नहीं था, और कन्या अपने

---

१. पा० गृ० सु० १।११।७ —तामुदुह्य यथर्तुं प्रवेशनम्।
इस पर हरिहर भाष्य—प्रवेशनम् अभिगमनम् तथा गोभिल गृ० स०—२।५।६
२. ऋ० १।११६।१, १।११७।२०, १०।३०।७
३. ऋ० १।१६।११७,१।११६।७
४. ऋ० १०।१०
५. शत० ब्रा०—४।१।५।६ सा हो वाच यस्मै मां पिता
दानन्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति।
६. क० ३।३।१।१—पिता यत्र दुहितुः सैकमृजन् संशाम्येन मनसा दधन्वे।

पति का स्वयं वरण कर लेती थी, नितान्त भ्रात प्रतीत होती है। स्वयंवर के जो उल्लेख है, वे केवल कतिपय क्षत्रिय कन्याओं के है और उनमें भी परोक्ष नियमन पिता का रहना ही था।

दहेज :—वेद काल मे दहेज प्रचलित था। दहेज के अनुसार वधू का महत्व बढ़ जाता था।[1] सूर्या का दहेज उसके पति के यहाँ पहुँचाया गया था।[2]

अभ्रातृ का कन्या से विवाह निषेध :—वेद काल में भ्राता-हीना कन्या से विवाह करना श्रेयद नही माना जाता था, क्योंकि ऐसी स्त्री से उत्पन्न पुत्र को प्रायशः उसका नाना गोद ले लिया करता था, और जामाता को केवल धनवस्त्रादिक पर ही सन्तुष्ट होना पड़ता था।[3] अपने पुत्र पर से इस प्रकार अपनत्व और अधिकार छोड़ना किसे अच्छा लगेगा ?

ऋग्वेद के समान ही ब्राह्मण-ग्रन्थो तथा स्मृतियो मे भी भ्रातृ-हीना कन्या से विवाह करना ठहराया गया है।[4]

बहु विवाह :—आर्यजनो मे एक विवाह ही प्रशस्त था। जन-सामान्य में बहु-विवाह बिल्कुल वर्जित था, तथापि ऐसे विवाह भी होते थे। ऋग्वेद में एक पति की अनेक पत्नियों के उल्लेख मिलते है।[5] राजाओं के महिषी,[6] परिवृक्ती,[7] वावाता,[8] और पालागली[9] सज्ञा-वाली चार प्रकार की पत्नियाँ थी। वावाता उसकी सर्वाधिक प्रिया होती थी और पालागली किसी राज-दरबारी की कन्या होती थी, जो किसी राजनीतिक उद्देश्य से राजा को ब्याह दी जाती थी। च्यवन ऋषि[9] की अनेक पत्नियाँ, याज्ञवल्क्य[10] की दो पत्नियाँ और सोभरि[11] ऋषि के पचास राजकन्याओं से विवाह के उल्लेख प्राप्त होते है। तथापि ऋग्वेद काल में ही बहु विवाह कम होने लगे थे और वे आदर की दृष्टि से नही देखे जाते थे। जिमर (Zimmer) के अनुसार प्रथम विवाहिता पत्नी ही सही अर्थो में पत्नी मानी जाती थी, और बहुविवाहो की संख्या नगण्य हो गई थी।[12] देलब्रुक (Delwuck) ने स्पष्ट किया है कि यज्ञादिक कर्म के प्रसग में 'पत्नी' शब्द का सदा एकवचन में प्रयोग हुआ है, जो एक विवाह की वैधता का स्पष्ट संकेत है।[13]

---

१. ऋ० ५।१७।१२
२. ऋ० १४।१।१३
३. ३।३१।१
४. ऋ० १।७१।१—पति न नित्य जनयः सनीलाः
५. ऋ० ७।२६।३—जनीरिव पतिरेक. समान.
६. शत० ब्रा०—६।५।३।१
७. ऋ०—१०।१०२।११
८. ऐत० ब्रा० १२।११
९. शत० ब्रा० १३।४।१।८
१०. ऋ० १।११६।१०
११. बृहदा० उप० १०२, ऋ०—८।१९।३६
१२. और १३ देखिये—'Women in the Vedic Age' by Shakuntala Rao Shastri

विवाह के समय के उपादेय वस्तुएं :—विवाह होने पर वधू डोली या पालकी में पतिगृह को ले जाई जाती थी। इसे 'वह्य'[१] कहते थे। यह अनेक रमणीय चित्रों से आकृतियों और स्वर्ण-खचित आवरणों से सजायी जाती थी।[२] विवाह के समय बैठने के लिए 'आसन्दी' का भी प्रयोग होता था। वैवाहिक शय्या का नाम 'तल्प' था, जो पवित्र उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी से बनता था। इस बहुमूल्य पलंग पर वर-वधू नव समागम के समय आसीन होते थे।[३]

सपत्नी कलह:—ऋग्वेद के दशम मण्डल में सपत्नियों द्वारा प्रयोज्य मंत्र दिये हुए हुए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि बहुपत्नित्व कलह का आवास होता था। भास के नाटकों में भी ऐसे प्रयोग दिए गए हैं।

विधवा विवाह :—इस समय विधवा-विवाह अत्यन्त नगण्य और किंचिदपि समादृत नहीं था।

सती प्रथा :—सती प्रथा आदर की दृष्टि से देखी जाती थी, किन्तु सती होना ऐच्छिक था, अनिवार्य नहीं। और न सती होने के लिए किसी पर दबाव ही डाला जाता था।

पर्दा-प्रथा :—उस समय में पर्दा-प्रथा का नाम भी नहीं था। स्त्रियां प्रत्येक जन कार्य में निःसंकोच स्वतन्त्रतापूर्वक भाग ले सकती थीं। उत्सव स्त्री-पुरुषों से सम्मिलित हुआ करते थे।

बहन भाई का सम्बन्ध—

वैदिक परिवार में बहिन भाई का अपरिमित स्नेह पाती थी। वह भाई के कारण सौभाग्यशालिनी मानी जाती थी, और इसी से उसे 'भगिनी' नाम से अभिहित किया जाता था। पिता के असमर्थ या मृत होने पर बहिनें भाई पर आश्रित रहती थीं।[४] मेकडानल ने 'अभ्रातरो न योषणोव्यन्त'[५] तथा अभ्रातरः इव जाययस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः'[६] तथा निरुक्त[७] की साक्षी देकर कहा है कि उस समय में भाईहीना कन्याओं की बड़ी दुर्दशा हो जाती थी।[१] इसी

---

१. सा भूमिमारुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधुरिव।

अथर्व—४।२०।३

२. प्रोष्ठेशया बह्येशया नारीयस्तिल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि॥

ऋ० ७।५५।८

३. आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।

अथर्व० विवाह सूक्त १४।२।३१

४. ऋग्वेद १०।८५।४६ ऐ० ब्रा० ३।३७।५

५. ऋग्वेद १०।८५।४६, १।१२४।७

६. अथर्व १।१७।१

७. निरुक्त ३।५

१. Vedic Index 2।496

कारण वेद काल में भाई-बहिनों के पारस्परिक प्रेम पर बहुत बल दिया जाता था।[1]

वेद मे कन्याएँ—

आर्यों को कन्याएँ उतनी ही प्रिय थी, जितने पुत्र। कमनीय कन्याओं की प्राप्ति के लिए वे पूषा देवता की मनौतो करते थे। कन्याओं का समादर इतना अधिक था कि उन्हें आर्य जन पवित्र देवी के रूप में देखते थे। अपने दौहित्र को वे पुत्र के अभाव में अपनी सम्पत्ति का अधिकारी भी बना लेते थे। कन्या के भरण-पोषण, संरक्षण और परिणय का भार पिता अथवा उसके अभाव मे भाई पर रहता था। ऋग्वेद मे माता की गोद मे लेटी हुई दो बहिनों का वर्णन है,[3] जिसमे माता-पिता के कन्या प्रेम का बोध होता है। परन्तु कहीं-कहीं बहन की चाह कम थी इसका कारण सम्भवतः यह था कि वह विवाह के बाद दूसरे कुल में चली जाती थी।[4]

कन्या का एक पर्याय 'दुहिता' है। यह दुहने अर्थवाची 'दुह्' धातु से बना है। विद्वानो का विचार है कि कन्याएँ दूध दुहने का कार्य करती थी और गोरक्षा का प्रधान कार्य घर में इन्हीं के हाथो रहता था। कन्याएँ तथा स्त्रियाँ रुई धुनती, वस्त्र बुनती और कसीदा-कारी करती थी।[5] कन्याएँ जलाशयो से जल भर कर लाती थीं। माता-पिता को वे इस कार्य से विश्राम देती थी। इसके अतिरिक्त वे खेत रखाने का भी कार्य करती थी।

सायणचार्य का निरुक्त पुष्ट टीका के अनुसार 'कन्या' वर्धमान आयु की लड़की को ही नहीं, सुन्दर बालिका को भी कहते थे। उषा का चित्र वस्तुत: तत्कालीन कन्या का चित्र है जो सौन्दर्य-कविता होकर चमक-दमक के साथ आकाश में बढ़ रही है। दर्शक उस पर मुग्ध हैं। उसका प्रेमी सूर्य उसके पीछे लगा हुआ है।[6]

'जार' शब्द सामान्य प्रेमी के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसमे अभी उत्तरकालीन दुरर्थ सम्मिलित नहीं हुआ है[7] जो आगे जाकर पुरुषमेध मे और बृहदारण्यक उपनिषद् में अहल्या-इन्द्र-प्रसग मे अवैध प्रेमी के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। इन उल्लेखो से प्रकट होता है कि उस समय में विवाह पर्व दोनो लिगो (Sexes) को मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता थी। ऐसा यूरोपीय विद्वानो का निष्कर्ष है।

'अमाजू' उस कन्या को कहते थे जो अपने पिता के घर में ही वृद्धा हो जाती थी।

---

१. 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।'

अथर्व—३।३०।३

२. ऋग्वेद १।१८५।५

३. ऋग्वेद १०।८५।२५
अथर्व—१४।१।१८

४. ऋ० २।३।६, २।१८।४ आदि

५. ऋ० ६.५।१

६. ऋ० १०।८५।७; १।१११७-१८, Vedic Index Vol. I P 286–287

जभाला, आत्रेयी आदि ऋषिकाओं, और घोषा आदि के उल्लेख सिद्ध करते हैं कि स्त्रियों का विवाह अनिवार्य नहीं था।

वेद में देवर-भाभी :—ऋग्वेद में वधू को अन्य पति-सम्बन्धियों के साथ देवर पर भी शासन करने का आशीर्वाद दिया गया है।[१] चिता के पास से शोक-कातरा मृत-पतिका को सान्त्वना देकर घर लाने का कार्य भी देवर ही करते थे।[२]

सास-बहू संबंध—वैदिक युग में बहू से सास-ससुर के लिए कल्याण-कारिणी होने की आशा की जाती थी।[३] बहुओं का सास के प्रति अति विनम्र व्यवहार होता था।[४] स्थान-स्थान पर बहुओं का सास-ससुर के प्रति सम्मान व्यक्त हुआ है।[५] विवाह के साथ ही बहू को यह आशीर्वाद दिया जाता था कि वह सास-ससुर, ननद-देवर पर शासन करने वाली बने।[६] अतः सास के वृद्धा होने पर वही घर की रानी बनती थी और गृह-प्रबंध अपने हाथ में लेती थी।

वेद में साला—निरुक्तकार ने 'साला' शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ बतायी हैं।[७] प्रथम, 'स्याल आसन्न : संयोगेनेति नैदाना;' द्वितीय, 'स्यालला जाना दपतीति वा' अर्थात् साला संबंध की दृष्टि से निकटवर्ती होता है या बहन के विवाह के समय 'स्य' (लाज) से बहन के हाथ में खीलें डालता है। ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि को विजामाता और स्याल से भी अधिक द्रव्य देने वाला कहा गया है,[८] जिससे स्पष्ट है कि साले बहनोई को सदा से द्रव्य देते आये हैं।

ननद—ऋग्वेद में ननद का एक ही बार उल्लेख हुआ है।[९] इससे यही ध्वनि निकलती है कि बहुओं के लिए ननदें पीड़ादायी होती थीं और समाज यह चाहता था कि बहुएँ अपने व्यवहार से ननदों पर प्रेमाधिकार जमा लें।

स्त्री-सौंदर्य

वेदों में स्त्रियों का सुचरित्रा-सुन्दरी होना अभीष्ट माना गया है।[१०] स्त्री के अंगों में

---

१. ऋ० १०।८५।४६
२. ऋ० १०।१८।८
३. श्वशुराय शंभु स्योना श्व श्रे । अथर्व १४।२।२६,
४. का सं० ३१।१
५. अथर्व—८।६।२४, ऐ० ब्रा० १२।११, तै० ब्रा० ३।४।६।१५
६. ऋ० १०।८५।४६
७. निरुक्त ६।२
८. 'अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामतुरुत वा या स्यालात्'
—ऋ० १।१०९।२
९. ऋ० १०।८५।४६
१०. आ ब्रह्मन्—पुरन्धीर्योषा :

स्त्रियाँ भाँति-भाँति के आभूषण पहनती थीं, जो उनके सौंदर्याभिवर्द्धन के साथ भद्रता, कुलीनता और मंगल के परिचायक होते थे। वेद का मत है कि स्त्रियों को मस्तक पर आभूषण पहनना चाहिये तथा शयन-विदग्धा होना चाहिये।[१] अथवा स्त्रियों को सर्वदा नीरोग, अंजन एवं घृतादिक स्निग्ध पदार्थों से सुधूपित, बहुमूल्य धातु-रत्नों से अलंकृत सुवस्त्रा,[२] निरश्रु,[३] सुरूपा, हँसमुख,[४] कर्त्तव्यनिष्ठ और पति-प्रिया[५] होना चाहिये। माला, हार, वलय आदि आभूषण स्वर्ण के बनते थे।

वस्त्र—बाहर जाते समय स्त्रियाँ चादर से अपना शरीर ढक लिया करती थीं। वे सुन्दर वस्त्र पहनती थीं, सूती, ऊनी और रेशमी। वे सूत कातती और वस्त्र भी बुनती थीं। वैसे, बुनकर भी होते थे। वेद का आदेश है कि स्त्री के वस्त्र पुरुष को नहीं पहनना चाहिए, इससे अलक्ष्मी का वास होता है।[६] सूत कातना, बुनना, फैलाना, स्त्रियों के काम थे।[७] स्त्रियों की साड़ियाँ बहुमूल्य होती थीं, और उन पर फूल, वेल-बूटे आदि काढ़े जाते थे। कमनीय कलेवरा प्रमदायें स्वर्ण-तार-खचित साड़ियाँ पहनती थीं। धार्मिक उत्सवों पर कोरे वस्त्र धारण किये जाते थे। वैसे नित्य व्यवहार में श्वेत वस्त्र आते थे। तार्प्य और क्षोम नामक रेशमी वस्त्र प्रचलित थे। [केसरिया रंग] के रेशमी परिधान नितान्त पवित्र माने जाते थे। पुराणी युवतिः उषा के वस्त्र अति सुन्दर और रंगीन कहे गये हैं।[८] दुलहिनें चादरें ओढ़ा करतीं थीं, जिन्हें 'उपवासन' कहते थे।[९] स्त्रियाँ हिरण्यमय 'द्रापि' पहनती थीं। यह वस्त्र जाकेट जैसा होता था।[१०] इसका एक रूपान्तरण पुरुष भी पहनते थे। वरुण[११] और सविता[१२] द्वारा द्रापि-धारण करने के उल्लेख भी मिलते हैं। दम्पति सुनहले कीमती 'पेशस्' भी पहनते थे, जो सूर्य-रश्मियों में चमचमाते थे।[१३]

पड़ेगी, और इससे मेरे पातिव्रत्य को आघात पहुँचेगा।'

१. यजु०—११।५६
२. ऋ०—१०।७१।४
३. ऋ०—१०।१८।७
४. ऋ०—३।५८।८
५. ऋ०—१।७३।३
६. ऋ०—१०।८५।३०-३४
७. अथर्व—१४।१।४५
८. ऋ० १।६।२४, १०।१।६
६. अथर्व—१४।२
३. अथर्व—५।७

हिरण्य वर्णा सुभगा हिरण्य कशिपुर्मही।
तस्यै हिरण्यमद्रापयेऽरात्या अकरं नमः॥

११. ऋ० १।२५।१३
१२. ऋ० ४।२३।२
१३. ऋ० ८।३१।८

वसिष्ठानुयायी स्त्री-पुरुष सिर पर कपड़े धारण करते थे। स्त्रियों की केश रचना चार प्रकार की होती थी—चतुष्कपर्द,[1] ओपश,[2] कुम्ब[3] और कुरीर।[4] चार प्रकार से अलंकृत वेणी 'चतुष्कपर्द', गोलाकार, केशरचना 'ओपश,' कुम्भाकृत जूड़ा 'कुम्ब' और शृंगाकृत केश-रचना 'कुरीर' कहलाती थी। महीधर के मत से 'कुरीर' एक प्रकार का स्वर्णाभूषण था।[5]

स्त्री के प्रति हीन विचार:—जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, वैदिक युग में यद्यपि पत्नी की स्थिति बहुत ऊँची थी, तो भी नारियों के प्रति हीन विचार भी कम नहीं थे। इन्द्र का मत था कि स्त्रियाँ मन को अधिकार में नहीं रख सकतीं।[6] उर्वशी विरह-विह्वल पुरूरवा को समझाती हुई कहती है कि स्त्रियाँ भेड़िया के समान हैं, अर्थात् विश्वास जमाकर वध कर देती है।[7] नारी निरीन्द्रिय [शक्तिहीन] होने से सोम की अनाधिकारिणी तथा पापी-पुरुष से भी गयी बीती है।[8] पतिव्रता होने पर भी अन्य पुरुष के साथ विचरण कर लेने से स्त्री झूठी है।[9] वह विनाश या आपत्ति से संबद्ध है।[10]

अथर्ववेद काल में आये हुए परिवर्तन और ऋग्वेद काल से उनका अन्तर

ऋग्वेद काल में स्त्रीत्व के सितासित दोनों पक्ष दिखायी देते हैं। जहाँ विदुषी, अनिरुद्धा, सम्मानार्ह और अधिकारवत्ती है, वहाँ उसमें नीति-स्खलन और परम्परा-राहित्य भी विद्यमान हैं। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद कालीन समाज सभ्यता की ओर अग्रसर होता हुआ अर्द्धसभ्य समाज है, जिसमें विवाह के लिए स्त्री का अपहरण, शौर्य-कार्यों से स्त्री का अनुरंजन तथा पारस्परिक पूर्वराग और स्वयंवरण भी होते रहे हैं। इसी से वे मानते हैं कि यह सभ्यता योरोपीय सभ्यता है जिसे आर्य लोगों ने भारत में स्थापित किया है।

---

१. ऋ० १०।११४।३

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा।

२. ऋ० १०।८५।८, अथर्व ६।१३८।३, वाज० स० ११।५० आदि

३. ऋ० १०।८५ विवाह सूक्त

४. ऋ० १०।८५।८

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराऽग्निरासीत् पुरोगवः॥

५. महीधर :—

स्त्रीभिः शृङ्गारार्थं धार्यमाणं कनकाभरणम्।

—वाज० सं० ११।५० टीका।

६. इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रियां अशास्यं मनः। अधः पश्यस्व मोपरि।

—ऋ० ८।३३।१७-१६

७. पुरूरवो मा मृथाः। न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति। सालावृकाणां हृदयान्येताः।

—ऋ० १०।९५।१५

८. तै० सं० ६।५।८।२, शत० ब्रा० ४।४।२।१३, का० स० २८।८।४४

९. मैत्रायणी संहिता—१।१०।११, शत० ब्रा०—२४।१।१।३१

१०. मै० सं० ३।६।३

'अथर्ववेद' नाम अथर्वन् ऋषि के नाम पर पड़ा है। मडाम रगोजीन (Madame Ragozine) ने अपनी पुस्तक 'वैदिक इंडिया' में इस वेद को 'अनार्य कृति' बताते हुए कहा कहा है कि यह भूत-प्रेत उपासना की कृति है और तूरानी चैल्डिया की प्रतिच्छाया है, जिसमें मन्त्राधिक की प्रधानता है।[१] प्रो० ग्रिफिथ ने भी अथर्ववेद में वर-वधू आदि के सम्बन्ध में अनेक मन्त्रों का उल्लेख होना बतलाया है।[२]

अथर्ववेद के काल में कन्या का जन्म बुरा समझा जाने लगा था, और उसे रोकने के लिए प्रार्थना तथा धार्मिक कृत्य किये जाते थे। 'प्रजापति, अनुमति, सिनिवलि ने आकार बनाया है, वे यहाँ कन्या के स्थान पर बालक रख दें।[३] इसी प्रकार वन्ध्यत्व के नाश और पुत्रोत्पत्ति के लिए भी मन्त्र हैं।[४] कन्या का विवाह करना अनिवार्य समझा जाता था।[५] विवाह होने पर भी उसे माता-पिता और भाई से आबद्ध रहने की प्रेरणा दी जाती थी।[६]

कन्या-जन्म दुःखद माना जाता रहा है, फिर भी कन्या का उपनयन तो अथर्ववेद ने विहित बताया है। मन्त्र ब्राह्मण में उपनयन संस्कार केवल बालकों के लिए हैं किन्तु कौशिक-सूत्र में अथर्ववेद १४।१।३५-३६ के मन्त्र लिये गये हैं, जो केवल स्त्रियों के उपनयन में ही प्रयुक्त हो सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी स्त्रियों के 'व्रतोपनयन' का उल्लेख है।[७] गोभिल गृह्यसूत्र[८] में स्त्री के लिए वेदाध्ययन का विधान है और उसके लिए 'यज्ञोपवीतनी' शब्द का प्रयोग हुआ है। यम संहिता और हारीत संहिता में भी इसकी पुष्टि की गई है।

यम संहिता का वचन है—'प्राचीनकाल में स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत, वेदस्पर्श और सावित्री—मन्त्रोच्चारण का विधान था।'[९] हारीत-संहिता का अभिमेय है कि माधवाचार्य के मत से स्त्रियों का विवाह उपनयन के पश्चात् होना चाहिये।[१०]

विवाह :—कन्या की विवाह-आयु पर कोई रोक नहीं लगायी गयी थी। युवक-युवतियों के पूर्वानुराग के उल्लेख भी मिलते हैं, जिससे बाल विवाह के प्रचलन की धारणा निर्मूल सिद्ध हो जाती है।[११] ब्राह्म और गान्धर्व विवाहों के संकेत मिलते हैं। प्रेमी के प्रेयसी के घर आने

---

१. 'The next counterpart of that with which we became familiar in Turanian Cheldea. —Vedic India p. 117-119

२. प्रो० ग्रिफिथ कृत 'अथर्ववेद का अनुवाद'—भूमिका, पृष्ठ ६-११

३. अथर्व० ६।११।३

४. अथर्व० ३।२३

५. अथर्व० २।३६।१-३

६. अथर्व० १।१४।२

७. शत० ब्रा० १।३।१।१।१२-१३

८. गो० गृ० सू० २।१-६. ३।७।१३

९. य० सं०

१०. हा० स०

११. देखिये, श्री बलदेव उपाध्याय कृत 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' तथा श्री मंगलदेव शास्त्री कृत—'वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि'

के समय अन्य सबको भुला देने के मन्त्र भी मिलते है।[1]

वर द्वारा वधू का मुख देखना :—इसके विपरीत ऐसे उल्लेख भी हैं कि वर-वधू का मुख तभी देखता था, जब वह उसकी विधिवत् पत्नी बन जाती थी।[2]

गृहणीवाची शब्द :—'जाया' और 'पत्नी' शब्द तो अथर्ववेद में भी ऋग्वेद की ही भाँति, उन्हीं अर्थों मे प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु 'स्त्री' शब्द का अर्थ 'पत्नी' हो गया है। जबकि ऋग्वेद में इसका अर्थ 'सामान्य-नारी' था।[3] 'दम्पति' का अर्थ यहाँ ऋग्वेद के विपरीत 'गृहपति' न होकर 'पति-पत्नी' है और यह शब्द द्विवचन में प्रयुक्त हुआ है। इससे स्पष्ट है कि समाज मे पति-पत्नी मिलकर एक व्यष्टि बनते थे और उनके संयुक्त कर्तव्य होते थे।

पति-वशीकरणेच्छा : अथर्ववेद में अनेक सूक्त विवाह एवं प्रेम के विषय में है।[4] चौदहवें काण्ड में पुत्र प्राप्ति के लिए तथा सद्योजात-शिशु-रक्षार्थ प्रार्थनायें की गई है।[5] अन्यत्र पति का प्रेम दिलाने वाले और सपत्नी को वश में कराने वाले जादू-टोनों[6] का वर्णन है।

ऐसे मन्त्रो और क्रियाओं को आभिचारिक कहते थे, और मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण तथा स्तम्भन के लिए इनका प्रयोग होता था। एक मन्त्र में[7] एक स्त्री अपनी प्रतिद्वन्द्विनी की असफल और ध्वस्त करने की उत्कट प्रार्थना करती है। पति को वश में करने के लिए अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों का पाठ किया जाता था।[8] इन मन्त्रो में ऐसी प्रार्थनाएँ है कि—देवता मेरे पति को उन्मत्त बना दें जिससे वह अहर्निश मेरा ही ध्यान करने लगे। एक प्रार्थना यह है कि यदि पति भागकर कहीं चला गया हो तो लौट आये।[9] कौशिक सूत्र से ज्ञात होता है कि पति के वशीकरणार्थ स्त्री उसकी मूर्ति बनाकर तस बाणों से उस मूर्ति के शिर को बेधती है और वशीकरण मन्त्रो को पढती है।[10] इसी प्रकार स्त्री का प्रेम पाने के लिए पुरुष स्त्री की मूर्ति बनाकर बाण से उसके हृदय को बेधता है और अथर्ववेद के कुछ मंत्रो का पाठ करता है।[11] इन सूक्तो से तत्कालीन वैदिक समाज पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इससे सम्पूर्ण समाज का विविध चित्र उपस्थित हो जाता है।

सती-प्रथा :—अथर्ववेद में दो एक मन्त्रो[12] से सती-प्रथा की पुष्टि होती है। इस प्रथा

---

१. अथर्व० ५।८।८२
२. अथर्व० १४।१।५६-५७
३. ऋ० १४।१६४।१६, ५।६१।८ आदि
४. अथर्व० ६।८।६, १०२, १२६, १३०, १३१, १३२
५. अथर्व० १।१४, ३।२३
६. अथर्व० ३।१८।१ ७।३८-११३ कौ० सू०—३६।१२, १६-२१।३८
७. अथर्व० १।१४
८. अथर्व० ६।१३०। और ६।१३८ के कुछ मन्त्र
९. अथर्व० ६।१३१।४
१०. कौ० सू०
११. कौ० सू०—
१२. अथर्व० १८।३।२, ३, ४, ३५

का मूल इस विचार में था कि मृत व्यक्ति की आत्मा बनी रहती है, अतः उसकी सभी प्रिय वस्तुएँ उसके साथ जानी चाहिए। सभी आदिम जातियों में यह प्रथा मिलती है।

सती-प्रथा के ठीक विपरीत स्त्री के पुनर्विवाह के भी प्रसंग मिलते हैं।[१] समाज पर्याप्त सहिष्णु था। यहाँ तक कि कन्या के पुत्र को भी समाज सम्मान देकर ग्रहण कर लेता था।[२] तत्कालीन सामाजिक स्वतंत्रता हमें पुरुष द्वारा प्रयुक्त स्त्री प्रसाधन विधि से ज्ञात होती है।[३]

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद का स्त्रीत्व भारतीय-ईरानी स्त्रीत्व है, क्योंकि इसमें तंत्र-मंत्र का विश्वास, ओषधि-विधान और अग्नि द्वारा भूत-प्रेत-विद्रावण आदि की क्रियाओं का उल्लेख है।[४]

ख
ब्राह्मण-ग्रंथों में नारी

पुत्री का जन्म न हो—ब्राह्मणों का समय और कालक्रमिक स्थान वेद का उत्तरवर्ती माना जाता है। इस समय तक आते-आते कर्मकाण्ड की वृद्धि हुई और यज्ञ में स्त्री का स्थान निश्चित हुआ। इसी काल में धार्मिक कृत्यों और सामाजिक कल्याण के लिए स्त्री की अनिवार्यता प्रतिपादित की गई। स्त्री से पुत्र की प्राप्ति होती है, जो मुक्ति के लिए एक नौका है। मुक्ति हेतु पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा इतनी तीव्र होने लगी कि तैत्तिरीय संहिता में निर्दिष्ट द्वितीया और पूर्णिमा के यज्ञों में पुत्री का जन्म न हो—इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए विशेष धार्मिक कृत्य रखा गया। यह बात भुला दी गई कि स्त्री के बिना जाति का अस्तित्व ही मिट जायगा।[५] ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान में नारद ने हरिश्चन्द्र से पुत्र का महत्व प्रदर्शित करते हुए अन्त में कहा था—पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपत्ति है, पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।[६] ध्यान देने की बात यह है कि अथर्ववेद में भी सिनिवलि देवी (नवचन्द्र की देवी) की प्रार्थना इसी हेतु की गयी है कि वह पुत्री के बदले पुत्र प्रदान करे।

पुत्रियों से बचने का एक साधन—पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि पुत्रियों को शीत-ग्रीष्म की विभीषिका में डाल देना (Exposure) भी उनसे मुक्ति पाने की एक विधि थी जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थी। सोमयज्ञ में ऐसे धार्मिक कृत्य (rituals) हैं, जिनके अनुसार पुत्र को तो उठा लिया जाता है, किन्तु पुत्री को पीछे ही छोड़ दिया जाता है। मैत्रायणी संहिता[७] और कठक संहिता[८] में ऐसे प्रसंग हैं। सिमर और डेलब्रुक

---

१. अथर्व० ६।५।२७, २८
२. अथर्व० ५।५।८
३. अथर्व० ६।८।६, १०२, १२६, १३०, १३१, १३२
४. Vedic India, p. 117-119 by Madame Ragozine.
५. Women in the Vedic Age—Shakuntala Rao Shastri
६. ऐत० ब्रा० ७।१३ Dr. Winternitz—Die Frau in den Indischen Religionen p. 2
७. मैत्रा० सं० ४।६।४, ७।६

(Zimmer and Delbruck) का निश्चित मत है कि बालिकाओं का उद्घाटन (exposure) किया जाता था, किन्तु बोथलिंग (Bothlingk) इस मत से असहमत है। उनका कथन है कि इस प्रथा का अभिप्राय पुत्री को विवाह में दे देना है।

पुत्री और भगिनी का परिवार में स्थान—ऐतरेय ब्राह्मण के अग्निमरुत शास्त्र से[1] पत्नी को बहिन से उच्च स्थान दिया गया है, जबकि भगिनी सहोदरा होती है और पत्नी अन्योदरा।

पत्नी और यज्ञ—अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वरुण प्रग्रह यज्ञ और वाजपेय यज्ञों में आरम्भ से अन्त तक पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। इन यज्ञों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य थे।

यज्ञ मे पत्नी—यज्ञ मे पत्नी की अनिवार्यता यद्यपि ऋग्वेदकाल से ही मानी गयी है, तथापि ऐतरेय ब्राह्मण में यह प्रतिपादित किया गया कि यदि किसी के पत्नी न हो तो भी उसे यज्ञ करना चाहिए, विशेषतः सौत्रामणि यज्ञ, जिससे वह पितृ ऋण से मुक्त हो सके।[2] विधुर द्वारा यज्ञ करना भी एकाकी ही है, क्योंकि पत्नी श्रद्धा है और होता सत्य या ऋत। श्रद्धा और सत्य मिलकर ही सर्वोच्च युग्म बनते हैं, जिससे स्वर्ग की विजय होती है।

जोरास्ट्रियन और हिब्रू धर्मों के समान ही यहाँ भी ऋतुवती स्त्री को अपवित्र माना गया। अथर्ववेद मे ऐसी स्त्री के हाथ का भोजन खाने पर शुद्धि के लिए प्रायश्चित करने का विधान है।

स्त्री का समाज में स्थान—ऐतरेय ब्राह्मण[3] मैत्रायणी संहिता[4] तथा अथर्ववेद[5] में भी स्त्रियो के लिए सभा-सम्मेलनो में जाना वर्जित बताया गया है।

मैत्रायणी संहिता[6] के अनुसार स्त्री जुए और मद्य के समान है, और मानव-समाज के महादोषो में से एक है, वह मानव समाज में 'अनृत' है और 'निर्ऋति' से सम्बन्ध रखती है। निर्ऋति अथर्ववेद की एक अधिदेवता है, जिसके प्रभाव से मुक्ति के लिये कतिपय मंत्र दिये गये हैं। तैत्तिरीय संहिता[7] और शतपथ ब्राह्मण[8] मे स्त्री को बुरे आदमी से भी नीची कहा गया है, पर शतपथ ब्राह्मण में ही स्त्री को पुरुष का अर्द्धभाग भी कहा है।[9] फिर पति के भोजन कर चुकने पर ही पत्नी को भोजन करने का आदेश दिया गया है।[10] वह स्त्री, जो पति को उलट कर उत्तर नहीं देती, प्रशस्य मानी गई है।[11]

---

१. एत० ब्रा० ३।३७, १३।१३
२. एत० ब्रा० ७।६-१०
३. एत० ब्रा०
४. मै० सं० ४।७६
५. अथर्व० ७।३८।४
६. मै० स० ३।६३
७. तै० सं० ६।५।८।२
८. शत० ब्रा० १।३।१।६,१२,१३
९. शत० ब्रा० ५।२।१।१०
१०. शत० ब्रा० १।६।२।१२, १०।५।२।६
११. ऐत० ब्रा० ३।२४।७, गोपथ ब्रा० २।३।२२

बहु-विवाह—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस समय बहु-विवाह प्रचलित था और राजा के महिषी, परिवृक्ति, विविता और पालागली संज्ञक चार प्रकार की रानियां होती थीं।

पुत्री-विक्रय और कन्योपहार—मैत्रायणी संहिता[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में[2] पुत्री-विक्रय का तथा जैमिनीय ब्राह्मण में[3] कन्या को भेंट में देने का उल्लेख है।

अव्यभिचारिणाएँ—वाजसनेयी संहिता आदि में 'कुमारी-पुत्र' शब्द आया है, किन्तु उससे 'वैदिक इंडेक्स' की यह स्थापना प्रमाणित नहीं होती कि उसका अर्थ 'कन्या का पुत्र' था और उसे उद्‌घाटित करके मार डाला जाता था, क्योंकि गौतम और बोधायन के बाद के संहिताकारों ने शूद्रा और आर्य के समागम से उत्पन्न पुत्र को सामाजिक और साम्पत्तिक अधिकार प्रदान किये हैं।

ब्राह्मण-ग्रंथों में दासी-पुत्र को ब्राह्मण की सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं किन्तु उपनिषद काल में उसे ब्राह्मण-श्रेणी में स्थान दिया गया था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण,[4] ऐतरेय ब्राह्मण[5] और वाजसनेयि-संहिता[6] आदि में गणिकाओं का भी उल्लेख है। इनसे यह स्पष्ट है कि उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

यज्ञाधिकार :—शतपथ ब्राह्मण में स्त्री यज्ञ की अधिकारिणी भी बताई गई है[7] और उसे वेदों के अध्ययन का भी अधिकार है।[8] यज्ञ के पूर्व उसका उपनयन होता है।[9] तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रथा का विस्तार किया गया है।[10] उसके अनुसार पत्नी का व्रतोपनयन, यदि पहले न हुआ हो तो, विवाह के बाद करके उसे यज्ञ में अपने साथ बैठाना चाहिए।[11]

शिक्षिका :—'वैदिक इन्डेक्स' में ऐतरेय ब्राह्मण[12] और कौशीतकी ब्राह्मणों के उदाहरण देकर यह दिखाया गया है कि उस समय स्त्री शिक्षिका भी होती थी। जब स्त्री गंधर्वाधिकृत होती है तो उसका वचन अवश्य मान्य होता है।

ब्राह्मण-युग में परिवार :—ब्राह्मण-युग में परिवार टूटने लगे थे,[13] क्योंकि संयुक्त परिवार में स्त्रियों का स्वाधिकार नहीं रहता, और उनको अपनी सन्तति को भी पूर्णतया सुखी

---

१. मै० स० ११०।११
२. तै० ब्रा० ३।१।२।४
३. तै० ब्रा० ३।१२२
४. तै० ब्रा० ३।४।१५।१
५. ऐत ब्रा० १।२७, १५।२
६. वाज० स० ३०।२२
७. शत० ब्रा० १।१।४।१३
८. शत ब्रा० १।२।१४।१३
९. शत० ब्रा० १।३।१।१२-१३
१०. तै० ब्रा० ३।३।३।२-३
११. वही
१२. ऐत० ब्रा० ५।२९, कौशी ब्रा०
१३. जै० ब्रा० ३।१५६

फिर उसके बायें हाथ को, सद्भाग्य और दीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हुआ, अपने हाथ में ले लेता है।

इसके अनंतर अनेक देवताओं की स्तुति है और तत्पश्चात् वह श्लोक आता है, जिसमें पत्नी को सास-ससुर, ननद और देवरों पर शासन करने का कथन है।[१]

इसके आगे का श्लोक मन्त्र ब्राह्मण की अपनी विशेषता है, जो न तो ऋग्वेद में और न अथर्ववेद में मिलती है।

'तुम्हारा हृदय मेरे व्रतों—धार्मिक कर्तव्यों का—और तुम्हारा मन मेरे मन का, अनुवर्ती बने। तुम मेरे आदेश पूर्ण-चित्त से पालन करो। बृहस्पति तुम्हें आदेश पालन की शक्ति दें।'[२]

इससे सुन्दर वैवाहिक आदर्श मिलना कठिन है। पति जीवन के समस्त कर्तव्यों में अपनी पत्नी का सहयोग चाहता है, और इन सबके लिए पत्नी के, अपने से अभिन्नत्व-पूर्ण एकत्व-की कामना करता है। इस प्रकार पत्नी पति के धर्म-कार्यों की सहयोगिनी बनती है।

ध्रुव दर्शन प्रथा दृढ़ता की प्रतीति का संकेत है—'आकाश स्थिर है, समस्त ब्रह्माण्ड स्थिर है, ये पर्वत स्थिर हैं, इसी प्रकार यह वधू अपने पति के परिवार में स्थिर है।'[३]

इसके अनुवर्ती श्लोक में दम्पति के वैवाहिक जीवन की एकता की कामना है।

'जो कुछ तुम्हारे हृदय में है, वही मेरे हृदय में हो; जो मेरे हृदय में है, वही तुम्हारे हृदय में हो।'[४]

तत्पश्चात् वधू का वर-गृह के लिये प्रस्थान होता है। उस समय उनके मार्ग की सुरक्षा के लिए की जाने वाली प्रार्थनाएँ दी हुई हैं। वर-गृह में पहुँचने के बाद होने वाली स्थालीपाक आदि की प्रथाओं के भी उल्लेख हैं।

इस प्रकार हिन्दू-विवाह का लक्ष्य है पति-पत्नी का अभिन्नत्व, वंश-वर्द्धनार्थ पुत्र की प्राप्ति और समरस, समृद्ध, सामाजिक और धार्मिक जीवन-यापन।

घ

श्रौत-सूत्रों में नारी

यज्ञ में नारियों की अर्हता :—श्रौत सूत्र मुख्यतः वैदिक कर्मकाण्ड के ग्रन्थ होने से सामाजिक दशाओं को प्रायः प्रस्तुत नहीं करते, तथापि इनमें वैदिक कर्मकाण्ड में नारी की स्थिति का सर्वाधिक विमर्श हुआ है। यद्यपि ऋग्वेद में विश्ववारा आहुति देने का उल्लेख है, तथापि ब्राह्मण-ग्रंथों में स्त्री की स्थिति, यज्ञ- कार्य में, पुरुष से निम्न कही गई है। 'स्वर्ग-कामोयजेत्' की व्याख्या करते हुए ऐतिसायन ने प्रतिपादित किया कि इस शब्द के पुंलिंग

---

१. म० ब्रा०—१।२।१४, मिलाइए मन्त्र पाठ १।६।६, ऋ०—१०।८५।४६, अथर्व०—१४।१।४४,

२. म० ब्रा० १।२।१५

३. म० ब्रा० १।३।७, मिलाइए ऋ० १०।८५।२०, अथर्व० १४।१।६१

४. मं० ब्रा० १।३।६

होने से स्पष्ट है कि यज्ञ में पुरुष का ही अधिकार है, नारी का नहीं। किन्तु श्रौत-सूत्रों ने वैदिक प्रथा को पुष्टि करते हुए नारी को यज्ञ की अधिकारिणी माना। जैमिनि के पूर्व मीमांसा-सूत्रों में, जिनकी व्याख्या शबर-स्वामी ने की, 'स्वर्गकामो' शब्द को समुदायवाची सिद्ध करते हुए नर-नारी के अधिकार भेद को अनुचित सिद्ध किया गया है।[1]

विरोधियों ने स्मृति के आश्रय से कहा कि धन-स्वामिनी न होने से नारियां का यज्ञ में अधिकार नहीं, और स्त्री पति की क्रीत सम्पत्ति है, वह अपनी निजी सम्पत्ति नहीं रख सकती। इसके उत्तर में जैमिन ने कहा कि स्मृति से श्रुति बलवती है। यज्ञ-फल की इच्छा स्त्री में भी पुरुष की भाँति ही होती है। विवाह संस्कार के समय श्रुति में वर कहता है—'धर्मे चरिते च कामे च नाति चरितव्या' अर्थात् धर्म कार्यों, सम्पत्ति प्राप्ति और उचित इच्छापूर्ति में पत्नी को बाधा नहीं डाली जायगी। दूसरे, स्त्री पति द्वारा खरीदी नहीं जाती, ससुर को बैल या गाय देना एक भेंट है, मूल्य नहीं। क्योंकि मूल्य तो वस्तु के अनुसार न्यूनाधिक होता रहता है। तीसरे वेदों के अनुसार 'स्त्री' सम्पत्ति की स्वामिनी भी है, क्योंकि वह 'परिणय' को एकैव स्वामिनी होती है। इतना ही नहीं, जो कुछ पति अर्जन करता है, उस पर भी पत्नी का अधिकार होता है। शबरस्वामी ने वेद के उदाहरण से इसे सिद्ध किया है।[2]

गृह्य-सूत्रों में नारी

प्रत्येक वेद के अपने-अपने गृह्य-सूत्र हैं। आश्वलायन और शाङ्खायन के गृह्य-सूत्र ऋग्वेदीय है, पारस्कर गृह्य-सूत्र शुक्ल यजुर्वेदीय, बोधायन और आपस्तम्ब के कृष्ण यजुर्वेदीय और गोभिल अथवा खदिर गृह्य सूत्र सामवेदीय हैं। वैतान श्रौत सूत्र अथर्ववेदीय है। शौनक कृत चरण-व्यूह-परिशिष्ट सूत्र में इन गृह्य-सूत्रों के प्रचलन-स्थान दिये हुए हैं। याज्ञवल्क्य संहिता सर्वत्र प्रचलित थी, दक्षिण में यजुर्वेदीय और उत्तर में अथर्ववेदीय पद्धतियाँ अधिक प्रचलित थी।

गृह्यकाल में विवाह का समय

वैदिककाल में समावर्तन संस्कार की समाप्ति के पश्चात् विवाह होता था जिसमें कम-से-कम चौबीस वर्ष की आयु अवश्य हो जाती थी। किन्तु गृह्यकाल में विवाहार्ह आयु में कुछ कमी अवश्य हो गयी थी, क्योंकि नग्निका कन्या वरण के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाने लगी थी। नग्निका के अलग-अलग अर्थों में भी आयु की कुछ कल्पना होती तो ध्वनित होता ही है।[3]

माता का गौरव और अधिकार

पहले सूत्रकारों में यह मतभेद था कि सर्वोत्तम गुरु आचार्य है या माता। कोई आचार्य को और कोई माता को उच्च स्थान देते थे।[4] फिर वसिष्ठ ने निर्णय कर दिया कि माता ही

---

१. मीमांसा दर्शन, ६।१।३।६-१६

२. 'पत्यैव सतमनुमतं क्रियते'

३. देखिये—भक्तिकाल में विवाह प्रकरण

४. आचार्यः श्रेष्ठः गुरुणा मतेत्येके। —गौतम धर्मसूत्र २।५६

सर्वोच्च है।[1]

माता का भरण-पोषण पुत्र का कर्त्तव्य है, चाहे वह व्यभिचारिणी, जातिभ्रष्टा पतिता ही क्यों न हो। पतित पिता परित्याज्य है, किन्तु पुत्र के लिए माता कभी पतित न होती।[2] बोधायन ऐसी दशा में केवल भाषण के लिए निषेध करते हैं।'[3]

ध्रुव दर्शन प्रथा दृढ़ता की प्रतीति का संकेत है 'आकाश स्थिर है, ये पर्वत स्थिर इसी प्रकार यह वधू अपने पति के परिवार में स्थिर है।'[4]

इसके अनुवर्ती श्लोक में दम्पत्ति के वैवाहिक जीवन की एकता की कामना है।

'जो कुछ तुम्हारे हृदय में है, वही मेरे हृदय में हो; जो मेरे हृदय में है, वही तुम्हा हृदय में हो।'[5]

तत्पश्चात् वहू का वर-गृह के लिए प्रस्थान होता है। उस समय उनके मार्ग की सुरक्षा के लिए की जाने वाली प्रार्थनायें दी हुई हैं। वर-गृह में पहुँचने के बाद होने वाली स्थालीपाक आदि की प्रथाओं के भी उल्लेख हैं।

इस प्रकार हिन्दू-विवाह का लक्ष्य है पति-पत्नी का अभिन्नत्व, वंश-वर्द्धनार्थ पुत्र की प्राप्ति और समरस, समृद्ध सामाजिक और धार्मिक जीवन-यापन।

च

उपनिषद् काल में नारी

उपनिषद् वस्तुतः दार्शनिक विचारों के संकलन हैं, इसीलिए उनमें सामाजिक जीवन के प्रसंग नगण्य ही हैं। उपनिषद् ६०० ई० पूर्व ईसा से भी पूर्व के हैं और ये ब्राह्मण ग्रंथों के समकालीन माने जा सकते हैं।

यद्यपि उपनिषदों में नारी शब्द नहीं मिलता, तथापि नारी तत्व उनमें सर्वत्र व्याप्त है। वह नारी तत्व सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमात्मा की शक्ति है, जो माया, प्रकृति, इच्छा, श्री, आदि विभिन्न रूपों में वर्णित हुई है। सद्रूप में सभी अन्तर्भावित हैं। शक्ति (प्रकृति) और शक्तिमान (परमेश्वर) दोनों ही सत् हैं। दोनों का पृथक् अस्तित्व नहीं है दोनों अन्योन्यापेक्षी हैं। नर शक्तिमान है और नारी उसकी शक्ति है।

सृष्टि के आरंभ में शक्ति-शक्तिमान का एक युग्म था। उसने दूसरे की उत्पत्ति की कामना की। तब मन के साथ वाणी का युगल रचा गया।[6] तत्पश्चात् गो-वृषभ[7] और द्यौ-

---

१. उपाध्यायाद्दशाचार्या आचार्याणां शतं पिता।
   पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ —वसिष्ठ धर्मसूत्र १३।४८
२. आपस्तं व धर्मसूत्र १।१०।२८।९, बौधायन धर्मसूत्र २।२।४८
३. पतितः पिता परित्याज्यः माता तु पुत्रे न पतित। —व० ध० सू० १३।४७
४. प० ब्रा० १।३।७, मिलाइये ऋ० १०।८५।२०, अथर्व १४।१।६१
५. पं० ब्रा० १।३।९
६. सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुन समभवत् : बृ० १।२।४:
७. सा गौरभवदृषभ इतर० : बृ० १।४।४ :

सूर्य[1] आदि के मिथुन बने। किन्तु इन मिथुनों से सद्रूप परमात्मा सन्तुष्ट नहीं हुआ, तब उसने इनको अपने में समाहित करके विराट् रूप मे जल पर शयन किया। फिर एकाकी होने से भीति-मय होकर[2] वह गिर गया। इससे उसके दो भाग हो गये। शरीर-पतन से कारण इन दो भागो के नाम 'पति' और 'पत्नी' हुए।[3] ब्रह्म के दो रूप 'सुख' और 'आकाश' क्रमशः इन दोनो भागो में आ गये।[4]

अतः नर [पति] बिना नारी [पत्नी के] अर्द्ध युगल ही कहलाता है, जिसकी पूर्णता की पूर्ति नारी द्वारा ही हो सकती है।[5] 'क' रूप ब्रह्म का शरीर-पतन होने पर नर-नारी शरीरों का नाम काया पड़ा।[6] ये आदि नर-नारी 'मनु'+शतरूपा के नाम से विख्यात हुए।[7] इस प्रकार उपनिषदानुसार नर और नारी दोनों एक ही तेज की दो ज्योतियाँ है "एक तेज द्वै नाम।" क्योंकि जो जो लोक में हैं, वे वैदिक ही है।[8] और इसी प्रकार राधा-माधव भी एक ही ज्योति के दो रूप है।[9]

उपनिषदो मे इस संसार को परब्रह्म की यज्ञ-शाला बताया गया है। नर जिसका 'होता' है और नारी जिसकी 'अग्नि' है। 'होता' द्वारा संचित और प्रक्षेपित हव्य को जैसे अग्नि सत-देवो के पास पहुँचा देती है, वैसे ही नारी भी नर के समस्त संचित, उपार्जित द्रव्यादिको का सम्यक् विभाजन करती है। इस प्रकार सारी सृष्टि नर-नारी के परस्पर अवलम्ब से चलती है। दोनो में अंगांगी भाव है। इस रहस्य को समझना आवश्यक है।

द्वा सुपर्णा ''' तयोर[10] का रहस्य भी यही है। स्त्री-पुरुष दोनो एक ही वृक्ष पर बैठने वाले दो पक्षी है और दोनो के मेल, सहकारिता, और सौहार्द मे ही विश्व की स्थिति है।

छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदो में नारी विषयक छिट-पुट प्रसंग मिलते हैं, जिनका महत्व इसलिए है कि वे वेद-काल तथा स्मृति-काल की मध्यवर्ती शृंखला है।

छान्दोग्य उपनिषद् सामवेदीय उपनिषद् है। इसके प्रथम दो अध्यायों में विवाह-विधान

---

१. अथैतस्य मनसो द्यौ : शरीरम् : बृ० १।५।१२ :
२. सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति सहाय मीक्षाचक्रे: बृ० १।४।२.
३. स इममेवात्मान द्वेधापातयत् : बृ १।४।३:
४. कं ब्रह्म खं ब्रह्म : छान्दोग्य ४।१०।५:
५. अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत बृ० १।४।३
६. कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभि चक्षते।
   ताभ्या रूप विभागाभ्या मिथुन समपद्यत ॥ श्री मद्० भा० ३।१२।५२
७. शतरूपा च ता नारी तपोनिधूर्तं कल्मषाम्।
   स्वायम्भुवो मनुर्देव पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः ॥विष्णु० १।७।१७
८. ये ये लौकिकास्ते एव वैदिकाः [श्रुति]
९. एक ज्योतिरभूद् द्वेधा माधवनामकम् [सम्मोहन तन्त्र]
१०. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन् अभिचाकशीती।

का विस्तार है, जिससे तत्कालीन स्त्री-समाज की स्थिति ज्ञात होती है। प्रथम सर्ग के दूसरे सूक्त में संतति के लिए प्रार्थना है, तृतीय सूक्त में वर-वधू को यह वचन बद्धता है कि हम दोनों के हृदय एक हो जायें।[१] इस प्रकार दोनों की एकता व्यक्त की गयी है। चौथे-पाँचवें सूक्तों में देवताओं से दम्पति की मंगल कामना की गई है।

छान्दोग्य उपनिषद् में हमें सर्वप्रथम अल्पवयस्का पत्नी का उल्लेख मिलता है।[२] उशस्ति चक्रायण इभ्यग्राम में अपनी क्वाँरी पत्नी के साथ रहता था। किन्तु बालिका पत्नी होना अपवाद स्वरूप ही रहा होगा, क्योंकि तत्कालीन वैवाहिक-कृत्य वयस्कों द्वारा ही सम्पन्न हो सकने योग्य थे। इस उपनिषद् में ब्राह्मण रैक्व का शूद्रजनश्रुति की पुत्री से विवाह करने का भी उल्लेख है।[3] सत्यकाम जाबाल का उपाख्यान यह प्रदर्शित करता है कि सन्तानें अवैध भी होती थीं, किन्तु गुणों के आधार पर उन्हें वेदोपदेश के लिए गृहण किया जा सकता था।[४]

वृहदारण्यक उपनिषद् यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें भारतीय इतिहास के उस स्वर्णिम काल का अंकन हुआ है जिसमें स्त्रियां ऋषिकाओं की उच्चता प्राप्त करतीं और अध्यात्म विषयक शास्त्रार्थों में भाग लेती थीं। वाचक्नवी गार्गी ने याज्ञवल्क्य से ब्रह्म विषयक प्रश्न पूछे,[५] और वह पूछती रही जब तक कि याज्ञवल्क्य ने उसे परमसत्ता का रहस्य नहीं बता दिया।[६] मैत्रेयी याज्ञवल्क्य संवाद में मैत्रेयी ने जो कुछ कहा है, वह विश्व का सबसे उदात्त स्त्री-कथन है। उसने कहा कि क्या सारी वसुन्धरा मेरी हो जाने पर भी मुझे अमृतत्व प्राप्त हो सकेगा?[७]

पत्नी उस समय विलास की साधनभूता नहीं थी, वरन् वह पति के धार्मिक कार्यों में एक साथी थी। उस समय विवाह, दाम्पत्य प्रेम, सन्तति-प्राप्ति, और संतान-पालन सब धर्म के अंग थे। स्त्री-पुरुष की गम्भीरता धर्म-साधिका थी।

पत्नी ताड़न :—वृहदारण्यक उपनिषद् में पत्नी को छड़ी या हाथ से पीटने का उल्लेख है, वह अनुशासनार्थ नहीं है।[८] पति की आज्ञा न मानने वाली पत्नी न केवल घृणा की पात्र थी, अपितु पति द्वारा बल-पूर्वक आज्ञा मानने को बाध्य भी की जा सकती थी। यदि किसी की पत्नी के साथ कोई अन्य अवैध प्रेम करने में प्रवृत्त होता, तो वह पत्नी उस प्रेमी के नाश के

---

१. That heart of thine shall be mine, aud this heart of mine shall be thine.

२. प्रथम प्रपाठक, १।१० दशम खंड

३. छांदो० २।२,४।२

४. छांदो० ४।४

५. वृह० ३।६।१

६. वृह० ३।८

७. वृह० २,

८. सा चेदस्मै न दद्यम् काममेनामवक्रीणीयात सा चेदस्मै नैव दद्यात्
   काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहृत्यातिक्रामेत।

लिए मंत्र-प्रयोग करती थी।

कन्या का स्थान :—कन्या का जो अनादर आज देखने मे आता है, यह भारतीय विचारधारा में नहीं है। वह तो वर्तमान आर्थिक विषमता का सकट है। दहेज की कुप्रथा ने मनुष्य को कन्या से घृणा करने को विवश कर दिया है, किन्तु उपनिषद् काल मे यह स्थिति नहीं थी। उस समय तो लोग विदुषी सुकन्या की प्राप्ति के लिए भगवान से प्रार्थना किया करते थे।[1] प्रकृति यही चाहती है कि पुत्रो के साथ पुत्रियो का भी जन्म होता रहे, अन्यथा सृष्टि का आवर्तन ही रुक जायेगा। अतः प्रकृति पर आधृत सस्कृति कन्या-द्वेषी कैसे हो सकती है। विदुषी पुत्री पाने की इच्छा करने वालो के लिए चावल और तिल की घृत-युक्त खिचड़ी खाने का विधान किया गया है।

रामायण काल में नारी

गृहस्थ आश्रम :—गृहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ आश्रम है,[2] क्योंकि यह आध्यात्मिक कल्याण का मुख्य साधन है। अन्य आश्रमो को आधारशिला भी यही है। समाज कल्याण में प्रत्यक्ष योग इसी का ही रहता है तथा इसी में व्यक्ति अपने सर्वाङ्गीण उत्तरदायित्वो को निभाता है अर्थात् पितृ-ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए श्राद्ध, यज्ञ और अतिथि-सत्कारादि व्रत रूप में करता है।[3] अपनी पत्नी के साथ यज्ञादिक धार्मिक कृत्य करता है, अतः पत्नी को धर्मपत्नी और सहधर्मचारिणी भी कहते है। वह माता-पिता, पुत्र-कलत्र आदि का पालन करता है, और समाज के अन्य सम्बन्धो का भी उचित निर्वाह करता है। वस्तुतः रामायण पति-पत्नी की विशुद्ध प्रीति का प्रस्थापक महाकाव्य है।[4]

परिवार :—रामायण काल मे संयुक्त परिवार की प्रणाली थी, जिसका मुखिया पिता होता था, अन्य सारे सदस्य मुखिया की आज्ञा शिरोधार्य करते थे। ज्येष्ठपुत्र पिता का उत्तराधिकारी होता था,[5] और उसकी उत्तर-क्रिया भी वही करता था।[6] पुत् नामक नरक से रक्षा पाने के लिए पिता पुत्र की कामना करते थे।[7] पुत्र की प्राप्ति के लिए स्त्रियो ने भी तपस्याएँ की है। परिवार में परम्परागत रूढ़ियो और संस्कारो का अनुवर्तन होता था,[8]

---

१. अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियात्—बृहदारण्यक ६।४।१७

२. चतुर्णामाश्रमाणा हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् वा० रा० २।१०६।२२

३. ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्, दुर्हृद. साधु निर्दहन्। —वा रा० २।१०६।२८ टीका

४. कल्याण—सक्षिप्त वाल्मीकि रामायणाक पृष्ठ १४
   बलदेव उपाध्याय—आदि कवि वाल्मीकि

५. ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हो कुलस्यन: । —वा० रा० २।७६।७, तथा
   वा० रा० २।३५।६,२।७३।१२

६. दृष्टव्य—श्रवणकुमार, दशरथ, जटायु, बालि, मेघनाद आदि के मरण-प्रसंग।

७. वा० रा० २।१०७।१२

८. मयाप्याचरितं पूर्वै. पन्थानमनुगच्छता । —वा० रा० २।२।६
   पूर्वैरयमपि प्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते । —वा० रा० २।१२।१६, तथा २।२२३।६

जिनमें स्त्रियों के निर्देश की प्रमुखता रहती थी।[१] वह पारिवारिक जीवन समुज्ज्वल और श्रेष्ठ था। पति-पत्नी, माता-पुत्र, भाई-बहिन, देवर भौजाई, सास-पतोहू आदि सभी सम्बन्धों में पूर्ण एवं अनुकरणीय स्नेहसिक्तता थी।

रामायणकालीन परिवार पैतृक परिवार थे, जिनमें पत्नी गृहस्वामिनी होकर भी पति की वशवर्तिनी होती थी।[२] सन्तति के लिए उनकी आज्ञा सर्वोपरि थी।[३] सम्पत्ति का विभाजन पिता की इच्छा पर निर्भर था।[४] यद्यपि ज्येष्ठ पुत्र सर्वाधिक प्रिय[५] होता था और उसे ही राज्याधिकार देने का नियम था, तथापि विश्वामित्र,[६] ययाति[७] और दशरथ ने[८] इस नियम का उल्लंघन किया था। पिता की आज्ञा बिना राम विवाह तक नहीं करते[९] माता की आज्ञा भी पुत्र के लिए पित्राज्ञा-तुल्य मानी गई है।[१०]

परिवार की मर्यादाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों का अनुसरण करना गौरव तथा प्रतिष्ठा का हेतु माना जाता था। दशरथ[११] और राम[१२] अपने को पूर्वजों के मार्ग का अनुयायी कहते हैं। पत्नी से भी यही अपेक्षा की जाती थी कि वह पतिवंश की मर्यादा बनाये रखे। कैकेयी को इक्ष्वाकु-वंश पर कलंक लगाने के कारण कुलघ्नी कुलपांसनी और स्वकुलोपघातिनी आदि कहा गया है।

पुत्र का परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह 'वंशकर' था, पुत् नामक नरक से रक्षा करने वाला था,[१३] और पितृऋण से मुक्त होने का साधन था।[१४] अतः सदाचारी पुत्र की

---

१. वा० रा० २।२१।५७

२. पांडुरंग वामन काणे—हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, वोल्यूम २ पार्ट १

३. वा० रा० २।१०१।२०

४. वा० रा० १।६२,७।५६,२।१०७।३ आदि

५. वा० रा० १।१८।२४,१।२०।१२,१।६१।१६,२।२।३१-४०

६. वा० रा० १।६२

७. वा० रा० ७।५६

८. वा० रा० २।१०७।३

९. वा० रा० २।११८।५१

१०. वा० रा०—धर्मज्ञ यदि धर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम्॥
शुश्रूषर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन्।
परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः॥
यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
त्वां नाहमनुजानामि न गन्तव्यमितो वनम्॥

११. वा० रा० २।१२।६

१२. वा० रा० १।२११।३६

१३. वा० रा० २।१०७।१२

१४. वा० रा० २।१११।१७

प्राप्ति के लिए माता-पिता तपस्या और यज्ञ करते थे।[1] पुत्र का अभाव परम उद्विग्नता का कारण बन जाता था।[2] और जब बड़ी मनौतियों के बाद पुत्र-प्राप्ति होती थी तो यह स्वाभाविक ही था कि पुत्र सर्वाधिक प्रिय लगे।[3] यहाँ तक कि प्राण प्रिया पत्नी से भी पुत्र अधिक प्रिय था।[4] दशरथ ने तो पुत्र-वियोग में प्राण ही दे दिये।[5] उधर माता-पिता को पुत्र प्रत्यक्ष देवता मानते थे और उनकी आज्ञा पालन के लिए प्राणोत्सर्ग तक अपना कर्तव्य समझते थे।[6] क्योंकि माता-पिता ने जो आत्म-त्याग पुत्र के लिए किया है, उससे पुत्र की निष्कृति किसी भी प्रकार नहीं हो सकती।[7]

यह परिवार का ही प्रभाव था कि दशरथ की तीनों रानियाँ परस्पर भगिनी-तुल्य व्यवहार करती थीं,[8] एक दूसरे के पुत्रों को भी अपने पुत्र जैसा ही मानती थीं।[9] और रामादिक चारों पुत्र अपनी विमाताओं में व्यवहार-भेद नहीं करते थे।[10] कैकेयी के षड्यन्त्र करने पर भी राम का व्यवहार उसके प्रति वैसा ही बना रहा।

परिवार-प्रथा ने यौन भावना को, विधि, व्यवहार संस्कार, परम्परा तथा नैतिकता के बंधन लगा कर संयमित और मर्यादित कर दिया था, जिससे उद्दाम काम वासना का, वंश-प्रवर्तन की अभिलाषा में शिष्ट रूपान्तर हो गया था।[11]

कन्याओं की स्थिति :

कन्याओं से घृणा, द्वेष या उपेक्षा करने के प्रमाण रामायण में नहीं मिलते। उनका लालन-पालन प्रेम से होता था, उन्हें 'दयिता' अर्थात् प्रीति-पात्र कहा जाता था। अनुजैसा सीता को भी जनक की रानी ने माता के सच्चे स्नेह से पाला-पोसा था।[12] यहाँ तक माना

---

१. वा० रा० २।५१।११,२।८६।१२
२. विनाद्य जैनात्मवता कुतो रतिः। —वा० रा० २।१२।१११
३. नास्ति पुत्रसम प्रियः
४. वा० रा० २।११।५
५. यतो मूलंनर पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः।
   कथ तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते॥ —वा० रा० २।१८।१६
६. अहं हि वचनात्‌ः पतेयमपि पावके।
   भक्षयेय विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥
   नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च। —वा० रा० २।१८।२८
७. न सु प्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम्। —वा० रा० २।१११।९-१०
८. वा० रा० २।७३।१०
९. वा० रा० २।१२।१७-२१
१०. वा० रा० २।१२।२७
११. वा० रा० २।७५।३६,२।१००।७२,५।१९।१०
१२. वा० रा० २।११८।३०-३३

जाता था कि कन्या की प्राप्ति लम्बी तपस्या से होती है।[१]

कुमारियों की मांगलिकता :

धार्मिक कृत्यों, व्रतोत्सवों, सार्वजनिक समारोहों, स्वागत-समारंभों, अभिषेकों आदि में कुमारियों की उपस्थिति मंगलमय मानी जाती थी। कमनीय कन्याओं का दर्शन शुभ-शकुन और सौभाग्य का चिह्न था। कन्याओं द्वारा किया गया स्वागत सुख-समृद्धि का हेतु होता था। राम के यौवराज्याभिषेक के लिए आठ कन्याएँ भी आई थीं।[२]

राम के वन से लौटने पर कन्याएँ उनके आगे-आगे चली थीं[३] तथा राज्याभिषेक के समय कन्याओं ने ही उन पर जल का अभिषेक किया था।[४]

कन्या माता-पिता की चिन्ता का कारण :—

फिर भी कन्या का होना माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय था।[५] सीता ने भी कहा था कि जनक उनके लिए वर न खोज पाने पर बड़े चिन्तित हो रहे थे, क्योंकि इन्द्रवत् गौरवशाली होने पर भी कन्या के पिता को अपने-अपने सदृशों और निकृष्टों से भी घर्षण प्राप्त होता है।[६] विवाहार्ह कन्या को देखकर चिन्तित होने के कारण थे—वर प्राप्ति की अनिश्चितता, कन्या के चरित्र-स्खलन की आशंका और उसके वैवाहिक जीवन के सुखी होने-न-होने का संशय।[७] कन्या का विवाहित जीवन सुखमय रहे, इस उद्देश्य से माता-पिता उसे पतिभक्ति और सच्चरित्रता की शिक्षा देते थे, तथा उसके घर का चयन पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् करते थे। विवाह के अनन्तर भी माता-पिता कन्या के सुख के लिए सतर्क रहते थे। राम सीताहरण पर यह सोचकर भी दुःखी हुए थे कि अब मैं जनक को सीता का कुशल क्षेम कैसे ज्ञापन करूँगा।[८]

कन्या का त्याग :—

कन्या के जन्म पर उसके विवाह के कष्टकर उत्तरदायित्व के आ पड़ने की आशंका परिवार को प्रसन्नता की लहर से वंचित कर देती होगी। वाल्मीकि ने अशोक वाटिका में बन्दी सीता के विलाप की उपमा विजन-वन में छोड़ी हुई बाला से दी है।[९] सीता भी तो

---

१. वा० रा० १।२५।५-६
२. वा० रा० २।६४।३६
३. वा० रा० ६।१२८।३८
४. वा० रा० ६।१२८।६२
५. कन्या पितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम् वा० रा० ७।९।१०
६. वा० रा० २।११।३४-३५
७. वा० रा० ७।९।८-११
८. वा० रा० ४।११।१०६
९. कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा
   बालेव कन्या विललाप सीता। वा० रा० ५।२८।२

जनक को यज्ञ क्षेत्र में हल चलाते समय अकेली रोती हुई मिली थी।[1] ऐसे प्रसंगों को देखकर कुछ विचारकों ने रामायण-काल में कन्या-विसर्जन (Exposition) के प्रचलन की स्थापना की है। किन्तु इन प्रसंगों से नवजात कन्या का विवाह-सम्बन्धी भावी कठिनाइयों की आशंका से छोड़ा जाना सिद्ध नहीं होता।

नारी-शिक्षा :

रामायण-काल मे शिक्षा आश्रमो में दी जाती थी, पर वहाँ बालकों का ही प्रवेश था, बालिकाएँ वहाँ प्रविष्ट नहीं होती थी। फिर भी आश्रमों मे महिलाओं की उपस्थिति और शिक्षा की सूचना मिलती है। शिक्षा के चार भाग थे—शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक और नैतिक। स्त्रियों को विशेषत. क्षत्रिय कन्याओं को, धनुर्विद्या आदि युद्धीय शिक्षा एवं राजधर्म की शिक्षा[2] भी दी जाती थी। जैसा कि कैकेयी के रणस्थल गमन और क्षत-विक्षत पति के प्राण बचाने के कौशल से लक्षित होता है। इससे ज्ञात होता है कि रथ-सचालन और प्राथमिक चिकित्सा भी उन्हें सिखायी जाती थी। सीता के धनुष उठाने की शक्ति तथा दक्षता देखकर ही जनक ने यह प्रण किया था कि शिव-धनुष को चढ़ा देने वाले से ही सीता का विवाह किया जायगा। इससे स्त्रियों की बलशालिता सूचित होती है। लंका में शस्त्र धारिणी स्त्रियाँ पहरा देने के लिए नियुक्त की गई थी।[3]

स्त्रियों को सभी धार्मिक कृत्यों में पति के साथ या अकेले—भाग लेना पड़ता था, अत. यह अनिवार्यतया आवश्यक था कि विवाह से पूर्व ही वैदिक कर्मकाड की शिक्षा भी दे दी जाय। कौशल्या को हवन करते हुए,[4] सीता को सन्ध्योपासन[5] में रत जीवन बिताते हुए वाल्मीकि ने चित्रित किया है। तारा भी मन्त्रवित् थी।[6]

मानसिक शिक्षा के रूप में वेद-वेदांग के अध्ययन, पुराण अर्थात् प्राचीन कथावार्ता, इतिहास और धार्मिक वाद-विवाद में बालिकाएँ भी दक्ष की जाती थी। सीता ज्ञान की अनेक शाखाओं एवं पौराणिक ज्ञान में विचक्षण थी।[7] कैकेयी और तारा आदि भी शास्त्र-ज्ञान में निष्णात थी। यह शिक्षा कन्याओं को माता-पिता, ऋषि-मुनियों, ब्राह्मणों, ऋत्विजों, अभ्यागत-विद्वानों आदि से मिलती थी।

---

१. पौराणिक मान्यतानुसार तो सीता पृथ्वी भेदन करके निकली थीं। वा० रा० २।११८।२८-२६

२. वा० रा० २।२६।१४

३. वी० सी० वर्मा—रामायण पॉलिटी तथा जे० जे० मेयर—सेक्सुअल लाइफ इन एश्यंट इंडिया।

४. वा० रा० २।२०।१५

५. वा० रा० ५।१४।१६

६. वा० रा० ४।१६।१२

७. वा० रा० २।२६।१७, २।२६।८८, २।३०।६, ३।६।२२-२३, ५।२४।६।१, ६।४८।२, ६।१११।४१

लिखने की कला से सभी परिचित थे। व्यावहारिक शिक्षा में बालिकाओं को संगीत, नृत्य, चित्र आदि ललित कलाओं एवं अन्य उपयोगी कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। रावण के अन्तःपुर की स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य संगीत में अत्यन्त प्रवीण थीं।

कन्याओं को नैतिक शिक्षा दी जाती थी। उन्हें पति-पत्नी के कर्त्तव्यों का सम्यक् बोध करा दिया जाता था। सीता को इस बात का गर्व था कि उन्हें एतद्विषयक कर्तव्य भलीभाँति बाल्यावस्था में ही माता-पिता ने समझा दिये थे, और अब उन्हें इस विषय में और कुछ जानना नहीं रह गया था।[१]

यह नैतिक शिक्षा का ही परिणाम था कि उस काल में पुरुषों से भी अधिक यशस्वी स्त्रियों का बाहुल्य दिखाई देता है। और उनमें अनाचार के उदाहरण नहीं मिलते।

विवाह :

वर-कन्या का विवाह उनकी यौवन-प्राप्ति पर होता था। विवाह के पूर्व उनका परिचय कराने में पूर्वराग का कोई नियम नहीं था। कन्याओं से प्रणय-प्रस्ताव करना वर्हां का विषय था। ऐसे व्यक्तियों को कन्याएँ स्वयं अस्वीकृत कर देती थीं।[२] सीता, कुशनाभ की कन्याओं, मन्दोदरी आदि का कोई पूर्वराग नहीं हुआ था, फिर भी उनकी पतिपरायणता प्रसिद्ध है। उस समय यद्यपि स्वयंवरण की प्रथा थी तथापि कन्याएँ स्वच्छन्द नहीं थीं। उनका स्वयंवर स्वेच्छासम्मत नहीं होता था। इस विषय में वे 'पितृवशा' थीं। सीता के स्वयंवर में भी उनके पिता का धनुष-भंग वाला प्रण स्वयंवरण की सीमाएँ अति संकुचित कर देता है। मन्दोदरी को उसके पिता ने अपनी इच्छा से ही रावण को दिया था। पिता का इतना अधिकार होने के कारण विवाह बड़े सोच-समझ के बाद होते थे। यौवन की वासना द्वारा बुद्धिहीन चुनाव नहीं होते थे। परिणामस्वरूप वैवाहिक जीवन सुखी था। विवाह-विच्छेद करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पिता द्वारा जो कन्या जिसे दी जाती थी वह उसकी जन्म-जन्मान्तर की संगिनी होती थी, मरने के बाद, परलोक में भी वह स्त्री उसी की सहवासिनी होती थी। यही कारण था कि पिता की अनुमति-स्वीकृति में कन्याओं की बड़ी श्रद्धा हुआ करती थी।[३] यही कारण था कि जब वायु ने कुशनाभ की कन्याओं से विवाह का प्रस्ताव रखा, तब उन्होंने कहा था कि 'हमारे पति वही होंगे जिनके साथ हमारे पिता हमारे विवाह करेंगे।[४] पितृ-आज्ञा का ऐसा सम्मान कन्याएँ ही नहीं अपितु वर भी करते थे। भगवान राम ने यद्यपि धनुष तोड़कर विवाह का वैधानिक अधिकार प्राप्त कर लिया था तो भी उन्होंने उस समय तक विवाह करने से मना कर दिया, जब तक उन्हें अपने पिता की आज्ञा न मिल जाय।[५] यही कारण था कि

१. वा० रा० ५।१०।३७-४६
२. वा० रा० २।२७।१०
३. वा० रा० ७।८०।६-११, १।७२।२०-२२
४. 'प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृ-कृता इति' वा० रा० १।७७।२६
५. यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति। वा० रा० १।३२।२२
तथा १।३२।२१ मा भूत स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम्।
अवमन्य स्वधर्मेण स्वयं वरमुपास्महे॥

कन्या की याचना उससे नही वरन् उसके पिता से ही की जाती थी।[1] वैसे वैवाहिक सम्बन्ध करने में अन्य बन्धु-बान्धवों तथा हितैषियों का भी योग रहता था। विश्वामित्र ने जनक की भतीजियों का राम के भाइयों के साथ विवाह करवाया था।[2]

विवाह की आयु :

वयस्कता विवाह की प्रथम अपेक्षा थी। वाल्मीकि रामायण मे कोई भी ऐसा स्वयंवर या विवाह नहीं हुआ है जिसमे कन्या अल्पवयस्का रही हो। सीता और उनकी भगिनियाँ विवाह होते पर अपने पतियों के साथ विहार करने लगी थी। इससे उनकी युवावस्था का बोध होता है। जनक ने भी कहा था कि मेरी यौवन-प्राप्त कन्या से विवाह करने के प्रस्ताव अनेक राजा रख चुके है।[3] सीता ने भी अपना विवाह वयस्कता-प्राप्ति पर ही होना अनुसूया से कहा था।[4] कुशनाम कन्याओं का राजा ब्रह्मदत्त से और तृण बिन्दु की कन्या पुलस्त्य से विवाह यौवनावस्था में ही हुए थे। शील, वय, वृत और लक्षण में तुल्य वर-कन्या का विवाह किया जाना प्रशस्त था।[5] उत्तरकाण्ड का वह श्लोक, जिसमें सीता का विवाह छह वर्ष की आयु में में होना लिखा है, निश्चयेन प्रक्षिप्त है।[6] हां, कुछ विवाह असमान वय के भी हुए है, जिसमे दशरथ-कैकेयी विवाह[7] और वृद्ध ब्राह्मण त्रिजट का तरुणी से विवाह[8], प्रसिद्ध हैं।

विवाह में प्राथमिकता :—

प्राथमिकता बड़े भाई के विवाह को मिलती थी। छोटा भाई यदि उससे पूर्व विवाह कर ले तो परिवेत्ता कहलाता और नरकगामी माना जाता था।[9]

विवाह के लिये प्रशस्त कन्या :—

कन्या को अपूर्व भुक्ता, अनूढा, शुभाचार, अनुरूपा और वयस्का होना ही चाहिये।[9] इसके अतिरिक्त उसे कुलीना, मनोहरा, सुगुणा और सरूपा भी होना चाहिये।[10] पतले काले बाल, बिना जुड़ी भौंहें, गोल रोमहीन जाँघें, सटे हुए दांत, यव-चिह्नित पोरे, गहरी नाभि और उभरी छाती आदि वधू के अपेक्षित सुलक्षण है।[11] आदर्श सुन्दरी के लक्षण भी कन्या में

१. वा० रा० २।११८।५१
२. वा० रा० १।६६।१५-१६, ७।८०।६-११
३. वा० रा० १।१२०
४. वा० रा० १।७७।१३
५. वा० रा० १।६६।१५-१६
६. वा० रा० २।११८।३४
७. वा० रा० ५।१६।५
८. अनंत सदाशिव अलतेकर—पोजीशन ऑव वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृष्ठ ६३
९. वा० रा० २।१०।२३ स वृद्धस्तरुणी भार्याम्।
१०. वा० रा० उत्तरकाड जेज मेयर—सेक्सचुअल लाइफ इन एंसयंट इंडिया
११ वा रा ''' ३६

हों तो और अच्छा है—श्यामा, तन्वी, वपु: श्लाघ्या, तप्तकांचन-वर्णाभा, तरुप्रवालरक्ता, घतुर्मस्तका, रथ कुबर संकाशभुजा, पीनोंतुंग पयोधरा, करिकारा-कारोरु गजनासोरु कदली-काण्ड समा जघना, रक्तान्त-कृष्ण-तारका, चाप-निभ-भुवा, शशि निभ मुखा, पद्मोत्पल-सुगंधि, उठी हुई नाक, मातंग गामिनी, अलस भामिनी, नील-कुंचित मूर्धजा, बिम्ब फलो पमोष्ठा, पल्लव कोमल करा, रक्त तुंगनखा तथा करान्तमित मध्या होना।[1]

विवाह के प्रकार :

रामायण काल में छह प्रकार के विवाह होते थे—ब्राह्मण, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। ये नाम बाद में स्मृतिकारों ने रखे हैं। रामायण में इनका नामकरण नहीं मिलता, उदाहरण मात्र ही है। ब्राह्म-विवाह में कुछ भी लेन-देन नहीं होता। कुशनाभ कन्याओं से राजा ब्रह्मदत्त का विवाह[2], शान्ता का ऋष्यशृङ्ग से विवाह[3], राजा तृणबिंदु का भारद्वाज कन्याओं से विवाह[4] इसके उदाहरण हैं। प्राजापत्य विवाह में कन्या का पिता वर का समुचित सत्कार कर अपनी पुत्री को 'सहधर्म-चरी' के रूप में[5] प्रदान करता था। आसुर विवाह वर से शुल्क या धन लेकर किया जाता था; जैसे कैकेयी का दशरथ के साथ विवाह। गान्धर्व विवाह स्त्री-पुरुष की परस्पर कामासक्ति से होता था; जैसे, अनेक रमणियों का रावण से स्वयं विवाह कर लेना।[6] बुध और इला की परस्पर अनुरक्ति[7], वायु का कुशनाभ कन्याओं से[8] तथा राजा दंड का शुक्र ऋषि की पुत्री अरजा से[9] रमण प्रस्ताव और शूर्पणखा का राम और लक्ष्मण के प्रति आकर्षण, गान्धर्व विवाह की भूमिका थे। राक्षस विवाह कन्या का अपहरण करके होता था, रावण ने सीता का अपहरण इसी लक्ष्य से किया था।[10] राक्षस कुल में अपहरण की प्रथा जोर-शोर से विद्यमान थी।[11] पैशाच विवाह पाशविकतापूर्वक बलात् वासनोपशान्ति करने पर होता है। रम्भा, पुंजिकस्थला आदि अप्सराओं से रावण ने अनाचार किया था।

विवाह प्रणाली—

उपर्युक्त छः विवाहों, में विवाह प्रणाली का अन्तर निसर्गतः ही हो जाता है। किन्तु सर्वसामान्य

---

१. वा० रा० १।७२।३, ५।१६।६६-७४
२. वा० रा० ५।१६।७१
३. शांतिकुमार नानूराम व्यास—रामायणकालीन समाज, पृष्ठ १६१-१६४
४. वा रा० १।३३
५. वा० रा० उत्तरकाण्ड
६. वा० रा० उत्तरकाण्ड
७. वा० रा० १।७३।२५-२६
८. वा० रा० ५।१६।६८-६६
९. वा० रा० उत्तरकांड, जे० जे० मेयर, सेक्सचुअल लाइफ इन एंश्यंट इंडिया
१०. वा० रा० १।७२।२०-२२
११. वा० रा० ७।८०।९-११

प्राजापत्य विवाह की रीति-रस्में ही वस्तुतः हमारी विवेच्य है। इसके तीन अंग होते थे, जिनमें भिन्न-भिन्न कृत्य सम्पन्न होते थे। पहला, आरम्भिक औपचारिक कृत्य, वर-प्रेषण अर्थात् लगन भेजना, सीमन्त-पूजन अर्थात् बरात का स्वागत, अंकुरारोपण, वंशावली कथन, वर-वधू गुण परीक्षा, वाग्दान, नान्दी श्राद्ध और गोदान। दूसरा मूल-संस्कार वैवाहिकी या वैवाह्य वधू-निष्क्रमण, वर का वधू-गृह आगमन, वेदी कारण, अग्नि-स्थापना और होम, वध्ववागमन, कन्यादान, पाणिग्रहण, अग्नि परिणयन और पिता के उपहार पाकर वधू का पतिगृहगमन। तीसरा ,समवाह अर्थात् पतिगृह पहुँचने के अनन्तर मांगलिक कार्य, गृह-प्रवेश, वधू प्रतिगृह (स्वागत) देवकोत्थापन अर्थात् विवाह-पूर्व जिन देवताओं का आह्वान किया गया था उनका विसर्जन।[१]

विवाह शुभ मुहूर्त, विशेषतः उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सम्पन्न होते थे। उस समय तीन फेरे पड़ते थे,[२] सप्तपदी की प्रथा बाद में चली है। भक्तिकाल में तो सप्तपदी का ही प्रचलन था।

दहेज और स्त्रीधन—

उन दिनों दहेज इस रूप में प्रचलित नहीं था, जैसे कि आज-कल है। स्वेच्छया कुछ उपहार दिये तो जाते थे, किन्तु उनके लिए पहले से कुछ तय नहीं किया जाता था। कन्यादान के समय जो उपहार दिये जाते थे, वे कन्याधन कहलाते थे और पतिगृह में वे स्त्री-धन का रूप ले लेते थे। यह कन्या-धन पिता अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दिया करते थे। राजा जनक द्वारा प्रदत्त कन्या-धन में अलंकृत हाथी, गाय, घोड़े तथा उत्तम कम्बल, रेशमी तथा सूती वस्त्र, मुक्ता, प्रवाल सुवर्ण, सखी रूप सौ कन्याएँ, पदाति सैनिक रथ आदि समाविष्ट थे।[३] पति द्वारा समय-समय पर दिये जाने वाले उपहारादि भी स्त्री-धन में परिगणित होकर स्त्री की निजी सम्पत्ति बन जाते थे। अपनी सम्पत्ति से होने वाली आय को व्यय करना स्त्री की इच्छा पर निर्भर होता था। कौशल्या को एक सहस्र गाँव मिले थे, जिनसे वह अपने आश्रितों का पालन तथा धार्मिक कार्य करती थी। उनसे छात्र भी सहायतार्थ द्रव्य लेने आया करते थे।[४] पति के देहावसान के पश्चात् भी दशरथ-पत्नियों की समृद्धि दर्शनीय थी।[५]

दहेज के विपरीत शुल्क भी प्रचलित था।[६] कन्या अधिक रूपवती या गुणवती हुई, या वर अधिक आयु का हुआ तो कन्या का पिता अपनी कन्या देने के लिए कुछ शर्तें पूरी

---

१. वा० रा० ३।१७।२५
२. वा० रा० रा० ३।५५।१७
३. जे० जे० मेयर, सेक्सचुअल लाइफ इन एश्यंट इण्डिया
४. जे० जे० मेयर, सेक्सचुअल लाइफ इन एंश्यंट इण्डिया
५. शान्तिकुमार नानूराम व्यास—रामायणकालीन समाज पृ० १२२-१२७
६. पंढरीनाथ एच० वालावलकर—हिन्दू सोशनइंस्टीट्यूशनस पाडुरंग वामन काणे—हिस्ट्री आव धर्मशास्त्र

कराता था। उदाहरणार्थ सीता के लिए राम को धनुर्भंग-रूपी वीर्य शुल्क[1] तथा दशरथ को कैकेयी के लिए उसी के पुत्र को राजा बना देने का वचन रूपी राज्य शुल्क देना पड़ा था।[2]

बहुपत्नित्व—

रामायण काल में क्या राजा, क्या सामान्य गृहस्थ सभी में अनेक पत्नियाँ रखने की प्रथा थी। वैदिककाल में परिवृष्ट महिषी, परिवृक्ति, वावाता और पालागली रानियाँ[3] तो होती ही थीं, इनके अतिरिक्त अन्य रानियाँ भी रहा करती थीं।[4] चार रानियों के अतिरिक्त दशरथ के अन्तःपुर में साढ़े तीन सौ स्त्रियाँ और भी थीं।[5] जनक के भी एकाधिक रानियाँ थीं, जैसा कि उनके द्वारा सीता के पालन-पोषण का भार बड़ी रानी को दे देने के तथ्य से ज्ञात होता है।[6] सुग्रीव और बाली के अंतःपुर भी पत्नियों से समाकुल थे।[7] ब्राह्मणों में भी बहुपत्नित्व प्रथा विद्यमान थी। कश्यप ऋषि के आठ[8] पत्नियाँ थीं। विश्रवा ने देव वर्णिनी और कैकसी से विवाह किये थे।[9] सम्पन्न जनों की यह प्रथा अल्पजनों में प्रचलित नहीं थी, जैसा कि त्रिजट के एक ही पत्नी होने से सिद्ध होता है।[10] रावण का अंतःपुर तो पत्नियों से इतना समृद्ध था कि वाल्मीकि ने उसकी व्यंग संज्ञा 'स्त्रीवनम्' कर दी है।

सपत्नियों में ईर्ष्या—

अनेक पत्नियों वाला व्यक्ति, प्रकृत्या ही, किसी एक की ओर अधिक आकृष्ट होता था, जैसे दशरथ कैकेयी की ओर।[11] ऐसी दशाओं में अन्य पत्नियाँ उपेक्षित रह जाती थीं। उनकी दयनीय दशा हो जाती थी। कौशल्या की अनेक उक्तियों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है।[12] सौतें तक दूसरे को कालवत् देखती थीं और उनके पुत्र को शत्रुवत्।[13] राजदरबारों में होने वाले सपत्नियों के घात-प्रतिघात देश देश की राजनीति पर प्रभाव डालते थे, जिससे

---

१. वा० रा० १।१४।३-६
२. वा० रा० २।३१।३२
३. वा० रा० २।३२।२२
४. वा० रा० ६। १२३।५
५. एस० सी० सरकार—सम अस्पैक्ट्स आव् दि अलिएस्ट सोशल हिस्ट्री ऑव् इंडिया।
६. वा० रा० २।११८।८ अस्मै देवा मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने।
७. वा० रा० २।२६
८. वा० रा० १।१४।३५, शत० ब्रा० तथा ऐत० ब्रा०, शत ब्रा० ६।५।३।१ ऐत० ब्रा० १२।११ ऋग्वेद १०।१०२।११ शत० ब्रा० १३।४।६।८
९. वा० रा० १।१४।३५
१०. वा० रा० २।३४।१०-१४, २।३६।३६
११. वा० रा० २।११८।३३
१२. जे० जे० मेयर—सेक्सचुअल लाइफ इन ऐंश्यंट इण्डिया
१३. वा० रा० ३।४।११

षड्यन्त्र, गृहयुद्ध और हत्या, आर्थिक संकट और बाह्य आक्रमण आदि हुआ करते थे।[1] विवाद अपरिहार्य हो जाते थे। क्योंकि विभिन्न और परस्पर विरोधी परम्पराओं में पली स्त्रियाँ, जो अपने समर्थकों, अनुचरों और सम्बन्धियों के गुट में घिरी रहती थी, चाहते हुए भी स्वार्थों का त्याग नहीं कर पाती थी।[2]

देश के धन का अपव्यय—

ये रानियाँ और उनके परिचारक अपने-अपने प्रासादों में नृत्य, संगीत, चित्र आदि कलाओं, पालित पक्षियों के कलरवों, कोमल बहुमूल्य शय्याओं, रमणीय उद्यानों विविध खान-पान एवं दास-दासियों की चाटुकारिता आदि के बीच बड़े वैभव-मय ठाट-बाट का जीवन बिताती थीं। रावण का अन्त.पुर विषयलिप्सा की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था।[3]

एकपत्नी व्रत—

बहुपत्नित्व के इतने दोष देखकर ही वाल्मीकि ने एक पत्नी व्रत की महिमा का बखान किया है। उन्होंने कहा है कि एक पत्नी व्रती को दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है।[4] उनके राम ने सीता के अदृश्य होने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया, यज्ञों में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य होने पर सीता की सुवर्ण मूर्ति से ही काम चला लिया।[5] यह घटना सीता के प्रति राम के निगूढ़ वास्तविक प्रेम की प्रदर्शिका है।

बहुपतित्व—

दक्षिण भारत में, जैसा कि कहीं कहीं आज भी देखा जाता है, बहुपति प्रथा विद्यमान थी। तारा, रंभा, मन्दोदरी के दो-दो पति रहे हैं। किन्तु इनके जीवन से यह सिद्ध नहीं होता कि उन्होंने एक साथ दो-दो पति रखे। उत्तर भारत में यह प्रथा निन्दनीय थी। बहुपतित्व शाप का विषय था।[6]

वैवाहिक संबंधों में कटुता—

विवाह का उच्च अध्यात्म वलित आदर्श होने पर भी पति-पत्नी में यदा-कदा कटुता आ ही जाती थी। अराजकता की स्थिति में भी स्त्रियाँ पति की आज्ञा का तिरस्कार कर देती है, और उन्हें वश में रखना कठिन हो जाता है।[7] इस कटुता के कारण होते थे स्वार्थ, सपत्नी, कलह पुरुष या स्त्री की व्यभिचार प्रवृत्ति।

---

१. वा० रा० ७।३।३, ७।६।१२
२. वा० राम० उत्तर काण्ड
३. स्त्रीरत्न धनं सकुलम्—हनुमान प्रवेश महागृहम्।
   बह्वीनामुत्तमस्त्रीणाम् आहृतानामितस्ततः—वा० रा० युद्ध काण्ड
४. वा० रा० २।७२।१२,२।६।२४-२६
५. वा० रा० रामवनगमन प्रसंग।
६. वा० रा० २।८८।४
७. वा० रा० २।८८।३५-३६

विवाह विच्छेद या पत्नी का परित्याग—

यद्यपि विवाह विच्छेद वैध नहीं था, तथापि दो-एक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिसमें पत्नी का परित्याग कर दिया गया था। कैकेयी की माता को पति के जीवन-मरण की भी परवाह न करने के कारण,[१] कैकेयी को अन्य स्वार्थ के कारण,[२] अहल्या को व्यभिचार के दोष पर[३] और सीता को लोकापवाद के भय से त्याग दिया गया था।[४] इनमें अहल्या और सीता तो कुछ कालोपरान्त पुनः ग्रहण कर ली गईं, किन्तु कैकेयी की माता और कैकेयी को फिर स्वीकार नहीं किया गया। अयोध्याकाण्ड के बयालीसवें अध्याय से स्पष्ट हो जाता है कि दशरथ ने कैकेयी के साथ अपनी अग्नि-प्रदक्षिणा और पाणिग्रहण सभी का महत्व त्याग कर अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दिया था। परित्यक्ता स्त्रियों की दुर्दशा उपमान रूप में अंकित की गयी है।[५]

इसके विपरीत, स्त्रियाँ भी पुरुषों का परित्याग कर देती होंगी, जैसा कि स्थान-स्थान पर किये गए सामान्य उल्लेखों से सूचित होता है। अराजकता में स्त्रियों द्वारा पतियों का तिरस्कार कर दिये जाने का कटु तथ्य,[६] और पति के विपत्तिग्रस्त हो जाने पर उसे छोड़ देने वाली स्त्रियों के उदाहरण[७] उस समय चर्चा के विषय बन जाते थे।

प्रणयोपासन

रामयण काल में स्त्री और पुरुष सभी स्वस्थ प्रणय के उपासक थे। योद्धागण अनेक स्त्रियों के साथ रमण सुखी जीवन का निकष मानते थे।[८] भरद्वाज-आश्रम में अप्सराओं से सेवित भरत के सैनिकों का मन ऐसा रम गया था कि उन्हें अयोध्या लौटने की भी इच्छा नहीं रही थी।[९] हनुमान ने सारी लंका में[१०] और फिर रावण के अंतःपुर में[११] मद-विह्वल, मदनाकुल, कामोन्मत्त, लावण्यवतियों को उपयुक्त रति-श्रान्त रूप में अस्त-व्यस्त देखा था।

उद्दीपक सुरा

चित्र-विचित्र वस्त्राभूषण से अलंकृत रमणी काम-विलास की उद्दीपिका होती थी और उपवन, उद्यान, अरण्य एवं पर्वतदरियाँ प्रणयकेलि की रंगस्थली बनते थे।[१२] चित्रकूट पर भी

---

१. वा० रा० २।४।३६, २।८।३४, २।१२।१०६
२. वा० रा० ५।५-२० हनुमान द्वारा देखा हुआ रावण का अन्तःपुर।
३. वा० रा० २।६४।४४-४७
४. वा० रा० ७।६६।७
५. वा० रा० पृथ्वी को पार्वती का शाप। १।३६।२३
६. वा० रा० २।६७।१०-११
७. वा० रा० २।३५
८. वा० रा० २।१४।१४ तथा २।४२।६-६-६
९. वा० रा० १।४८-४६
१०. वा० रा० ६।११८।१३-१६
११. वा० रा० स्त्रीव भर्तृविवर्जिता। २।६४।४४
१२. वा० रा० २।६७।१०-११

परम सुष्ठु संबोधनों से अभिहित करते थे।[१]

प्रेम और काम का आदर्श

प्रेम का आदर्श अत्यन्त उच्च होने पर भी सर्वथा व्यावहारिक था। वाल्मीकि के मतानुसार अविवाहित अवस्था का असंयत प्रेम तो अत्यन्त हेय और दण्ड्य है। एकांगी प्रेम अधर्ममय और मनस्तापकारी होता है। इसी दृष्टि से रावण सीता का स्पर्श नहीं करता था।[२] विवाह होने पर भी अपनी धर्मपत्नी के प्रति अन्धानुराग और वासनामय प्रेम को रामायण गर्हित समझता है। कामुक होना अति निन्दनीय है,[३] और स्त्री को तो संयम की सबसे अधिक आवश्यकता है![४] विवाह केवल सन्तान प्राप्ति के लिये।[५] अजितेन्द्रिय व्यक्ति का नाश ही जाता है, अतः स्वदारानिरत ही रहने का रामायण बार-बार आग्रह करती है।

स्त्री-जित को कामासक्त माना जाता था, ऐसे व्यक्तियों का सम्मान नहीं होता था। सीता के वियोग में विह्वल राम की भर्त्सना करते हुए सुग्रीव ने कहा था कि मैं बंदर होते हुए भी अपनी पत्नी के वियोग से दुःखी नहीं हुआ, आप चरित्रवान् होते हुए भी ऐसे शोक-विकल क्यों हो रहे हैं।[६]

विवाह का आदर्श और लक्ष्य

रामायण काल में विवाह व्यक्ति का सामाजिक उत्कर्ष, परिवार का आधार, गृहस्थाश्रम की भित्ति, यौन-संबंधों की मर्यादा, संसार का सुख और परलोक का कल्याण माना जाता था। मनु के मत से भी विवाह शुभ लोक यात्रा है।[७] वाल्मीकि ने इसे संस्कारक विधि कहा है।[८]

प्रीति परस्पर दर्शन से होती है, अदृश्य के प्रति नहीं।[९] पारस्परिक अनुराग ही विवाह की आधारशिला है। साथ ही, अनुरूप और सदृश स्त्री-पुरुष में ही प्रेम की सघनता और प्रगाढ़ता उत्पन्न होती है। सीता और राम की परस्पर अनुरक्ति, अनन्यता, सहृदयता

---

१. वा० रा० २।१०।१८-४०
२. वा० रा० ५।२२।४२
३. वा० रा० ५।२०।६
४. कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम्। वा० रा० ३।४३।२१
   कामात्मता खल्वति न प्रशस्ता कामवृत्तमिद राव स्त्रीणामसदृशं मतम्।
   टीका दाराणां सफलत्व धर्मरति प्रजाभिः। वा० रा० ३।४३।२१
५. क. वा० रा० ५।१००।७२, ख. रतिपुत्र फलादाराः
६. वा० रा० ४।७।५
७. मनु० स्मृ० ६।२५
८. वा० रा० ५।१६।१०
९. जे० जे० मेयर : सेक्सचुअल लाइफ इन एंश्यंट इंडिया तथा हश्यमाने भवत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः वा० रा० २।२६।३६

संवेदना तथा एक दूसरे के सुख के ध्यान ने उनके दाम्पत्य भाव को आदर्श बनाया है।[१] पत्नी पति की क्रीड़ा-सहाया भी होती थी और उसके मनोराग का अभिवर्धन करती थी। सीता और राम एक दूसरे के मनोभावों की भली-भाँति प्रतीति करने में समर्थ थे।[२] रावण की पतिभक्ता पत्नियों को भी पति का हार्दिक अनुराग प्राप्त था। पर सीता-राम का आदर्श अनन्य है। सीता-राम आदर्श युग्म है, जिनमें प्रणय का पूर्ण उदात्तीकरण हो गया है। उनका दाम्पत्य प्रेम परम शालीन है। जैसे लक्ष्मी और विष्णु,[३] रोहिणी और चन्द्रमा,[४] प्रभा और सूर्य[५] एवं वेद विद्या और ब्राह्मण[६] का साहचर्य अटूट है, वैसे ही राम और सीता का प्रेम अमर है। उनका प्रेमिल मानस सौहार्दमय साहचर्य से तरंगायित था।

विवाह केवल वंश प्रवर्तनार्थ एक पुण्य निक्षेप था।[७] दाम्पत्य की परिणति पुत्र-प्राप्ति में थी।[८] कुपुत्र भी मर जाता परम दुःखद होता था।[९] ब्राह्मणों और मुनियों के लिए तो विवाह और भी अधिक कर्त्तव्य-निरति का पाठ था। उनके लिए विवाह पुष्प-शय्या का नहीं वरन् कठोर वेदी का निर्माण करता था। विवाह एक कर्तव्य-पथ था, जो व्रतानुष्ठान और यज्ञ-सम्पादन द्वारा अध्यातम के उत्कर्ष तक ले जाता था।[१०] इस प्रकार विवाह यौन-आकर्षण, काम भाव, भोग-विलास या लम्पटता का द्वार न खोलकर धर्म रति की मर्यादा स्थापित करता था।[११]

काम और प्रेम के विषय में नीति वाक्य

धर्म-नियन्त्रित और धर्म-निर्दिष्ट काम संबंध तो उचित है, *अन्यथा वह अनैतिक यौन* क्रिया और व्यभिचार मात्र है। ऋतुकाल में ही स्वदार-मात्र निरति भी जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य है।[१२] पत्नी में भी आसक्ति अशोभनीय है।[१३] पुत्री-पुत्र, वधू-भ्रातृवधू, गुरु-पत्नी आदि पर कुदृष्टि रखना घोर अनाचारिता है। काम भाव में मध्यम मार्ग का आश्रय लेना उचित है,

---

१. वा० रा० ४।१।५२
२. वा० रा० १।७७।२६-२८
३. वा० रा० १।१७।२६
४. वा० रा० १।२६।४२
५. वा० रा० ५।२१।१५
६. वा० रा० ५।२१।१७
७. रतिपुत्र फलादाराः —वा० रा०
८. वा० रा० २।१००।७२
९. वा० रा० २।७५।३६
१०. वा० रा० ७।२।२६-२६
११. वा० रा० १।४८।१८,२।६३।३०,२।७५।४५,४।१८।२२-२३, ४।५५।३,७।६।२२-२४,७।८६।१५
१२. वा० रा० १।६।५ टीका
१३. वा० रा० ४।७।६-७

अप्रणय और अति प्रणय दोनों ही ठीक नहीं।[१] काम-पराभूत दशरथ अपयश और निन्दा के पात्र बने थे, और सभी ने यही कहा था कि राम का निर्वासन उनकी बुद्धि भ्रष्टता का द्योतक था। स्त्रियों के लिए तो कामवृत्त पूर्णतया गर्हित और हेय है। दूसरी ओर, विभांडक ऋषि द्वारा अपने पुत्र पर लादा हुआ स्त्री-वर्जन भी हेय माना गया था। तात्पर्य यह कि दोनों ओर की अति त्याज्य है।

इस कार्य के लिये केवल रात्रि प्रशस्त है।[२] असंयत कामाचार दण्डनीय है।[३] प्रेम और विवाह परस्परावलम्बी है। पर स्त्री विषाक्त भोजन है।[४] राम पर स्त्री त्यागी होने के कारण भी अभिनंव-अभिवंद थे।[५] पर स्त्री संसर्ग सबसे बड़ा पाप है।[६]

परदाराएँ पुरुष का पराभव करती हैं।[७] किसी की विवाहिता स्त्री से प्रणय प्रस्ताव करना सामाजिक अनाचार है।[८]

जो व्यक्ति धर्म और अर्थ को दूर रख केवल काम का सेवन करता है, वह दशरथ की भाँति संकट में पड़ता है[९] और निन्दनीय, भ्रष्ट तथा पतित हो जाता है।[१०] अत: धर्म, अर्थ और काम का संतुलन रखना चाहिये।[११]

अन्तर्जातीय विवाह

रामायण काल में अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलित थे। ब्राह्मण ऋष्यशृङ्ग और क्षत्रिया शान्ता का विवाह,[१२] श्रवणकुमार की माता शूद्रा और पिता वैश्य[१३] का विवाह आदि अनुलोम विवाह के उदाहरण हैं ब्राह्मणी देवयानी और क्षत्रिय ययाति[१४] का विवाह प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है।

---

१. वा० रा० ४।२२।२३
२. कच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर।
   विभज्य काले कालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे॥
   रात्रौ कामकालः इत्यर्थः —गोविन्दराज टीकाकार की टीका
३. उत्तर काण्ड राजादण्ड और अरजा का आख्यान
४. वा० रा० ४।६।८
५. वा० रा० ३।६।५-६
६. वा० रा० ३।३८।३०
७. वा० रा० ५।२१।८
८. वा० रा० ५।२१।१०-१५
९. वा० रा० ५।५३।१२
१०. वा० रा० ४।१८।१२, ४।३८।२१
११. वा० रा० ४।३८।२२, ६।३६।६
१२. पढरीनाथ एच० वालावलकर—हिन्दू सोशल इंस्टीट्यूशन्स
१३. वा० रा० २।६३।५०
१४. पंढरी नाथ एच० वालावलकर—हिन्दू सोशल इंस्टीट्यूशन्स

धार्मिक क्रिया-कलापों में सहयोगी और पूरक :

कर्तव्य के साथ ही यह पत्नी का अधिकार भी था कि वह सहधर्मचारिणी बन कर यज्ञ द्वारा देव ऋण से, और सन्तानोत्पत्ति द्वारा पति-ऋण से पति को उऋण कराये। यज्ञकार्य में पति के साथ पत्नी का बैठना अनिवार्य था। दशरथ की रानियाँ यज्ञ में साथ रही थीं। तारा ने बाली की मृत्यु पर कहा था कि युद्ध यज्ञ का अवभृत स्नान आपने मेरे बिना कैसे कर लिया।[१] राम ने अश्वमेध में सीता की स्वर्ण-मूर्ति स्थापित की थी। पति की अनुपस्थिति, व्यस्तता या असमर्थता में पत्नी अकेली भी यज्ञ-कार्य कर लेती थी। कौशल्या ने[२] राम के श्रेयार्थ और तारा ने[३] बाली के लिए अकेले ही स्वस्तियान किये थे।

राज्याभिषेक पति के साथ पत्नी का भी होता था।[४] और्ध्वदैहिक क्रिया में विधवा पत्नी भी सम्मिलित होती थी, यथा, दशरथ की रानियों ने[५] और तारा ने[६] श्मशान-कार्य किये थे। पितरों के तर्पण भी वे कर सकती थीं।[७] श्मशान-यात्रा में स्त्रियाँ आगे-आगे चलती थीं। वैसे, अन्य अवसरों पर वे पीछे ही चलती थीं।

पातिव्रत्य का आदर्श :

स्त्रियाँ पति को ही देवता, परमेश्वर और एकमात्र गति[८] मानती थीं। वे सदा पति के हित में संलग्न और उसी की सेवा में रत रहती थीं। पुरुष की सहधर्मिणी और सम दुःखसुखिनी थी। इह लोक की ही नहीं, परलोक की भी वे अपने को पति की सहवर्तिनी समझती थीं।[९]

सीता का भी यह अटूट विश्वास था कि मृत्यु के उपरांत भी राम से ही उनका संगम होगा।[१०] इस प्रकार विवाह एक अविच्छिन्न लोकोत्तर प्रभावक आध्यात्मिक संबंध था। शास्त्रोक्त यज्ञ यागादि कर्मों में उसका पति के साथ समान अधिकार था। नारी के बिना धार्मिक कृत्य संपन्न हो ही नहीं सकते थे। पति के गार्हस्थ्य, सामाजिक एवं राजनीतिक कृत्यों में भी नारी का सहयोग रहता था। सीता, तारा, कैकेयी आदि ने उस काल की राजनीतिक घटनाओं पर प्रभाव डाला है। इतना ही नहीं, नारियाँ युद्धभूमि में भी पुरुषों का साथ देती थीं। कैकेयी दशरथ के साथ समररथ में समासीन थी, और रथ का पहिया टूटने पर उसने

---

१. वा० रा० ४।२३।२७
२. वा० रा० २।२०।१५-१९
३. वा० रा० ४।१६।१२
४. वा० रा० ६।१२८।५१-६१
५. वा० रा० २।७६।२०
६. वा० रा० ४।२५।३५-३६
७. वा० रा० २।७६।२३
८. गतिरेका पतिर्नार्याः
९. वा० रा० २।२९।१८
१०. वा० रा० २।२९।१७

अपने प्राणों की बाजी लगा कर दशरथ की रक्षा की थी।

जैसे बिना तार के वीणा, बिना चक्र के रथ वैसे ही बिना पति के स्त्री कृतित्व-हीना है। पिता-माता, भाई, पुत्र, पुत्र-वधू कोई भी नारी का अपना नहीं है ये अपने-अपने भाग्य को प्राप्त होते हैं।[१] केवल पति का भाग्य ही पत्नी को प्राप्त होता है। पत्नी की आभूषणों से भी अधिक शोभा पति है।[२] वनोद्यत राम ने माता कौशल्या को जो उपदेश दिये हैं,[३] उनसे तत्कालीन नारी-आदर्शों की सूचना मिलती है। स्त्री के लिए पति ही देवता, गुरु, गति, धर्म प्रभु और सर्वस्व है। अतः पति में एकान्तनिष्ठा ही पत्नी का धर्म है। सब सुख-साधनों और ऋद्धियों-सिद्धियों से भी अधिक श्रेयस्कर पति के चरणों की सेवा करना है। माता-पिता-पुत्र तो परिमित सुख देते हैं, पति ही अमित सुख देता है।[४] स्वामी की सेवा न करना या उसका त्याग करना सती नारी के लिए अकल्प्य है।

इसी प्रकार अन्यत्र[५] भी पति-भक्ति के उपदेश हैं। पति-सेवा न करने वाली स्त्री जप-तप, व्रत-उपवास करने पर भी नरक में पड़ती है। देवताराधना न करने पर भी पति-सेवा से उत्तम स्वर्ग लोक मिलता है।[६] अनुसूया ने कहा था कि दुष्ट-प्रकृति, उदंड, कामुक, धनहीन पति भी श्रेष्ठ देवतातुल्य है।[७] सीता ने प्रत्युत्तर में कहा कि यदि मेरे पति दुःशील और चरित्रहीन भी होते, तब भी मैं उनकी सेवा में रत ही रहती, फिर वे तो सर्वगुण संपन्न हैं। स्त्री के लिए पति सेवा से बढ़कर दूसरा तप नहीं है।[८]

आदि कवि ने नारी को अति गौरवमय रूपों में उपस्थित किया है। वह साहस और धैर्य की प्रतिमा है। सीता एक वीर नारी है, जो न केवल अपने कष्ट सहन करने को प्रस्तुत होती है, वरन् अपने घोर कष्टों की उपेक्षा करती हुई पति के कष्ट निवारण में दत्तचित्त रहती है। वह वनवास के समय राम से कहती है कि मार्ग के काँटों को हटाती हुई मैं तुम्हारे आगे आगे चलूँगी।[९] ऐसी सीता का धोखे से त्याग करना एवं वन में अकेली छोड़ देना राम के चरित्र का एक असपृहणीय अंश है। यह एक हृदय-विदारक घटना है और राम के वनवास से

---

१. वा० रा० अयोध्याकाण्ड सीता राम से—

आर्य पुत्र, पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुंजानाः स्व स्व भाग्यमुपासते॥
भर्तुर्भाग्य तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।

२. वा० रा० २।३७।४।६, २।२६।७, २।३६।२६, २।६१।२४, ५।१६।२८

३. वा० रा० २।२५

४. देखिये उद्धरण संख्या ३, पृष्ठ ६५

५. वा० रा० २।२४।१२, २।२४।२६-२८, २।२७।६, २।३९।३०

६. भर्तुः शुश्रुषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
अपि या निर्नमस्कारा निवृता देव पूजनात्॥

७. वा० रा० २।११७।२३।२४

८. वा० रा० २।११८।६ पति शुश्रुषणान्नार्यास्तपानोन्यद्विधीयते

९. अगतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्। वा० रा० २

भी अधिक दुःखदायी है। फिर भी सीता ने जिस साहस के साथ उन कष्टों को सहन किया, उनसे भारतीय नारी का अप्रतिम गौरव और तितिक्षा शक्ति प्रकट होती है। एकमात्र सीता का उदाहरण ही स्पष्ट कर देता है कि नारी ममता, मंगल एवं मंजुलता की प्रतीक है, वह पुरुष का सहारा है, उसके लिए प्रकाश-स्तम्भ स्वरूप है। लज्जा, संकोच, श्रद्धा, स्नेह, मधुरिमा आदि नारी के द्वितीय गुण हैं, जो रामायणकालीन नारी में प्रकृतया ही अभिभूत होते थे।

पति सेवा :

पति-सेवा का सर्वोच्च आदर्श हमें रामायण काल में मिलता है। परम पतिव्रता तथा कभी विलग न होने वाली नारियों की यशोगाथाएँ रामायण की पावन निधियाँ हैं। ऐसी महानारियों में शची, रोहिणी, सावित्री, दमयंती और सीता के पावन नाम हैं। सीता की पति सेवा जगत्-प्रसिद्ध है। वह राम के लिए वन के भीषणतम कष्टों को सहने के लिए प्रस्तुत है।[१] उसके लिए सब अवस्थाओं में पति सेवा श्रेष्ठ है। राम के बिना वह स्वर्गवास भी नहीं चाहती। हिंस्र जन्तुओं का उसे राम के साथ रहते हुए कोई भय नहीं है।[२] अंधकार में छाया भी जो सदा व्यक्ति के साथ रहती है, उसका साथ छोड़ देती है किन्तु सीता ने विपत्ति के समय भी पति का साथ नहीं छोड़ा। समस्त सुखों को लात मार कर मलिन-वसना दुःखसन्तप्ता सीता राक्षस-राज के प्रलोभनों और प्रणय-प्रस्तावों को घृणापूर्वक ठुकरा देती है।

कौशल्या ने वनगमन के समय सीता को यही उपदेश दिया था कि राम की सेवा सधन-निर्धन सभी अवस्थाओं में करना, जिसका उत्तर उन्होंने मर्मपूर्ण शब्दों में दिया था कि स्त्री का तो पति ही देवता है।[३]

यही कारण था कि जब रावण ने सीता को पटरानी बनाने के लिये त्रिलोकों के ऐश्वर्य का प्रलोभन दिया, तब सीता ने उसे धिक्कारते हुए यही कहा कि मैं पुरुष-सिंह राम की अनुवर्तिनी हूँ, तू गीदड़ मुझ सिंहिनी को प्राप्त करना चाहता है।[४] रावण द्वारा अनेक यातनायें दिये जाने पर भी सीता वैसी ही धीर बनी रहीं। चन्द्रमा का उष्ण होना, अग्नि का शीतल होना और सागर-जल का मीठा होना सम्भव हो जाय, पर सीता का सतीत्व से विचलित होना सर्वथा असम्भव था। इसी के प्रभाव से सीता ने पूँछ में लगी आग से जलने से हनुमान को बचा लिया।[५] राम के पत्नीव्रत में तो यह कमी रह गई थी कि उन्होंने अग्नि-परिक्षिता पति-

१. वा० रा० २।२६

२. यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना वा० रा० २।३०।३-१६

३. स्त्रियाँ भर्ता हि देवतम् वा० रा० २।३६।२५-३१

इसका कारण सीता के अनुसार यह है :—

मितं ददाति हि पिता, मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥

यही बात इन्हीं शब्दों महाभारत १२।१४८।६, मत्स्यपुराण २।१०।१८ शुक्रनीति ४।४।३१ तथा रामचरित मानस अनुसूया की सीता को सीख में मिलती है।

४. वा० रा० ४।७।२५-४७

५. यदि वा स्त्येक पत्नीत्वं शीतोभव हनुमतः वा० रा० ५।५३।२५-२६

बना सीता का लोकापवाद के भय से परित्याग कर दिया था, किन्तु सीता का पतिव्रत निष्कलंक है। पत्नी के लिए पति ही गति है,[1] ऐसा मानने वाली सीता का महान पावन चरित ही रामायण है।[2]

गृहस्थी की आतरिक व्यवस्था .

घर-बार का सारा प्रवध तथा घर के सभी व्यक्तियों को सुखी रखने का कार्य तो गृहिणी के हाथ में होता ही था, पति के मन पर भी स्त्री का पूरा अधिकार होता था।[3] कैकेयी का दशरथ पर शासन था। राम सीता के कंचन मृग-विषयक दुराग्रह को पूरा करने के लिए बाध्य हुए। राम के साथ न जाने वाले पुरुषों को उनकी पत्नियों ने उपालभ दिये थे। स्त्रियाँ पुरुषों को शुभ कार्य के लिए और युद्ध मे जाने के लिए भी प्रेरित करती थी।[4] पत्नियों से उपहासित होने के भय से पुरुष समरागण में पीठ दिखाने से रुके रहते थे।[5]

वस्त्राभूषण .

नागरिकों में सूती-रेशमी और ऊनी वस्त्रों का, जो रंग-बिरंगे, पीले, सुनहले और चमकीले होते थे, व्यवहार होता था।[6] वन-वासियो मे कुश- चीर और वल्कल धारण करने का नियम था परन्तु वन-वासिनी स्त्रियाँ सूती या रेशमी साडी पहनती थी। सती अनसूया ने सीता को वस्त्र और आभूषण भेंट किये।[7] पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी दो वस्त्र धारण करती थी— उत्तरीय और अधोवस्त्र उत्तरीय उनके कन्धो और वक्षस्थल पर रहता था और अधोवस्त्र कटिभाग पर रशना से कस लिया जाता था।[8] सिलाई की कला प्रचलित थी और सिले हुए वस्त्र भी पहने जाते थे।[9]

नर-नारी सभी आभूषण प्रिय थे यही नही, पशु भी आभूषण से सजाये जाते थे। शरीर के सभी अगो-प्रत्यगो मे आभूषण धारण किये जाते थे। रत्नजटित आभूषण अधिक प्रिय थे। पुष्पो और पुष्पमालाओ का शोभावृद्धि के हेतु प्रयोग होता था।[10] चन्दन और अंगराग के

---

१. ना पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणा पतिरेको गतिः सदा॥ वा० रा०
२. काव्य रामायण कृत्स्न सीतायाश्चरित महत्। —वा० रा० १।४।७
३. वा० रा० २।२६।३०-३८
४. वा० रा० २।८५।२५
५. वा० रा० ६।६६।२०
६. डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास-रामायणकालीन सस्कृति।
७. अयोध्याकाण्ड—राम का अत्रि-आश्रम-आगमन
प्रीतिदान तपस्विन्या वसनाभरण प्रजाम्।
८. शा० ना० व्यास—रामायणकालीन सस्कृति।
९. वही।
१०. द एज आव एम्पीरियल यूनिटी—सोशलकंडीशन।

प्रयोग की प्रचुरता थी। वेणी में पुष्प गूँथे जाते थे[१] और मस्तक पर बिन्दी भी लगायी जाती थी।[२] सौन्दर्य वृद्धि के लिए प्रतिकर्म-दैनिक श्रृङ्गार प्रसाधन का प्रचार था।[३]

पत्नी का एकमात्र श्रृङ्गार पति-प्रेम :

पत्नी का शारीरिक सौन्दर्य, सौन्दर्य-प्रसाधन और श्रृङ्गार उसे कमनीय बनाते हैं, किन्तु यदि वह पतिपरायणा न हो तो ये सभी दूषण बनकर उसकी निन्दा के कारण हो जाते हैं। अतः पति ही पत्नी का एकमात्र और सर्वोत्कृष्ट श्रृङ्गार है।[४] उदार-हृदया और पुण्य-शीला नारी ही पति की सौख्य-वृद्धि कर सकती है। पत्नी को स्मितपूर्वाभिभाषिणी और मृदु प्रिय बोलने वाली तथा प्रगाढ़ अनुरक्तिमयी होना चाहिये।[५] विनम्रता-पतिशुश्रूषा पत्नी का परम धर्म है। सीता स्वर्णशय्यासीन राम के पास खड़ी होकर चँवर डुलाती थीं।[६]

पति-हित व्रतचर्या :—

रामायणकालीन विवाहित स्त्रियाँ पति-हित के लिए व्रत-नियम पालन, धार्मिक अनुष्ठान, तथा दानादिक कार्य करती रहती थीं। सीता राम के लिए देवताओं से मंगल याचना करती थीं[७], और वनवास की निरापद समाप्ति के लिए भी उन्होंने गंगा, कालिंदी तथा वट-वृक्ष की स्तुति की थी। पति की कल्याण-कामना नारी के अनेक व्रतों और पर्वों के मूल में आज भी विद्यमान है।

आदर्श पत्नी :—

स्वस्थ शारीरिक मनोज्ञता और नैतिक सदाशयता—ये आदर्श पत्नी के वे गुण हैं जो पति के सौख्य के मूलाधार हैं। आदर्श पत्नी दासी, सखी, भार्या, भगिनी और माता सबकी स्नेहार्द्रता अपने में सँजोये रहती है। दशरथ को कौशल्या ऐसी ही लगती थीं।[८] वशिष्ठ के मत से पत्नी पति की आत्मा है।[९] सीता जैसी आदर्श नारी पति के हृदय से अपना हृदय एक कर लेती है।[१०] वेश्या दारा और अभियत सुपुत्र के साथ पुरुष के धर्म, अर्थ, काम सिद्ध हो जाते हैं।[११]

---

१. शां० नां० व्यास—रामायणकालीन संस्कृति।

२. वही।

३. वही, तथा द एज आव इम्पीरियल यूनिटी, सोशलकंडीशन।

४. वा० रा० २।२६।७

५. वा० रा० १।७२।३

६. वा० रा० २।१६।१०

७. वा० रा० २।१६।२१-२५

८. यदा यदा हि कौसल्या दासीवच्च सखीव च।
  भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति। —वा० रा० २।१२।६८-६९

९. वा० रा० २।३७।२४

१०. वा० रा० १।१७।२७-२८

११. वा० रा० २।२१।५७

प्रोषित भर्तृका की रीति-नीति :—

पति के प्रवास काल में स्त्री को अपना सारा समय स्नान, पूजा व्रतोपवास, संध्या-वन्दन आदि धर्म कार्यों में लगाना चाहिये। सादा वेष, सादा खान-पान और आमोद-प्रमोद रहित सादा जीवन बिताना चाहिये। विरहिणी सीता ऐसे ही रही थी।[१] एक वेणीधारण, पृथ्वी शयन, यम-नियम-पालन, पति का अहर्निश स्मरण और व्रतचर्या-यह तपस्यामय जीवन विरहिणी का होता था।[२] पर-पुरुष से सम्पर्क सर्वथा त्याज्य था। सीता ने हनुमान के साथ राम के पास जाना भी इसीलिये अस्वीकार कर दिया था।[३]

स्त्री का ओज-तेज आक्रोश :—

पति-अनुरक्त नारियाँ भी कभी-कभी पति आदि पर अपना आक्रोश, असन्तोष या खिन्नता प्रकट कर देती थी। कैकेयी ने दशरथ की, अपने वचन से फिर जाने पर, भर्त्सना की थी।[४] शूर्पणखा ने खरदूषण और रावण को कायर और कर्तव्य-विमुख कह कर लताड़ा था।[५] कौसल्या ने राम से दशरथ द्वारा अपने प्रति किये गये उपेक्षा भाव का वर्णन किया था। फिर, राम को वन भेज देने पर कौशल्या ने भी दशरथ को तीखे वचन कह दिये थे,[६] किन्तु दशरथ के क्षमा माँगने पर उन्होंने पश्चाताप-पूर्वक पति से क्षमा माँगी थी, क्योंकि यदि पत्नी पति से अनुनय-विनय करवाती है, तो वह दोनों लोकों से जाती है।[७]

इसी प्रकार पतिप्राणा सीता, वन-गमन की अनुमति न देने पर, राम को आक्रोशपूर्वक कायर, क्लीव, स्त्रैण और स्त्री जीवी शैलूष तुल्य तक कह देती है।[८] कौशल्या के यह कहने पर कि तुम दुष्ट स्त्रियों का-सा आचरण न करना, सीता ने बड़ा ओजपूर्ण उत्तर दिया था।[९]

---

१. वा० रा० ५।११।२

२. वा० रा० ५।२८।१२

३. वा० रा० ५।३७।६२

४. यत्वया सश्रुत मह्य तस्यनास्ति व्यातिक्रमः।
इति दुःखाभिसन्तप्तं प्रार्थयन्तं पुनः पुनः।
प्रत्युवाचाय कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः॥
—वा० रा०

५. रावणंशत्रुहन्तार राक्षसी भय विह्वला।
अमात्यमध्ये सक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत॥
अयुक्त चार मन्ये त्वा प्राकृते. सचिवैर्वृतम्।
स्वजनं तु जनस्थाने हतं यो नावबुध्यते॥ आदि
—वा० रा०

६. वा० रा० २।६२।३४—३८

७. वा० रा० रामवन गमन प्रसंग, तथा २।६३।१३

८. वा० रा० २।३०।३, २।३०।८

९. वा० रा० २।३९।२७-२८

लंका में राम के द्वारा प्रत्याख्यान होने पर सीता ने रोष प्रकट किया था।[1]

नारी की शासन संबंधी योग्यता :—

सीता और कैकेयी जैसी नारियाँ सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रभाव डालती थीं, और राजनीतिक क्रांतियों का परिचालन करती थीं। इतना ही नहीं, उन्हें शासन चलाने में भी समर्थ और योग्य समझा जाता था, जैसा कि हमें वसिष्ठ के इस सुझाव से ज्ञात होता है कि राम के वन चले जाने पर सीता राज्य-कार्य सँभाल लें।[2] रावण ने भी सीता को लंका के राज्य पर अभिषिक्त होने को कहा था।[3] तारा बालि को और बाद में सुग्रीव को भी राज्य कार्य में सहायता देती थी।

अंतःपुर का जीवन, रहन-सहन :—

सामान्यतः स्त्रियाँ अवरोधों में ही रहती थीं। अनेक विवाह कर लेने के कारण राजाओं को सुरक्षित हर्म्यं भी बनवाने पड़ते थे। स्त्री-द्वारपाल, कुबड़ी-ठिगनी स्त्रियाँ और वर्षवर इनकी रक्षा के लिए नियुक्त किये जाते थे। इनके ऊपर एत्रवध्यक्ष नामक मुख्याधिकारी होता था। यह प्रबंध सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति और प्रदर्शन के लिए तथा कुचक्रों से रक्षा पाने और अनधिकृत व्यक्तियों को रोकने के उद्देश्य से किया जाता था। इन अंतःपुरों में उद्यान, क्रीड़ा-साधन, सुख सामग्रियाँ सभी होती थीं, और इनके निवासियों का जीवन-वैभव विलास में आगे बढ़ता था।[4]

पत्नी के प्रति पति के कर्तव्य :—

रामायण काल में पति पत्नियों के प्रति पूर्ण शिष्टाचार का पालन करते थे, और उनकी प्रत्येक संभव इच्छा की पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न करते थे। पति पर पत्नी के प्रति तीन महान दायित्व होते थे, भरण-पोषण का, स्त्रीधन पर हाथ न लगाने का और वैवाहिक एकनिष्ठा का। पुरुष पत्नी का पालन करने से पति और भरण करने से भर्ता कहलाता है।[5] एतदर्थ पत्नी के लिए अशन-वसन की व्यवस्था करना, उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए उसका संरक्षण करना, प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखते हुए उसे सदा प्रसन्न रखना और उसकी काम-परितुष्टि करना पुरुष का नैतिक कर्तव्य है। राम ने चित्रकूट में भरत से पूछा था कि तुम स्त्रियों को सन्तुष्ट और सुरक्षित तो रखते हो न ?[6]

पत्नी द्वारा अर्जित धन पर जीवन-निर्वाह करने वाले शैलष जैसे पति महाघृणित समझे जाते थे।[7] पति का सदाचरण उसके एकपत्नी व्रत से सराहनीय बनता था।

---

१. न तथास्मि महाबाहोयथा तवभवगच्छसि।
चिता मे कुरु सौमित्रे, प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्॥ —वा० रा०

२. वा० रा० २।३७।२३-२४

३. वा० रा० ३।५५।२६-२७

४. देखिये, शान्तिकुमार नानूराम व्यास-रामायणकालीन समाज।

५. भार्याया भरणाद् भर्ता, पालनाच्च पतिः स्मृतः।

६. वा० रा० २।१००।४६

७. वा० रा० २।३०।८

पति पत्नी का अपमान नही करते थे। वे उनके परामर्शों के अनुसार काम करते थे। यदि कभी उनकी बात नही भी मानते थे तो भी उनके प्रति शिष्टता में न्यूनता नही लाते थे। रावण ने मन्दोदरी की सम्मति नहीं मानी, किन्तु उससे कटु वचन भी नहीं कहे। दशरथ ने कैकेयी के प्राणघातक प्रस्ताव को सुनकर भी उसके साथ कोई अभद्रता नही की। वनोद्यत राम ने सीता की भर्त्सना का उत्तर स्मितिपूर्वक ही दिया।

जहाँ पत्नी से पातिव्रत्य की अपेक्षा की जाती है, वहाँ पति को स्वदाररत रहने का आदेश मिलता है। उसे अपनी ही पत्नी में अनुरक्त रहना चाहिये। राम का एक महान् गुण उनकी एकपत्नी-निष्ठा है।[1] परस्त्री सेवी को महापाप लगता है।[2] साथ ही वह पति भी दुष्टात्मा है जो पत्नी के अधिकारों का हनन करता है, और ऋतु-सुनाता पत्नी को सहवास सुख से वंचित रखता है।[3]

पत्नी का अपमान स्वयं अपने पौरुष और कुल का अपमान है, जिसे कोई भी सम्मानित कुलीन व्यक्ति सह नही सकता। राम का विराधय द्वारा सीता का स्पर्श, अपने पिता की मृत्यु और अपनी राज्यच्युति से भी अधिक दु:खकर लगा था।[4] पत्नी को सम्मान रक्षा के लिए पुरुष अपने को आग में झोंक देते है, वैर मोल लेते है, और प्राणो की बाजी लगा देते हैं। सुग्रीव रुमा के अपहरणकर्ता अपने अग्रज बालि का शत्रु बन गया था।[5] बालि से मायावी एक स्त्री के लिए लड़ा था।[6] और सारा राम-रावण युद्ध सीता की सम्मान रक्षा के लिए हुआ था।[7]

स्त्री का विशेष सम्मान :—

श्री रामचन्द्र के कथनानुसार स्त्रियों के लिए न घर, न वस्त्र, न दीवारें और न राजसत्कार ही वैसी आड़ करने वाला है, जैसा कि उनका अपना सदाचरण[8] सदाचारिणी स्त्री सब के लिए पूजनीय है। अत्रि-पत्नी अनुसूया अपने पतिव्रत्य के कारण सर्ववन्दनीय थी। शबरी अपनी भक्ति के कारण ऋषियो के लिए भी सम्माननीया थी।

---

१. वा० रा० १।१।५६
२. वा० रा० २।७७।५५
३. वा० रा० २।७५।५२
४. वा० रा० ३।२।२१
५. हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमेतुदु पाश्रितः।
   वालिनो में महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु।
   राम—वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥
   वा० रा० किष्किन्धाकाण्ड, सुग्रीव
६. वा० रा० ४।६।५
७. गतो स्यन्तममर्षस्य धर्षणसम्प्रमार्जिता।
   अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धतो॥ —वा० रा० ४।६।५
८. वा० रा० ६।११४।२४।२४-३० तथा
   २।४५।२५, ५।३३।२०, ३।३७।१७, ६।११८।१६

स्त्री विषयक शिष्टाचार :—

स्त्रियों को देवि, कल्याणि भद्रे, सुभगे, सुन्दरि आदि सौम्य संबोधनों से अभिहित किया जाता था। किसी भी रामायणीय पात्र ने इस नियम का उल्लंघन नहीं किया है। प्रत्येक पुरुष नारी के साथ वार्तालाप में अत्यन्त शिष्ट रहता था। सीता से बोलने के पूर्व हनुमान और विभीषण ने सिर पर हाथ जोड़ कर मूर्धिन-बद्धांजलि प्रणाम किया था। सीता के प्रति वाल्मीकि का व्यवहार भी अति शालीन रहा था। स्त्रियों के सामने क्रोध का निवारण कर लेना चाहिये। उनके सामने रोष या आवेश में आना मर्यादा के विरुद्ध है। यह तत्कालीन शिष्टता का प्रमुख आग्रह था।[१] नारी के प्रति बल प्रयोग सर्वथा निन्दनीय और विगर्हणीय माना जाता था।

स्त्री के सम्मान के लिए ही पुरुष उनसे आगे-आगे मार्ग दिखाते हुए चलते थे। वाहनों पर चढ़ते समय स्त्रियों को पहले स्थान दिया जाता था, रथों में भी वे पहले और आगे बैठायी जाती थीं।[२]

स्त्रियों के समक्ष बिना पूर्व-सूचना दिये सहसा पहुँच जाना अशिष्टता थी। लक्ष्मण जब सुग्रीव के पास गये, तो वहाँ नूपुर झंकार सुनते ही एकान्त में खड़े हो गये, और अपने आगमन की उन्होंने सूचना भिजवाई।[३] विभीषण भी सीता के सामने पहले सूचना भिजवा कर तब गये थे।[४]

स्त्रियों की ओर घूरना घोर अशिष्टता थी। यह असंस्कृति और असभ्यता का लक्षण था। अस्त-व्यस्त तारा के दृष्टिपथ में आते ही आते ही महात्मा लक्ष्मण सिर नीचा करके खड़े हो गये।[५] यदि उसका पति साथ न हो तो किसी की ओर देखना या उससे एकान्त में बात करना भी अनुचित माना जाता था।[६]

नारी की अवध्यता :—

जब स्त्रियों के प्रति कठोरता भी नहीं की जा सकती थी, तब उनका वध तो विचार में भी नहीं लाया जा सकता था। स्त्रियाँ सर्वथा, सब दशाओं में अवध्य थीं।[७] जिन दशाओं में वध का दण्ड दिया जाता है, उनमें नारी को कुरूप मात्र कर देना अलं था। शूर्पणखा और अयोमुखी को कुरूप ही किया गया था। ताड़का को मारने से राम पीछे हट रहे थे किन्तु ऋषि द्वारा जब यह सिद्ध कर दिया गया कि मानव वध, क्षत्रीराक्षसी का वध गर्हित नहीं है, तभी राम ने उसे धराशायी किया। स्त्री-वध राजा, बालक या वृद्ध के वध के समान

१. न हिस्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् —वा० रा० ४।३३।३६
२. वा० रा० २।४०।१३-१६, २।४३।१२, २।५२।७६
३. वा० रा० ४।३३।२५-२७
४. वा० रा० ६।११४।८
५. वा० रा० ४।३३।३६
६. वा० रा० ७।४८।१६-२०
७. वा० रा० २।६८।२१, ६।८१।२८

प्रथा का उद्देश्य स्त्री को दुष्ट चक्षु से बचाना था, किन्तु राम के मत में तो स्त्री अपनी रक्षा स्वयं अपने चरित्र बल से करती है।[१] सीता ने अपने तेज से ही स्वयं अपनी रक्षा की थी।[२]

स्त्री : पति की निजी सम्पत्ति :

स्त्री अपने स्वामी की निजी सम्पत्ति जैसी थी, जिसका आदान-प्रदान भी हो सकता था। रावण ने बाली से मित्रता स्थापित करते समय अन्य वस्तुओं के साथ स्त्रियों को भी दोनों की सामान्य संपत्ति कहा था।[३] सीता ने कहा था कि शैलूष अपनी स्त्रियाँ दूसरों को दे देते हैं।[४] राम ने भी कहा था कि मैं पिता की आज्ञा से राज्य तो क्या, पत्नी भी भरत को दे सकता हूँ।[५] इस प्रकार पति-पत्नी का निरंकुश स्वामी होता था। पत्नी की स्वतंत्र सत्ता नहीं थी। क्योंकि यह एक तत्कालीन मान्यता थी कि यदि स्त्री को पूर्ण देखभाल में न रखा गया, तो वह मातृकुल, पितृकुल और पति कुल तीनों पर कलंक का टीका लगा सकती है[६]।

अतः स्त्री के लिए पिता, पति, पुत्र या और किसी सम्बन्धी की शरण में ही रहना अनिवार्य था। पति का यह कर्तव्य था कि वह भार्या का सावधानी से रक्षण करता हुआ,[७] श्रमपूर्वक उसके योगक्षेम का वहन करे।[८]

पत्नी को तुच्छ समझना :

इस प्रकार पत्नी को तुच्छ समझने की व्यापक प्रवृत्ति तत्कालीन समाज में पाई जाती है। राम ने भी लक्ष्मण मूर्छा के समय विलाप में कहा था कि स्त्री और बान्धव तो सर्वत्र मिल सकते हैं किन्तु सहोदर नहीं मिल सकता।[९] लोकापवाद से डर कर अथवा आत्मसम्मान के लिए राम ने सीता का परित्याग करके चाहे राज की मर्यादा निभायी हो, किन्तु उनके इस कार्य से स्त्री के गौरव का ह्रास ही हुआ है।

नारी : विलास की वस्तु :

बहु-विवाह प्रथा, दासियों का उपहार में दिया जाना, स्त्रियों को भेंट रूप में दिया जाना, गणिकाओं का बाहुल्य, राक्षसों द्वारा नारी अपहरण और सतीत्व-नाशन, दण्ड जैसे राजाओं द्वारा बलात्कार, मृत भाई की पत्नी से विवाह कर लेना, अवैध यौन-सम्बन्ध, देवताओं का मर्त्यलोक की सुन्दरियों पर आकृष्ट होना, और मर्त्यों की स्वर्ग में अप्सराओं के साथ प्रणय क्रीडा की लालसा ये सब सिद्ध करते हैं कि उस समय नारी को विलास की एक

---

१. वा० रा० २।४५।२५
२. वा० रा० ३।३७।१४
३. वा० रा० ७।३४।४१
४. वा० रा० ३।३०।८
५. वा० रा० २।१६।७
६. वा० रा० ७।६।११
७. वा० रा० ३।५०।८
८. वा० रा० २।५३।३
९. वा० रा० ६।१०१।१४

सामग्री मात्र माना जाता था और उसका आत्म-गौरव सुरक्षित नहीं था।

स्त्रियाँ : उपहार की वस्तु :

कन्यादान पिता के लिए परोधर्मः अर्थात् महान पुण्य का का कार्य था।[१] किन्तु कन्या-दान के अतिरिक्त उपहार रूप में भी कन्याएँ, दासियाँ और पत्नियाँ भी दे दी जाया करती थीं। वनोन्मुख राम ने एक ऋषि को दासियाँ भेंट की थी।[२] दशरथ के श्राद्ध में ब्राह्मणों को दासियाँ दान दी गयी थी।[३] बालि की मृत्यु पर तारा ने राम से अपने मार डालने की प्रार्थना की थी, क्योंकि स्त्री-दान ज्ञानवानों के लोक में सबसे बड़ा दान है।[४] भरत ने हनुमान को राम के लौटने का शुभ समाचार सुनाने पर सोलह कन्याएँ पत्नी रूप में प्रदान की थी।[५] राम को कर रूप में दासियाँ भी दी गई थी।[६] ये दासियाँ वस्त्राभूषण पहनाने, शृङ्गार करने, उबटन लगाने, स्नान कराने, पैर दबाने, मदिरा पिलाने और व्यजन डुलाने का कार्य करती थीं।[७]

अश्वमेधों में राजा पुरोहितों को अपनी रानियाँ भी भेंट में दे देते थे,[८] फिर रानियों के साथ धन-धान्य देकर पुरोहितों को संतुष्ट कर दिया जाता था।[९] इससे प्रकट होता है कि यह प्रथा एक औपचारिकता मात्र थी। इसी प्रकार कन्याओं के उपहार में दिये जाने के उल्लेखों से यह सिद्ध नहीं होता कि वे उच्छृंखल यौन तृप्ति के लिए दी जाती थीं। हनुमान को जो कन्याएँ दी जाने वाली थी, वे भी भार्या रूप में दी जा रही थी। दास-दासियों का दान दिये जाने की सामन्ती प्रथा तो अब तक चल रही थी।[१०]

नारी-स्वातंत्र्य :

हम देख चुके हैं कि रामायण काल में स्त्री-रक्षण के नाम पर पर्दा प्रथा चल पड़ी थी। किन्तु यह स्मरणीय है कि पर्दा का यह आशय नहीं था कि नारी घर में बन्द रहे। वह यज्ञों,[११] धार्मिक समारोहों,[१२] सामूहिक भोजों,[१३] प्रदर्शनों और क्रीड़ा-विनोदों में[१४] पुरुषों के साथ ही

---

१. वा० रा० १।७५।१५
२. वा० रा० २।३२।१५-१६
३. वा० रा० २।७३।३
४. वा० रा० ४।२४।३८
५. वा० रा० ६।१२५।४४-४५
६. वा० रा० ७।३६।११
७. वा० रा० २।४२।१४, २।६१।५३-५४, ६।१२२।३
८. वा० रा० १।१४।४३-४४
९. वा० रा० १।१४।४५
१०. राहुल सांस्कृत्यायन-राजस्थानी रनिवास
११. वा० रा० ७।९१
१२. वा० रा० १।१४।१३
१३. वा० रा० १।१४।१६
१४. वा० रा० ७।३१।१५।१७

बेरोक टोक सम्मिलित होती थी। ऐसे अवसरों पर वह वस्त्राभूषण से स्वलंकृत होकर संगीतोल्लास का संचार करती थी। उनसे महोत्सवों की शोभा बढ़ाती थी। किसी मंगलकृत्य के समय स्त्रियाँ पुष्प वर्षा करती थीं,[१] कन्याएँ आगे-आगे चलती थीं। अभिषेक में भी वे भाग लेती थीं। उनकी उपस्थिति मंगलमय मानी जाती थी।[२]

सखियों के साथ :

स्त्रियों को अकेले या सखियों के साथ आमोद-प्रमोद में उन्मुक्त रीति से भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। सीता तो वन में राम के साथ निश्चिन्तता और आत्मस्थता के साथ रहने लगीं मानो वे प्रवास के लिए ही बनी थीं।[३] चित्रकूट में सीता निर्द्वन्द्व रहती थीं, अकेली तो रहती ही थीं।

बड़े-बूढ़ों के समक्ष :

भक्तिकालीन प्रथा के विपरीत, रामायण काल में बड़े-बूढ़ों के सामने युवतियाँ अपने पतियों के साथ बिना घूँघट काढ़े जा सकती थीं। वन-प्रस्थान करते समय माता-पिता से बिदा लेने के लिए राम सपत्नीक उनके पास गये थे। आपस के वार्तालाप में भी कोई व्यवधान नहीं रखा जाता था।

आश्रमों में :—

आश्रमों में भी नारी का जाना वर्जित नहीं था। राम के साथ सीता अनेक ऋषियों के आश्रमों में गयीं और सभी जगह उनका स्वागत हुआ। महर्षि भारद्वाज[४] और अगस्त्य[५] ने भी उनका स्वागत किया था। सीता को भी कोई संकोच नहीं हुआ। जटायु के घायल होने पर सीता ने उसका स्पर्श करके रुदन किया था।[६] साधु-वेश धारी रावण का आतिथ्य भी सीता ने किया था।[७]

न्यायालय में :—

न्यायालयों में स्त्रियों के प्रवेश की स्वतंत्रता थी। पुरुषों की भाँति ही वे अपने अभियोग वहाँ प्रस्तुत कर सकती थीं।[८]

वाल्मीकि स्त्री-स्वतंत्रता के महान् पक्षपाती हैं। उन्होंने सीता से राम को उस समय

१. वा० रा० २।१६।३७-४१
२. वा० रा० ६।१२७-१२८
३. वा० रा० २।६०।८
४. वा० रा० ३।१८।८
५. वा० रा० २।५४
६. वा० रा० ३।५२।११
७. वा० रा० ३।४६-४७
८. वा० रा० ७।५३।५

खरी-खोटी सुनवाई है, जब राम ने उन्हें वन ले जाने से मना कर दिया था।[१] सीता की इस भर्त्सना का राम ने कोई कटु उत्तर नहीं दिया, वरन् उनके वचनों का आदर ही किया।[२]

इन सब उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उस युग की नारियों को अप्रतिम स्वतन्त्रता प्राप्त थी और तत्कालीन समाज में स्त्रियों को पुरुषों से भी सम्माननीय स्थान प्राप्त था।

नारी-अपहरण :—

नारी की चोरी या अपहरण एक घृणास्पद अपराध माना जाता था। सीता को चुराने पर विभीषण ने रावण से कहा था कि यह कार्य धर्मार्थ-नाशक है।[३] बलात्कार का कठोर दण्ड मिलता था।[४] पराई स्त्री पर कुदृष्टि रखने वाले राजकुमार को भी, जैसा कि भरत के कथन से स्पष्ट है, देश निष्कासन मिलता था।[५] मन्दोदरी ने विश्वासपूर्वक कहा था कि पतिव्रता के आंसू व्यर्थ नहीं जाते, सीता के अपहरण से ही रावण-कुल का नाश हुआ है।[६] सीता ने भी रावण से परदार निरत रहने को कहा था।[७] इसीलिए मनुष्यमात्र का यह कर्त्तव्य बताया गया है कि बलात्कार की जाती हुई स्त्री की रक्षा करें।[८]

अपहृत नारियाँ :—

रामायण में बलपूर्वक अपहृत या बलात्कार की हुई स्त्रियों के अनेक उल्लेख हैं। रावण ने अनेक देवताओं, दानवों, राजाओं और ऋषियों की कन्याओं और स्त्रियों का अपहरण करके उन्हें अपने अन्तःपुर में रख लिया था।[९] सिंह के पंजे में पड़ी हुई मृगियों की भाँति उनकी असहाय दशा थी। रावण की मृत्यु के पश्चात् उनका क्या हुआ, यह ज्ञात नहीं होता।

भार्गव ऋषि की पुत्री अरजा से विन्ध्यदेश का राजा दण्ड बलात्कार करके चला गया। इस पर भार्गव ऋषि ने सात दिन में दण्ड के राज्य का सर्वनाश करने की प्रतिज्ञा की,

---

१. कि त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुष विग्रहम्॥
—वा० रा० २।३०।३

२. सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च।
व्यवसायमनुक्रान्ता सीते त्वमतिशोभनम्॥
आत्मेयं गुरु धर्मो वनवासक्षमा क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते॥
—वा० रा० २।३०।४१-४२

३. वा० रा० ६।१।१३-२२
४. वा० रा० ७।२६।५५-५६
५. वा० रा० २।७५।४५
६. वा० रा० ६।१११।६७
७. वा० रा० ५।२१।७
८. वा० रा० ३।५०।१८, ५।२१।७, ७।२६।२६
९. वा० रा० ५।११११६४, ७।२।८, ७।२४।८, ७।२४।१६

और अरजा को आजन्म एकान्त सेवन तथा तप करने की आज्ञा दी। इस प्रकार उस कन्या का सदा के लिए परित्याग कर दिया गया।[१]

रावण-वध पश्चात् राम ने भी अपहृता सीता को ग्रहण करने से मना कर दिया था, क्योंकि रावण ने कामातुर नेत्रों से उन्हें देखा था।[२] फिर भी राम का यह कथन कि मैंने रावण को केवल अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये और अपवाद से मुक्त होने के लिए हराया है, राम ही के अन्य कथनों से मेल नहीं खाता, जबकि वे सीता को पुनः सुखी करने[३] उनके आलिंगन पाने[४] के लिए उत्कंठित होते हैं। वस्तुतः राम ने सीता की दैवी साक्षी लोकापवाद से अपनी रक्षा करने के लिए ली थी, क्योंकि उन्होंने कहा है कि मैं भली-भाँति जानता हूँ कि सीता लंका में आत्म-तेज से सुरक्षित थीं।[५] इसी लोकापवाद के भय से ही राम को पुनः सीता का परित्याग करना पड़ा।[६] लोक-दृष्टि से किये गये इस कार्य ने राम-सीता के हृदय को संघर्षों से मथ डाला। वास्तव में यह सब दोष उस समय के कट्टरपंथी समाज का था। बाद के स्मृतिकारों ने इस कठोरता को हेय ठहराया था।[७]

गणिका :—

जैसा पहले कहा जा चुका है, वेदकाल से ही गणिकाओं के अस्तित्व के उल्लेख मिलते हैं रामायण में इनका प्रथमोल्लेख हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। फिर भी, रामायणकाल में इनका प्रचार बढ़ रहा था। सामन्ती संस्कृत में ऐसा होना स्वाभाविक भी था। राजकीय समारोहों में,[८] राज्याभिषेक में,[९] और स्वागत-कार्यों में[१०] ही नहीं, सेना के मनोरंजन के लिए[११] भी गणिकाएँ साधन बनती थीं।

राजकीय ही क्या, नागरिक जीवन में भी गणिकाओं का सुगण्य स्थान था। गणिका वर-शोभिता[१२] अयोध्या में रूपाजीवा[१३] में भी थीं। रूपा से जीविका चलाने वाली ये वेश्याएँ

---

१. वा रा० ७।८०-८१
२. वा० रा० ६।११५।१३-१४
३. वा० रा० ४।१।१०३-१०६
४. ६।५।७-२०
५. वा० रा० ६।११८।१३-१६
६. वा० रा० ७।४३।१७-२०, ७।४५।१०-१६
७. उदाहरणार्थ—पाराशरस्मृति १०।२१-२२ रजः स्राव से स्त्री की शुद्धि मानती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड ६१।७६ बलात्कार धर्षित स्त्री का प्रायश्चित से शुद्ध होना मानता है।
८. वा० रा० २।१४।३६
९. वा० रा० २।३।१८
१०. वा० रा० ६।१२७।५
११. वा० रा० २।३६।३
१२. वा० रा० २।५१।२१
१३. वा० रा० २।३६।३

लोगों को लुभाने के लिए राज्य-मन्त्रियों द्वारा भी प्रयुक्त की जाती थी। यथा, राजा रोमपाद के मन्त्रियों ने विभाडक सुत ऋष्यशृङ्ग को प्रलुब्ध करने के लिए वस्त्राभूषण से अलंकृत वेश्याएँ भेजी थी।[१]

मातृत्व : नारी की चरम परिणति :

नारी जननी, जाया और धात्री है, क्योंकि वह पुत्र रूप में पति को ही पुनर्जन्म देती है और पालती-पोसती है। भारतीय विवाह का चरमोत्कर्ष पुत्र-प्राप्ति में है। पुत्र-प्रसव द्वारा वंश वृद्धि करके ही नारी परम गौरवमयी होती है। यही कारण था कि भारतीय विवाह वर-वधू के कामोपभोग के लिए न होकर सुयोग्य सन्तति के लिए होता था। कन्या के अखण्ड कौमार्य और वर के तपोनिरत चारित्र्य हो जाने पर जो विवाह होता था, वह यौन-परितुष्टि के लिए नहीं वरन् मेधावी और तेजस्वी संतति-प्राप्ति के लिए ही होता था।

इस प्रकार नारी जीवन की परम सफलता उसके मातृत्व में सन्निहित थी। सुयोग्य सन्तति-प्राप्ति नर-नारी के जीवन की सार्थकता थी। इसी से पुत्रेष्टि का प्रचार था, पुंसवन संस्कार का महत्त्व था तथा माता-पिता अपने जीवन और कार्यों में पवित्रता रखते थे। गर्भ काल में नारी आचरण और विचारों की पवित्रता का पूरा ध्यान रखती थी। पत्नी की दोहद इच्छाओं को सदा पूरा किया जाता था, जिससे बालक के संस्कार अच्छे बनें। वाल्मीकि के अनुसार जन्म-जन्मान्तर के संस्कार मनुष्य को सज्जन या दुर्जन बनाते हैं। यद्यपि यह सामान्य मान्यता थी कि पुत्र-पिता के, और कन्याएँ माता के अनुसार बनते हैं,[२] तथापि चरित्र-निर्माण का मूलाधार माता ही मानी जाती थी, पिता नहीं।[३] शारीरिक प्रजनन में भी माता का ही प्राधान्य है, पिता तो निमित्त मात्र है।[४] अतः गर्भवती के आचार-विचार पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। आचार की पवित्रता बनाये रखने से त्रिलोक-जयी पुत्र उत्पन्न हो सकता है।[५] जो स्त्रियाँ गर्भकाल में वेद-श्रवण आदि करती है, उनके पुत्र मेधावी होते है। उदाहरणतः, पुलस्त्य-पत्नी के वेद-यज्ञ रत होने से उनका पुत्र अल्पायु में ही वेदाध्ययन-रत होकर विश्रवा संज्ञाधारी, पवित्र और शीलवान बना।[६] इसके लिए विपरीत, दशानन आदि दुर्जन बने क्योंकि रावण की माता कैकेयी ने विश्रवा मुनि से, सन्ध्याकाल में बड़े कुसमय में, गर्भाधान की कामना की थी, जिसके परिणामस्वरूप रावण और कुंभकरण बड़े क्रूर दुराचारी और दारुणकर्मा व्यक्ति उत्पन्न हुए,[७] जिनको उनका वेदाभ्यास और कठोर तप भी सदाचारी नहीं बना सका।

गर्भ की रक्षा के लिए मंत्रानुष्ठान, जादू-टोने और टोटके भी किये जाते थे।[८]

---

१. वा० रा० १।१०

२. पितॄन्समनुजायन्ते नरा, मातरमङ्गनाः। —वा० रा० २।३५।२८

३. न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति। —वा० रा० २।१६।३४

४. वा० रा० १।१०८।११

५. वा० रा० १।४६।६

६. वा० रा० ७।२।३१।३३

७. वा० रा० ७।३।२२-२४

८. वा० रा० ७।६६।५-६

भ्रूणहत्या महापातक मानी जाती थी।

माता अपनी सन्तान से बड़ा ममत्व रखती थी और पुत्र भी माता का सर्वाधिक सम्मान करते थे। माता की आज्ञा सर्वथा अनुलंघनीय होती थी। मातृ-प्रेम की सघनता और प्रगाढ़ता गौ के वत्स प्रेम से उपमित होती थी। कौशल्या राम का अनुगमन करने को वत्सानुगमिता गौ-की भाँति उद्यत हो गई थीं।[१] राम के विरह में कौशल्या[२] तथा अन्य रानियाँ[३] विवत्सा रानियों की भाँति व्यथित-व्याकुल हो गयी थीं। फिर भी पति और पुत्र के प्रेम में से एक को चुनते समय पति-प्रेम प्रधानता पाता था। सुमंत्र ने कैकेयी से कहा था कि करोड़ पुत्रों से भी पति अधिक होता है।[४] कैकेयी निन्दित इसीलिए हुई कि उसने पति की अपेक्षा पुत्र को प्रधानता दी। वनगमनोद्यता कौशल्या को राम ने समझाया था कि आप पति के जीवित रहते उन्हें छोड़कर मेरे साथ विधवा की भाँति कैसे चल सकती हैं।[५] विधवा होने पर तारा ने मृत-पति का गात्र-संश्लेष सौ पुत्रों से भी अधिक सुखदायी माना था।[६]

पिता की प्रधानता :

राम ने पिता-माता की आज्ञाओं में भेद होने पर पिता की आज्ञा मानना उचित प्रतिपादित किया है। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने परशुराम, सगर और कण्डू के उदाहरण दिये हैं।[७]

वन्ध्यत्व :

जब मातृत्व की इतनी प्रशस्ति थी, तो निश्चय ही वन्ध्यत्व परम मनोवेदना का हेतु होता था। निःसंतान होने का संताप स्त्री को निरन्तर सताता सालता और दग्ध करता रहता था।[८] पत्नी का वन्ध्या होना उसके पति के भी विषाद का कारण बनता था।[९] यही कारण है कि प्रत्येक स्त्री मातृ-पद पाने के लिए लालायित रहती थी। निःसंतान रहने का शाप मिलना स्त्रियों[१०] और पुरुषों[११] सभी के लिए असह्य व्यथाकारी होता था।

---

१. वा० रा० २।२०।५४, २।२४।६
२. वा० रा० २।२०।५३
३. वा० रा० २।४१।१७
४. वा० रा० २।३५।८
५. वा० रा० २।२१।६८
६. वा० रा० ४।२१।१३
७. वा० रा० २।२१।२७-२६
८. वा० रा० २।२०।३७
६. वा० रा० १।३६
१०. पार्वती का पृथ्वी को निःसंतान रहने का शाप
११. पार्वती का देवताओं को निःसंतान रहने का शाप

वैधव्य :—

यद्यपि वैधव्य को नारियाँ घोरतम विपत्ति समझती थी[1], तथापि इस कारण वे समाज में अनाहत या उपेक्षित नहीं होती थी और न मङ्गल कार्यों से उनकी बहिष्कृति होती थी।

दशरथ की विधवा रानियाँ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। राम के पुनरागमन पर उन्होंने उनका मङ्गल स्वागत किया था। राम के राज्याभिषेक उत्सव में उनकी आरती उतराना, सीता का शृङ्गार आदि[2] तथा अन्य मंगल कार्य किये थे। बाद में मधुपुरी के राजा बनाये जाने पर शत्रुघ्न का मंगल अभिषेक तीनों विधवा माताओं ने किया था।[3] अतः स्पष्ट है कि मंगल कार्यों में विधवाओं की उपस्थिति आज की भाँति अशुभ नहीं मानी जाती थी।

राक्षसों और वानरों में अनेक विधवाओं का पुनर्विवाह :—

रावण का अनेक राजाओं को मारकर उनकी विधवाओं से विवाह कर लेना, विधवा मन्दोदरी का विभीषण से विवाह कर लेना और विद्युज्जिह्व की विधवा शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण से विवाह-प्रस्ताव करना, यह प्रकट करते हैं कि राक्षसकुल में विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। वानरों में भी विधवा का पुनर्विवाह हो जाता था। अवैध सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते थे। तारा, रुमा, अंजना आदि की कथाओं से यह स्पष्ट है। जैसा कि तारा के कथन से ज्ञात होता है, वानर समाज में विधवा को अपने मृत-पति की सम्पत्ति पर भी कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता था।[4]

राक्षसों में विधवा का पर-पुरुष गमन :

भी पाया जाता है। शूर्पणखा अपने पति विद्युज्जिह्व की मृत्यु के पश्चात् इधर-उधर घूमती फिरती थी। उसने राम-लक्ष्मण से समागम का प्रस्ताव रखा था।

आर्य विधवाओं का तपोपूत जीवन :—

आर्यों में विवाह अविच्छेद्य होता था, जिससे विधवा के पुनर्विवाह की स्थिति आ ही नहीं सकती थी। रामायण में सर्वत्र उनका जीवन एकाकी, विरहमय, तपोपूत, संयमित तथा आमोद-विवर्जित रूप में अंकित किया गया है। अनेक स्थलों पर सर्वत्र विधवा को असमय नष्ट क्षीण वस्तु का उपमान बनाया गया है।[5]

किन्तु जहाँ विधवाओं को पुनर्विवाह से वंचित रखा गया था, वहाँ उन्हें सम्मान का भी अधिक पात्र बना दिया गया था। दशरथ की विधवा रानियाँ अपनी समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी थीं, और दान-पुण्य आदि में पुण्यपूर्वक अपना समय बिता रही थी।[6]

---

१. सर्वासामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत्। वा० रा० ७।६५।४३

२. वा० रा० ६।१२८।१७

३. वा० रा० ७।६३।१७

४. वा० रा० ४।२१।१४

५. वा० रा० ५।२६।२५-२६ आदि

६. वा० रा० ७।६६।१३-१७

आर्यों में देवर-भाभी का सम्बन्ध :—

जैसा कि हमने देखा, राक्षसों और वानरों के असमान, आर्यों में अग्रज की विधवा से अनुज के विवाह का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। आर्य जनों में, देवर अपनी भाभी को आरम्भ से ही मातृ-तुल्य देखता था। सीता और लक्ष्मण के व्यवहार से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

देवर-भाभी का सम्बन्ध अति मधुर एवं शिष्टता तथा ममता से परिपूर्ण होता था। बड़े भाई की पत्नी माता के समान पूज्य थी। लक्ष्मण सीता को मातृवत् पूज्य मानते थे और नित्य उनके चरणों में प्रणाम करते थे। वे सम्मान-भाव से सदैव उनके चरणों की ओर ही दृष्टि रखते थे, मुख की ओर नहीं। यही कारण था कि सीता-हरण के बाद वे राह में सीता द्वारा फेंके हुए आभूषणों में से केवल पैरों के ही आभूषण पहचान पाते हैं, अन्य नहीं।[१]

रामायण के अनुसार भौजाई को देवरों के साथ अपने ही भाइयों या पुत्रों के समान व्यवहार करना चाहिये। सीता भी लक्ष्मण को पुत्रवत् ही मानती थी।[२] रामायण में पद-पद पर उनका लक्ष्मण के प्रति मातृवत् स्नेह ही प्रदर्शित हुआ है। केवल एक असाधारण अवसर पर उन्हें उनके प्रति सन्देह हो जाता है और वे भ्रमवश लक्ष्मण के प्रति उग्र हो जाती हैं। पति की संभावित विपन्नावस्था की कल्पना ने ही तपस्वी लक्ष्मण के प्रति ये कटु वचन कह-लाये। हे दुष्ट, तू वन में राम का अनुयायी या तो मेरे कारण हुआ या भरत से प्रयुक्त किया गया है। मैं चाहे भस्म हो जाऊँ पर तेरे साथ कभी न जाऊँगी।[३] और हम देखते हैं कि सीता की यह कटूक्ति नियति का व्यंग बनकर उसके ही भाग्य को अति विषादमय बना देती है, जबकि इसी के कारण रावण को उनके हरण का अवसर मिल जाता है। ऐसी कटूक्ति सुनकर भी लक्ष्मण ने सौम्यता और शालीनता से परिपूर्ण उत्तर दिया था कि आप मेरे लिए साक्षात् देवी हैं, मुझमें आपको उत्तर देने की शक्ति नहीं।[४]

सती-प्रथा :

पुनर्विवाह प्रथा न होने पर विधवाओं के लिए दो ही मार्ग रहते थे—सती हो जाना या तपोनिष्ठ जीवन बिताना। रामायण काल में दोनों के उदाहरण मिलते हैं। पति की मृत्यु पर नारियाँ सती भी हो जाती थीं। सती होने वाली स्त्रियों के प्रति श्रद्धा अधिक हो जाती थी। तथापि सती होने की प्रथा का अधिक प्रचलन नहीं था। दशरथ का कैकेयी से यह कहना

---

१. नाहं जानामि केयूरे न च पश्यामि कुण्डले।
   नुपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादभिवन्दनात् ॥ वा० रा०

२. वा० रा० २।२६।३२

३. इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।
   सन्तुष्टस्तवं वने राममकेमेको नु गच्छसि।
   मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥
   उत्तर नोत्सहे वक्तुं देवतं भवती मम।—वा० रा० ३।४५।६-७

४. वा० रा० ३।४५।२८

कि मेरे मरने के बाद तू पुत्र के साथ राज करना[१], यह स्पष्ट संकेत देता है कि सती होना अपरिहार्य नहीं। दशरथ की एक भी रानी सती नहीं हुई, चाहे कौशल्या ने अपने विलाप में इसकी तत्परता भले ही दिखायी थी।[२] तारा और मन्दोदरी भी सती नहीं हुईं। केवल कुश-ध्वज-पत्नी[३] और मेघनाथ-पत्नी प्रमीला[४] ही सती हुई थी। किन्तु उत्तरकाड में वर्णित सती होने की इन घटनाओं को विद्वज्जगत् ऐतिहासिक रूप मे स्वीकार नहीं करता।[५]

नारी-स्वभाव निन्दा :—

रामायण में नारी के अवगुणों का भी दिग्दर्शन हुआ है। स्त्रियों के प्रधान चारित्रिक दोष अनेक है। तुलसीदास ने इन सबका समाहार आठ दोषों—साहस, अनृत, चपलता, माया, भ्रम, अविवेक, अशौच, अदया में कर दिया है। अबला होते हुए भी स्त्री दु:साहसी हो जाती है, इसी से वह दुराग्रही और हठी हो जाती है। कैकेयी का स्वार्थमय दुराग्रह[६] और सीता का काचन-मृग के लिए अविवेक पूर्ण हठ[७] इसके उदाहरण हे। दुराग्रह ग्रस्त होकर वे ईर्ष्यालु[८], निर्मम स्वभाव वाली दयाहीना[९], वज्र, तुल्य, कटु, कठोर वाणी वाली[१०] और पति पर शासन करने वाली[११] बनकर नागिन के समान भयावह हो जाती है। कैकेयी शूर्पणखा आदि इसकी

---

१. वा० रा० २।१२।६३

२. वा० रा० २।६६।१२

३. वा० रा० ७।१७।१४

४. वा० रा० युद्धकाड

५. अनन्त सदाशिव अलतेकर—पोजीशन आव वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृष्ठ १४२

६. वा० रा० २।१२

७. वा० रा० ३।४३।२१ सुन्दर वस्तुओं का प्रलोभन भी।

८. वा० रा० २।१२।१०० कैकेयी की ईर्ष्या,
वा० रा० ३।३४।२१-२२
तवानुरूपा भार्या स्यात् त्वं च तस्यास्तथा पतिः
भार्यार्थे च तवानेतुमुद्यता हं वराननाम् ॥
विरूपिता स्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज ॥
अर्थात् शूर्पणखा ने ईर्ष्यावश तथा तिरस्कार से आहत होकर ही सीता का अपहरण करवाया था।

९. उस नाराच सन्निभं, लाछन सीता ने लक्ष्मण पर लगाया।
वा० रा० २।१२।४५ कैकेयी के दशरथ पर निर्मम व्यंग-बाण।
वा० रा० २।३०।३, सीता के राम के प्रति कटु वचन।

१०. वा० रा० २।१८।१७ रोष से परुष वाक्य।
वज्र समावाक्। सीता का लक्ष्मण से कटु वचन।

११. वा० रा० २।१२।८-१० दशरथ ने कैकेयी को तीक्ष्ण विष वाली नागिन कहा था।
वा० रा० ६।१४।२ विभीषण से रावण ने कहा कि सीता नागिन है। पूरा रूपक।

उदाहरण हैं। स्त्रियाँ अविवेक की घर होती हैं[1], क्योंकि उनमें मिथ्या गर्व लहरें लेता रहता है[2], और इसी से वे सरलता से लुभावे में[3] आ जाती हैं।

अविवेक के कारण ही उनमें चपलता की अधिकता होती है, जिसके कारण उनमें अस्थिरता[4], उत्सुकता[5] और यौन-प्रवृत्ति[6] एवं पर-पुरुष आकर्षण[7] आ बसते हैं। अहिल्या की चपलता उसे ले डूबी। इस प्रकार दोषों से ग्रस्त होकर लोक में तिरस्कृत होने से बचने के लिए असृत और माया[8] का संश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। शूर्पणखा के कपट और अहल्या के असत्य व्यवहार ने स्त्रियों के चरित्र में अविश्वास[9] उत्पन्न कर दिया। अतः यह परम स्वाभाविक ही था कि अवमानना और अविश्वास पाती हुई नारी प्रेम-प्रभित होकर नैराश्य संकुल[10] हो जाय और आत्म लघुत्व का शिकार भी बन जाय। इन मानसिक दोषों के

वा० रा० २।७५।४५-४६ स्त्री सुरा है, द्यूत है। वह प्रमदा है वासना की पुतली है।

वा० रा० ३।५५।३५-३६ प्रतापी रावण भी स्त्री-वश हो गया। पुरुष को पथ-भ्रष्ट करती है—अप्सराओं, वेश्याओं के उदाहरण।

१. वा० रा० ३।४५।६ सीता की लक्ष्मण के चरित्र पर शंका, आदि

२. वा० रा० २।१०।२८-४० दशरथ कैकेयी वार्तालाप। वृथा पंडित मानिनी।

३. वा० रा० ५।२०।१२ आदि—लम्पट जन नारी को सौख्य के रंगीन चित्र दिखाकर लुभा लेते हैं।

वा० रा० २।१००।४६ इसलिए स्त्री की सदा देख-भाल करते रहना चाहिये।

४. विद्युते स्त्रीषु चापुलयम् ॥ अनित्य हृदया हि ताः। वा० रा० २।३६।२०।२३
इन्हें गोपनीय बातें न बतावे। वा० रा० २।१००।४६
वे तुरन्त स्नेह-बन्धन तोड़ देती हैं। वा० रा० ३।१३।५-६

५. केकय-नरेश से उनकी रानी में जृंभ पक्षी की बोली का अर्थ जिसे बता देने पर उनकी मृत्यु निश्चित थी, सुना देने का हठ किया। उसकी उत्सुकता ने पति के प्राणों की भी चिन्ता नहीं की। वा० रा० २।३५।१८-२६

६. अहल्या ने दिव्य रति के कुतूहल से ही इन्द्र का रति-प्रस्ताव स्वीकार किया था। वा० रा० १।१८।४६

७. अहल्या का अपने पति से झूठ बोलना। शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण और फिर रावण से झूठ बोलना।

८. पुरुष नारी का वास्तविक रूप नहीं जान सकता। वह विष-संयुक्त मदिरा, मृग-लुब्धक व्याध है। नारी-मोह-ग्रस्त पुरुष घृणित है।
वा० रा० २।१२।७०, ७६, ७८, २।१११।२२

९. वा० रा० २।१००।४६ स्त्री का विश्वास न करें:
कच्चित्त्वश्रद्धधास्यायां कच्चिद् गुह्यं न भाषसे।

१०. वा० रा० २।२१।१४ तारा की निराशा :—न पति के राज्य पर मेरा अधिकार है न पुत्र अंगद पर ही, अब तो ये दोनों सुग्रीव के वश-वर्ती हैं।

अतिरिक्त उसमें अशौच का शारीरिक दोष भी है, ऋतुमती में ब्रह्महत्या का कुछ अंश विद्यमान रहता है।[1]

स्त्रियाँ फूट कराने वाली भी होती हैं। पंचवटी में सीता के कटु वचनों का उत्तर देते हुए लक्ष्मण ने कहा था स्त्रियाँ भाइयों में अलगाव करा देती हैं।[2] मंथरा ने तो ऐसी फूट डाली कि सारा सुख-वैभव ही मिट गया।

इतने दोष गिनाने का यह तात्पर्य नहीं है कि नारियाँ नरक की खान ही होती हैं, जैसा कि भक्तिकाल में सन्त कवियों ने उन्हें सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है। रामायण काल में तो नारी की भव्यता ही सामने रखी जाती थी। उनके दोषों का बखान तो केवल असाधारण विषम स्थितियों में ही किया गया है। वह भी दो एक अपचरित्राओं के लिए ही। अपहृत शक्ति दशरथ ने भी कैकेयी के अनेक दोष गिना देने के पश्चात् कहा था कि सभी स्त्रियाँ दोषमय नहीं होतीं।[3] उनके अनेक दोष तो पुरुषों ने अपने चारित्रिक संयम-बल की प्राप्ति के लिए गिन लिए हैं।

उपसंहार

इस प्रकार सब दृष्टियों से देखने पर रामायणकालीन नारी का रूप, कुल मिलाकर, बड़ा भव्य और उदात्त है। भारतीय मनीषा ने यह मत स्थिर किया है कि महाभारत द्यूत-प्रसंग है, भागवत चोर-प्रसंग है तो रामायण की यथार्थ संज्ञा स्त्री-प्रसंग है क्योंकि इसमें नारी का ही गौरव-गान है।[4] इस नारी-जीवन का अनुवर्तन भक्तिकाल में स्पृहणीय ही नहीं, आज भी आदर्श हिन्दू-स्त्री रामायणकालीन स्त्री-संस्कृति का अनुवर्तन करती है। रामायणकालीन नारी की समीक्षा बहुत कुछ भक्तिकालीन नारी की समीक्षा है, बहुत अंशों में दोनों का एक ही स्वरूप है।

महाभारत काल में नारी

महाभारत में कन्या :

महाभारत काल में कन्याओं के प्रति अधिक स्नेह पाया जाता है। शुक्राचार्य अपनी लाड़ली पुत्री देवयानी[1] को प्रसन्न करने के लिए प्राणों को भी संकट में डाल देते हैं जब वे कच को अपना पेट फाड़ कर निकालते हैं।[2] द्रौपदी बहुत थोड़ी होने पर भी अपने माता-पिता की गोद में बैठती रही थी।[3] महाभारतकार अपुत्र पिता की सम्पत्ति में कन्या को ही अधिकारी मानते रहे हैं।[4] उनका आदेश है कि पिता को पुत्री से कलह न करना चाहिए।[5]

स्त्री-शिक्षा :

उस समय स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती थीं। वे शास्त्राध्ययन भी करती थीं। इनमें मैत्रेयी गार्गी का उपनिषदों पर शास्त्रार्थ उल्लेखनीय है।

कन्या दर्शन की माँगलिकता :

अलंकृत कन्याएँ माँगलिक हैं, अतः युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बैठने के समय उनका दर्शन भी कराया गया था।[6] सात्यकि के युद्ध-प्रस्ताव के समय कन्याओं ने उसका खीलों और मालाओं से अभिनन्दन किया था।

कन्याओं का आत्म-त्याग :

वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा कुल कल्याणार्थ पिता की आज्ञा से देवयानी की आजीवन दासता स्वीकार करती है। एक चक्रानगरी के ब्राह्मण की कन्या बक राक्षस का भोजन बनने को पिता से आज्ञा माँगती है।[7]

कन्याओं का अक्षत योनित्व :

कन्याओं के कौमार्य का पतन राज्य के पतन का कारण बनता है।[8] इससे कन्या अपनी प्रतिष्ठा खोती है,[9] और उसे ब्रह्म हत्या का तिहाई पाप भी लगता है।[10] किन्तु कुन्ती,

१. महाभारत १।८०।९-१०
२. महाभारत १।७६ अ
३. महाभारत २।३२।६५
४. महाभारत १३।४५।११
५. महाभारत ४।१८०
६. महाभारत ७।८२।२१-२२
७. १।१६१।४
८. १०।६०।३०
९. १३।३६।१७
१०. १२।१६५।१२

सत्यवती, द्रौपदी, माधवी आदि समागमो के पश्चात् भी कन्या ही बनी रहीं।[1] अन्य पूर्वा को स्वीकार नही किया जाता था। शाल्व ने अम्बा को त्याग दिया।[2] अर्जुन ने मुक्त-पूर्वा को प्राप्त करने वालों की गणना ब्रह्म हत्या और गो-हत्या वालो से की है।

विवाह के प्रकार :

महाभारत काल में आठों प्रकार के विवाहो का होना पाया जाता है। जिनमें आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों की निन्दा की गई है। शल्य की भगिनी माद्री का पांडु से आसुर-विवाह, सुभद्र और अर्जुन तथा अम्बिका और विचित्र-वीर्य के राक्षस विवाह हुए थे। गान्धर्व विवाह का रूपान्तर स्वयंबर पद्धति मे हो गया था। हिडिम्बा से भीम का विवाह भी गान्धर्व विवाह था। कीचक का द्रौपदी के साथ बलात्कार करने का प्रयत्न आदि पैशाच विवाह की भूमिका थे।

महाभारतकाल में स्त्री पत्नी को मनुष्य का अर्द्ध भाग तथा श्रेष्ठतम सखा कहा गया है।[3] वह भरण-पोषण के लिए पति पर निर्भर थी, इसी से पति भर्ता कहलाता था।[4]

पत्नी का सम्मान :

महाभारत के अनुसार स्त्रियाँ पूजा के योग्य महाभाग्यशीला तथा पुण्यवती हैं। वे घर की शोभा है।[5] विदुर कहते है कि पति पत्नी के प्रति कोमल और मधुर वाणी बोले,[6] पत्नी से विवाद न करे, क्रुद्ध होने पर भी स्त्रियो के लिए अप्रीतिकर कार्य न करे।[7] स्त्रियो को गाली देने वाला नरक में जाता है।[8] भीष्म-पुरुषो को यह शिक्षा दी है हे पुरुषो, स्त्रियाँ मान के योग्य है, उनका सम्मान करो। स्त्री से धर्म और रति का कार्य पूर्ण होता है, तुम्हारी सेवा-परिचर्या उसके अधीन है, प्रजोत्पत्ति, प्रजा-पोषण और संसार में प्रेम पत्नी से ही है इनका सम्मान करो, इससे तुम्हारे सारे कार्य सफल होंगे।[9] हे राजन स्त्रियों का सदा लालन-पालन और पूजन करना चाहिए। जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहीं देवता रमते हैं। जहाँ इनकी पूजा नही होती, वहीं धार्मिक क्रिया निष्फल रहती है।[10] स्त्रियाँ लक्ष्मी है।[11] जो पति, पिता, भाई

---

१. क्रमशः कु. ३।१०३-१०६ अ०, स० १।६३।७८, व्रो० १।१९८।१४, मा० ५।११५।२१ तथा १५।३०।२१
२. ५।१७५।१६
३. महाभारत १।७४।४०
४. महाभारत १।१०४।३१
५. महाभारत ५।३८।१०
६. महाभारत ५।३८।१०
७. सुसंरब्धो पि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः। —महाभारत १।७४।५६
८. स्त्रियं च यः परिवदते तिवेलम्। —महाभारत ५।३७।५
९. महाभारत १३।४६।९-१२
१०. महाभारत १३।४६।५६-६१ मिलाइये मनु ३।५६-५७
११. महाभारत १३।४६।१५, ५।३।११

कल्याण चाहते हों, इन्हें स्त्री को अलंकारों से विभूषित करना चाहिए।[1] शकुन्तला पति के लिए पत्नी का महत्व इन शब्दों में प्रतिपादित करती है—पत्नी पुरुष का आधा भाग है, श्रेष्ठ-तम सखा है, त्रिवर्ग धर्म अर्थ और काम का मूल है, भव सागर तरने का साधन है। पत्नी वाले ही पति-यज्ञ करने वाले, गृहस्थ, सुख पाने वाले, आमोद प्रमोद करने वाले और श्रीयुक्त होते हैं। प्रियंवदा पत्नियाँ एकान्त में पति की मित्र होती हैं, धर्म-कार्यों में पिता और दुख के समय माता होती हैं, निर्जन घने वन में पथिक का विश्राम-स्थल हैं। पत्नी वाला ही विश्वास योग्य होता है। इसलिए दारा ही परम गति है। भार्या द्वारा आत्मरूप पुत्र प्राप्ति होती है, जिससे आनंद प्राप्त होता है। मानसिक रोगों और व्यथाओं से आतुर पुरुष अपनी पत्नियों से वैसे ही आनन्दित होते हैं, जैसे धूप से व्याकुल पुरुष स्नान करके। अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी पत्नियों का अप्रिय कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि रति, प्रीति और धर्म उन्हीं के अधीन हैं। स्त्रियाँ सन्तान की सनातन पुण्य जन्म-क्षेत्र हैं। ऋषियों में भी कोई शक्ति नहीं कि स्त्री के बिना संतान उत्पन्न कर सके।[2] महाभारत के 'न गृहं गृहं' आदि श्लोकों में भी पत्नी-महिमा का विशद वर्णन पाया जाता है।[3]

---

१. महाभारत १३।४६।२

२. अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥
भार्या वन्तः क्रियावंतः सभार्याः गृहमेधिनः।
भार्या वन्तः प्रमोद न्ते भार्या-वन्तः श्रियान्विताः॥
सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः॥
कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै।
यः सदारः स विश्वास्यस्तस्माद्दाराः परागतिः॥
दह्यमाना मनो दुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः।
ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ताः सलिलेष्विव॥
सुसंरब्धो पि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्यहि॥
आत्मनो जन्मः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम्।
ऋषीणामपि का शक्ति स्रष्टुं रामामृते प्रजाम्॥
—महाभारत १।७४।४१-५३

३. न गृहं गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणी हीनमरण्य सदृशं मतम्।
वृक्ष मूले पि दयिता यस्य तिष्ठति तद्‌ गृहम्।
प्रसादो पि तया हीनः कान्तारादतिरिच्यते॥ १२
नास्ति भार्या समोबन्धुर्नास्ति भार्या समागतिः।
नास्ति भार्या समोलोके सहायोधर्म संग्रहे॥ १६

भार्या का भरण :—

पुरुष पत्नी के भरण करने से भर्ता और पालन करने से पति कहलाता है।[१] यदि वह यह दायित्व पूर्ण नहीं करता, तो वह भर्ता और पति नहीं रह जाता।[२] उसी पुरुष का जन्म सफल है, जो अन्नपान से अपनी पत्नी का मन जीत ले।

पत्नी का रक्षण :—

भार्या-रक्षण में असमर्थ व्यक्ति नरकगामी होता है।[३] द्रौपदी ने कीचक से रक्षा करने की भीम से इसी आधार पर याचना की थी।[४] द्रौपदी ने पत्नी-रक्षा में असमर्थ पांडवों की निन्दा और भर्त्सना की।[५] दुर्योधन ने भी एतदर्थ ही पाडवों को षण्ढ कहते हुए उन्हें पुरुष बनने का उपदेश किया था।[६] स्त्रियों की रक्षा करने के क्रम में ही उनका पारतंत्र्य प्रारंभ हुआ।[७] संसार में कीचक जैसे दुष्टों की कमी नहीं है। पतिहीना स्त्री की सब लोग ऐसे ही कामना करते है जैसे पक्षी पृथ्वी पर पडे हुए मांस की।[८] इसीलिए स्त्री को स्वतंत्रता निषेध करने के तीन कारण थे—प्रथम, कुदृष्टि से बचाने के लिये, द्वितीय, आर्थिक आश्रय देने के लिये, तृतीय वर्ण-संकरता दोष से बचने के लिये। परन्तु विदुर ने कहा है कि आपत्ति के लिये धन बचाये और धन से स्त्रियों की रक्षा करे।[९] स्त्री देकर शत्रु राजा से रक्षा करें,[१०] ऐसी नीति कभी नहीं मानी गई है। आदि पर्व में बक राक्षस द्वारा खाये जाने के लिये स्त्री के स्वयं प्रार्थना करने पर भी उसके पति ने उसे भेजने से मना कर दिया। मैं अपने जीवन के लिए तुम साध्वी अनपकारी और अनुव्रता पत्नी का त्याग नहीं कर सकता।[११] इसी प्रकार अन्यत्र अन्यान्य प्रसंगों में भी स्त्री-रक्षण को महत्व दिया गया है।[१२]

यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रिय वादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥ १७॥

महाभारत १२।१४५।६ पत्नी महिमा

१. भार्यायाः भरणाद्भर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः। १।१०४।२१
२. महाभारत १२।२६६।३६
३. १४।६०।४८-४६
४. ४।२१।३६-४२
५. ३।१२।६८-७२
६. ५।१६०।११४, ५।१६१।१३२ कृष्णयाश्च क्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव।
७. १३।२०।१४-२०
८. १।१६०।१२।१३
९. ५।३७।१८
१०. १२।१३३।८
११. १।१५६।३३-३४
१२. महाभारत १४।६०।४५, ४८-४६ आदि

पत्नी का ताड़न अथवा वध :

महाभारतकार किसी भी दशा में पत्नी का पीटा जाना ठीक नहीं समझते । उनके मत में पाप पंकित घरों में ही स्त्रियाँ पीटी जाती हैं ।[१] ब्राह्मण, स्त्री-जाति, भाइयों और गौओं पर क्रूरता दिखाने वालों का टहनी से पके फल की भांति पतन होता है ।[२] स्त्रियों पर नृशंसता करने वाला धर्मच्युत होता है ।[३] ऐसा व्यक्ति ब्रह्मघाती के तुल्य महापातकी होता है ।[४] ऐसा व्यक्तियों के यहाँ से पर्वों के समय देवता तथा पितृगण निराश लौटते हैं । स्त्री-वध ब्रह्महत्या और गौ-हत्या के समान महापाप है ।[५] यह ऐसा अपराध है जिसका प्रायश्चित भी नहीं हो सकता ।[६] स्त्री-घाती की परलोक में भी दुर्गति होती है ।[७]

पत्नी का पति पर प्रभाव :

यह कहना कि स्त्री पति की दासी ही थी, पूर्ण सत्य नहीं है । वह उसकी ऐसी परामर्श-दात्री थी, जो उग्रतापूर्वक भी अपनी बात मनवाने का प्रयत्न करती थी । शकुन्तला दुष्यन्त को बहुत खरी-खोटी सुनाती है, और पत्नी के महत्व तथा अधिकारों को प्रतिपादित करती है ।[८] द्रौपदी युधिष्ठिरादिक को, उनकी कापुरुषता के लिये, भारी भर्त्सना करती है । कीचक की घटना के कारण वह धर्मराज के प्रति कोई भक्ति नहीं रख सकती और जयद्रथ—वध के लिये वह धर्मराज की इच्छा के विरुद्ध भी अर्जुन को उभाड़ती है ।[९] प्रद्वेषी ने नारी स्वतंत्रता हारी, अंधे पति को पुत्रों द्वारा गङ्गा में फिंकवा दिया था ।[१०] अत्रि की ब्रह्म-वादिनी भार्या ने पत्नी को त्याग दिया था ।[११] विदेहराज जनक के संन्यासी होने पर उनकी पत्नी ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा था । लोपामुद्रा ने पति के समान मृगचर्म तो ओढ़ा, किन्तु उस दशा में सन्तानोत्पत्ति के लिये स्पष्ट मना कर दिया । वह तभी किया जब अगस्त्य ने राजसी ठाठ बना लिया था ।[१२]

---

१. महाभारत १३।१२७।६ योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे ।
२. महाभारत १४।६०।४८-४६
३. महाभारत ४।२१।३६-४२
४. महाभारत ३।१२।६८-७२
५. महाभारत १३।१२६।२६
६. महाभारत १२।१०८।३२, १७।३।१६
७. महाभारत १३।१११।११७-११८
८. महाभारत १।७४।३६०
९. महाभारत २।६५,३।१२।३६-७३-८०, ३।३०।१, १६-२१०, ३।३२, ३।२७१।४५, ४।१८।१०-११,१४,४।२२।४५-४६
१०. महाभारत १।१०४।२६-४०
११. महाभारत ३।६७।८
१२. महाभारत ३।६७।८

पति सेवा :

स्त्री का परमधर्म पति की सुश्रुषा है।[१] शाण्डिली ने स्वर्ग-प्राप्ति का कारण पति-सेवा उसकी पसन्द-नापसन्द का ध्यान, और उसकी नींद मे बाधा न डालना बताया है।[२] द्रौपदी ने सत्यभामा को यह बतलाया था कि मैने सेवाभाव से पाँचो पाडवो को वश में कर लिया है। सुकन्या वृद्ध पति च्यवन की सेवा में निरत रही।[३] नारायणी इन्द्रसेना ने सहस्त्रवर्षीय वृद्ध पति की सेवा की।

सतीत्व की महिमा :

सतीत्व से सबसे ऊँचा लोक प्राप्त होता है।[४] सती के तेज के सामने तपस्वी का शाप भी झुक जाता है।[५] वह सब कुछ जान लेती है, जैसे कौशिक ब्राह्मण की सती पत्नी ने ब्राह्मण द्वारा सारस को भस्म करने की घटना जान ली थी। पतिव्रता को पर-पुरुष नहीं देख सकता, जैसे उत्तक राजा पोष्य की पत्नी को नही देख सकता था।

स्त्री जाति की निन्दा :

विदुर ने पति को प्रियवद होने का उपदेश देते समय यह भी कहा है कि ऐसा करने में उनमे शासित न हो जाय।[६] अर्जुन ने जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करते हुए कहा था कि यदि मै जयद्रथ को न मारूँ तो मुझे भृत्यों, स्त्रियो और आश्रितो से शासित पापियो को गति मिले।[७] इससे प्रकट होता है कि पत्नी से शासितो को नरक मिलना माना गया है।

भार्योपजीवी की निन्दा :

भार्योपजीवी गोघाती-तुल्य महापातकी होता है।[८] उस समय भार्या के अथवा श्वसुर के आश्रय पर पुष्ट होना या जीविका चलाना शाप-वचन के रूप मे प्रयुक्त होता था।[९] पत्नी से पोषण पाने वाला दयनीय है।[१०] उसकी मृत्यूपरान्त भी निम्नगति होती है।[११] लिखा है कि ब्रह्मघाती, गोघाती और व्यभिचारी पुरुष की भाँति स्त्रीजीवी भी पापी, असम्भाष्य और नराधम होता है। इसके पाप से निष्कृति नही होती। नरक में ऐसे व्यक्ति

१. महाभारत ५।३४।७५
२. महाभारत १३।१२३
३. महाभारत ३।१२२-२३, ४।२१।१०-१४ मिलाओ भागवतपुराण, ६।३।१ अनु० रा० ब्रा० ४।१।५१-१२
४. महाभारत १३।७३।१२
५. महाभारत ३।२०६ अ, २३-३२, २।३।१०७
६. महाभारत ५।३८।१० न चासां वशगोभवेत
७. महाभारत ७।७३
८. महाभारत १३।९३।१२४-१२५
९. महाभारत १४।६४।२२
१०. महाभारत १४।६०।४६
११. महाभारत ७।७३।३३

रुधिर भक्षण करते हुये मछलियों की तरह भूने जाते हैं।[1]

पत्नी का विनियोग :

पत्नी पर पति का असीम अधिकार मान लेने पर उसे उधार देने, दान देने और बेचने के प्रश्न भी उपस्थित हो सकते हैं। भारतीय साहित्य से इसके उदाहरण बहुत ही कम हैं। यद्यपि दासी स्त्रियों के दान,[2] राजाओं को कन्याओं का उपहार देने,[3] तथा यज्ञों में ब्राह्मणों को कन्या देने[4] के उल्लेख मिलते हैं, तथापि पत्नी-दान का उल्लेख नहीं है। विशेष परिस्थितियों में किये गये ऐसे दो उदाहरण हैं।[5] एक राजा मित्रसह द्वारा स्वपत्नी मदयन्ती का वशिष्ठ को दान, तथा दूसरा राजा वृषादर्मिपुवनाश्व द्वारा अपनी पत्नियों का दान।[6] किन्तु इनकी अप्रमाणिकता श्री हरिदत्त वेदालंकार ने भली प्रकार प्रतिपादित कर दी है।[7] पत्नी को परायी बनाने का उदाहरण द्रौपदी को जुए में दाव पर लगा देना है।[8] इस पर राजसभा में काफी वाद-विवाद हुआ था।[9] इससे निष्कर्ष निकलता है कि उस काल में पत्नी पति की सम्पत्ति समझी जाने लगी थी। राजर्षि लोमपाद द्वारा अपनी कन्या शान्ता का ऋष्यश्रृंग को दान[10] मदिराश्व द्वारा हिरण्यहस्त को,[11] भगीरथ द्वारा कौत्स को,[12] निमि द्वारा अगस्त्य को,[13] भरत द्वारा अंगिरा को,[14] कन्यादान करने के उल्लेख महाभारत में पाये जाते हैं। कन्यादान का विधान महाभारत में अनेक स्थलों पर और भी आया है।[15]

स्त्री के प्रति हीन विचार :

यद्यपि महाभारत काल में स्त्रियों को बहुत सम्मान प्राप्त था, परन्तु उस समय उनके प्रति हीन विचारों की भी कमी न थी। वे कहते थे कि यदि कोई सौ जिह्वा वाला हो, वह

---

१. महाभारत १३०।३७-३६

२. ११।१६८।१६, ४७२।२६, ५।८६।८

३. २।५१।८-६, २।५२।११-२६

४. २।३३।५२, १२।२६।६५, १२।२६।१३३, ३।१८५।३४

५. महाभारत १२।२३४।३०, १३।१३६।१८, १।१२२।२२-२३, १।१८४।१-२

६. महाभारत १२।२३४।१५

७. हिन्दू परिवार मीमांसा, पृष्ठ १०२ से १०५ तक

८. महाभारत सभापर्व २।६५।३५-४१

६. महाभारत २।६७।४ तथा २।६८।३०-३२ और २।७१।१

१०. १३।१३७।२५, १२।२३४।३४

११. १३।१३७।२५

१२. १३।१३७।२६

१३. १३।१३७।११

१४. १३।१३७-१६

१५. २।३३।५४, १५।१४।४, १५।३६।२०, १७।११४-१८।६।१२-१३, ३।३१५।२-६, ३।२३३।३१-४३, ४।१८।२१, १०।२।११ १३।१०३।१०-१२ १६

सौ वर्ष तक जिये और उसे अन्य कोई काम भी न हो, तो भी स्त्रियों के दोष बिना पूरे कहे ही मर जायगा।[1] नारद से पंचचूडा ने कहा था कि स्त्रियों के लिए इस लोक में कुछ अगम्य नहीं है, वे कुबड़े, अन्धे, मूर्ख, बौने और बुरे से भी संयुक्त हो जाती हैं।[2] अमर्यादित स्त्रियाँ पतियों के साथ तभी मर्यादा में रहती हैं, जब उन्हें परिजनों का भय हो और दूसरे पुरुष न चाहते हों।[3] भीष्म का मत है, पुरुष किसी प्रकार नारी की रक्षा नहीं कर सकता। जब विधाता ही रक्षा नहीं कर सकता तो मनुष्य कैसे कर सकता है। वचन से, वध से, बन्धनों से, विविध क्लेशों से, नारी की चौकसी नहीं की जा सकती, क्योंकि वे सदा असंयत हैं।[4] भीष्म के विचार से पतित करने के लिए स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनकी सृष्टि ही तब हुई जब सभी पुरुषों को धर्मात्मा होने के कारण स्वर्ग के भर जाने की आशंका हो गई थी।[5] स्त्रियों से बढ़ कर कोई पापी नहीं। वे जलती हुई आग, माया, उस्तरे की धार, विष और साँप हैं।[6] युधिष्ठिर का मत है कि स्त्रियाँ पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होतीं, वे गौओं की भाँति नये-नये पुरुष ग्रहण करती हैं।[7] कामान्धता का दोष स्त्रियों में अत्यधिक मात्रा में है।[8] नारी में अगणित दोषों का वास है।[9]

---

१. यदि जिह्वा सहस्रं स्याज्जीवेच्च शरदां शतम्।
अनन्य कर्मा स्त्री दोषाननुक्त्वा निधनं व्रजेत्। महा० १२।७४।६
२. अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्ध जड़ वामने।
पङ्गुष्वथ च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिताः नमः॥ —महा० १३।३८।२०२
३. अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च।
मर्यादायाममर्यादा. स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु॥महा०३।३८।१६
४. न तासां रक्षणं शक्यं कर्तुं पुंसां कथचन।
अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह॥
वाचा च वध बन्धैर्वा क्लेशैर्वा विविधैस्तथा।
न शक्या रक्षितुम् नार्यस्ताहि नित्यमसंयता॥ —महा०१३।४०।१४-१५
५. महाभारत १३।४०।६-६
६. महाभारत १३।४०।४-५
७. महाभारत १३।३६।२५
८. ४।४८।१८-१६, ११।३।६१-६४, १३।३८।११।३०
९. महाभारत १३।७३।२३, २३-७४।६, १३।७५।११-१२
१३।३६।५-१४, १३।४०।३-१५, १३।४३।१६

स्मृतिकाल में नारी

यो भर्त्ता सास्मृतांगना।—मनुस्मृति ९।४५

पत्नी का सम्मान :

मनु का मत है कि स्त्रियां घर की शोभा हैं, पूजा के योग्य हैं।[1] जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं, जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल होती हैं।[2] स्त्रियों के निरादर से लक्ष्मी रूठ जाती है, अतः ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वालों को स्त्रियों का सत्कार उत्तम वस्त्राभूषण और भोजन से करना चाहिए।[3] स्त्री के शोभित होने से सारा कुल शोभित होता है, यदि स्त्री शोभायमान नहीं होती तो कुल भी नहीं चमकता।[4] यदि स्त्री सुशोभित नहीं होगी तो पति को प्रसन्न भी नहीं कर पायेगी और उत्तम सन्तानोत्पत्ति भी नहीं होगी।[5] अपत्य, धर्म कार्य, अपनी सेवा, रति, अपना स्वर्ग पत्नी के ही अधीन है। अतः स्त्री-पूजा स्वाभाविक तथा आवश्यक है।[6] जिस कुल में पति पत्नी से तथा पत्नी पति से सन्तुष्ट हैं, वहाँ नित्य ही कल्याण रहता है।[7]

पत्नी के कर्त्तव्य :—

मनु के अनुसार पत्नी के चार कर्त्तव्य हैं—हँसमुख रहना, गृहकार्य में दक्षता, स्वच्छता और अधिक व्यय न करना।[8] याज्ञवल्क्य ने सास-ससुर की वन्दना तथा संयम को भी सम्मिलित किया है।[9] शंख ने तो इसकी चर्चा बड़े विस्तार से की है। उसने तथा मनु ने निषिद्ध व्यक्तियों के सम्पर्क में जाने का भी निषेध किया है।[10] बृहस्पति ने गुरु-जनों से पहले उठना पीछे सोना तथा सम्मान भाव रखना अपेक्षित समझा है।[11] व्यास स्मृति में इन कर्त्तव्यों की सविस्तार विवेचना की है।[12]

---

१. मनु ९।२६
२. मनु ३।५६-५७
३. मनु ३।५९
४. मनु ३।६२
५. मनु ३।६१
६. मनु ९।२८
७. सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। मनु ३।६०
८. मनु ५।१५
९. याज्ञ० १।८७।८७
१०. मनु ८।३६१, याज्ञ० २।२८५, तथा १।८७ पर मिताक्षरा में उद्धृत श्लोक
११. स्मृति चन्द्रिका पृष्ठ २५७
१२. व्यास स्मृति २।३०-३२

सौ वर्ष तक जिये और उसे अन्य कोई काम भी न हो, तो भी स्त्रियों के दोष बिना पूरे कहे ही मर जायगा।[1] नारद से पंचचूड़ा ने कहा था कि स्त्रियों के लिए इस लोक में कुछ अगम्य नहीं है, वे कुबड़े, अन्धे, मूर्ख, बौने और बुरे से भी संयुक्त हो जाती हैं।[2] अमर्यादित स्त्रियाँ पतियों के साथ तभी मर्यादा में रहती हैं, जब उन्हें परिजनों का भय हो और दूसरे पुरुष न चाहते हों;[3] भीष्म का मत है, पुरुष किसी प्रकार नारी की रक्षा नहीं कर सकता। जब विधाता ही रक्षा नहीं कर सकता तो मनुष्य कैसे कर सकता है। वचन से, वध से, बन्धनों से, विविध क्लेशों से, नारी की चौकसी नहीं की जा सकती, क्योंकि वे सदा असंयत हैं।[4] भीष्म के विचार से पतित करने के लिए स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनकी सृष्टि ही तब हुई जब सभी पुरुषों को धर्मात्मा होने के कारण स्वर्ग के भर जाने की आशंका हो गई थी।[5] स्त्रियों से बढ़ कर कोई पापी नहीं। वे जलती हुई आग, माया, उस्तरे की धार, विष और साँप हैं।[6] युधिष्ठिर का मत है कि स्त्रियाँ पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होतीं, वे गौओं की भाँति नये-नये पुरुष ग्रहण करती हैं।[7] कामान्धता का दोष स्त्रियों में अत्यधिक मात्रा में है।[8] नारी में अगणित दोषों का वास है।[9]

---

१. यदि जिह्वा सहस्रं स्याज्जीवेच्च शरदां शतम्।
   अनन्य कर्मा स्त्री दोषाननुक्त्वा निधनं व्रजेत्। महा० १२।७४।६
२. अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्ध जड़ वामने।
   पशुष्वपि च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिताः नमः॥ —महा० १३।३८।२०२
३. अनर्थित्वनमनुष्याणां भयात्परिजनस्य च।
   मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु॥महा०१।३८।१६
४. न तासां रक्षणं शक्यं कर्तुं पुंसां कथञ्चन।
   अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह॥
   वाचा च वध बन्धैर्वा क्लेशैर्वा विविधैस्तथा।
   न शक्या रक्षितुम् नार्यस्ताहि नित्यमसंयता॥ —महा०१३।४०।१४-१५
५. महाभारत १३।४०।६-६
६. महाभारत १३।४०।४-५
७. महाभारत १३।३६।२५
८. ४।४८।१८-१६, ११।१३।६१-६४, १३।३८।११।३०
६. महाभारत १३।७३।२३, १३-७४।६, १३।७५।११-१२
   १३।३६।५-१४, १३।४०।३-१५, १३।४३।१६

स्मृतिकाल में नारी

योभर्त्ता सास्मृतांगना ।—मनुस्मृति ९।४५

पत्नी का सम्मान :

मनु का मत है कि स्त्रियाँ घर की शोभा हैं, पूजा के योग्य हैं।[1] जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं, जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल होती हैं।[2] स्त्रियों के निरादर से लक्ष्मी रूठ जाती है, अतः ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वालों को स्त्रियों का सत्कार उत्तम वस्त्राभूषण और भोजन से करना चाहिए।[3] स्त्री के शोभित होने से सारा कुल शोभित होता है, यदि स्त्री शोभायमान नहीं होती तो कुल भी नहीं चमकता।[4] यदि स्त्री सुशोभना नहीं होगी तो पति को प्रसन्न भी नहीं कर पायेगी और उत्तम सन्तानोत्पत्ति भी नहीं होगी।[5] अपत्य, धर्म कार्य, अपनी सेवा, रति, अपना स्वर्ग पत्नी के ही अधीन है। अतः स्त्री-पूजा स्वाभाविक तथा आवश्यक है।[6] जिस कुल में पति पत्नी से तथा पत्नी पति से सन्तुष्ट हैं, वहाँ नित्य ही कल्याण रहता है।[7]

पत्नी के कर्त्तव्य :—

मनु के अनुसार पत्नी के चार कर्त्तव्य हैं—हँसमुख रहना, गृहकार्य में दक्षता, स्वच्छता और अधिक व्यय न करना।[8] याज्ञवल्क्य ने सास-ससुर की वन्दना तथा संयम को भी सम्मिलित किया है।[9] शंख ने तो इसकी चर्चा बड़े विस्तार से की है। उसने तथा मनु ने निषिद्ध व्यक्तियों के सम्पर्क में जाने का भी विरोध किया है।[10] बृहस्पति ने गुरु-जनों से पहले उठना पीछे सोना तथा सम्मान भाव रखना अपेक्षित समझा है।[11] व्यास स्मृति में इन कर्त्तव्यों की सविस्तार विवेचना की है।[12]

---

१. मनु ९।२६
२. मनु ३।५६-५७
३. मनु ३।५६
४. मनु ३।६२
५. मनु ३।६१
६. मनु ९।२८
७. सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। मनु ३।६०
८. मनु ५।१५
९. याज्ञ० १।८७।८७
१०. मनु ८।३६१, याज्ञ० २।२८५, तथा १।८७ पर मिताक्षरा में उद्धृत श्लोक
११. स्मृति चन्द्रिका पृष्ठ २५७
१२. व्यास स्मृति २।२०-३२

पति सेवा :—

मनु ने कहा है कि साध्वी पत्नी दु:शील, स्वच्छन्द और गुण रहित पति की भी देवता-व्रत सेवा करे, इसी से स्त्रियाँ स्वर्ग में सम्मान पाती है,[१] क्योंकि उनके लिये पृथक् रूप से कोई यज्ञ या उपवासादिक नहीं हैं।[२]

सतीत्व की महिमा :—

मनु तथा याज्ञवल्क्य ने कहा है कि सतीत्व से वह लोक प्राप्त होता है, जिसे केवल ब्रह्मा,[३] पवित्र ऋषि और पवित्र ब्राह्मण ही प्राप्त करते है।

यौन नैतिकता का मानदण्ड :—

भारत में नारियो की यौन-नैतिकता का स्तर और मान-दण्ड बहुत ऊँचा रहा है। यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथों में पत्नी के व्यभिचार संबंधी संकेत भी है।[४] लेकिन वे अपवाद स्वरूप ही है। मनु,[५] गौतम[६] ने व्यभिचारिणी पत्नी को प्राणदण्ड का विधान कर दिया था। इसी प्रकार गौतम, नारद, वृहस्पति और मनु आदि ने सिर मुँड़वाने, अंग-भंग करने, सम्पत्ति छीनने आदि के कठोर दण्ड विहित किये हैं।

यौन नैतिकता का दुहरा मानदण्ड :—

सतीत्व का एकांगी आदर्श है। मनु ने स्त्री पुरुष के लिए "अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिक:" सिद्धान्त बनाया था, किन्तु उसने साथ ही यह भी कह दिया कि पुरुष पत्नी के मरने पर दूसरा विवाह कर ले,[७] किन्तु स्त्री पुनर्विवाह नहीं कर सकेगी।[८] पति तो पत्नी को अप्रियवादिनी होने पर त्याग सकता है,[९] किन्तु पत्नी पति को कभी नहीं त्याग सकती। बोधायन धर्म-सूत्र[१०] याज्ञवल्क्य,[११] और नारद[१२] के भी यही मत है। शास्त्र, स्त्री के अनुकूल न रहने पर पति को अधिवेदन का अधिकार देता है।[१३] अधिविन्ना नारियाँ

---

१. मनु
२. ५।१५४-५५
३. ५।१६५-६   १।८७
४. वैदिक इंडिया १।३६६,७,४८०।
५. मनु ८।३७१
६. गौतम २३।१४
७. मनु ६।१०१,५।१६८
८. मनु ५।१५७-६१
९. मनु ६।८१
१०. बौ-ध-सू-२।२।६५
११. याज्ञ: १।६२
१२. नारद १५।६३
१३. स्मृति चान्द्रिका २४४

यदि रुष्ट होकर घर से निकलें तो पति उनको रोक रखे या ऋषिकुल में भेज दे।[१] इन नियमों का प्रभाव यह हुआ कि अरुन्धती पति ही में रत रही, पर वशिष्ट शूद्रा अक्षमाला पर आसक्त हो गये।[२] द्रौपदी पांडवों की ही रही, पर पांडवों ने अन्य विवाह भी किये। यही स्थिति शची-इन्द्र, सत्यभामा-कृष्ण की भी हुई। पुरुषों पर यौन-संयम की कठोरता न करने के श्री हरिदत्त वेदालंकार के मतानुसार छः कारण हैं।[३] नारी को सम्पत्ति समझना, पुरुष की नैसर्गिक अहंभावना, प्रसीत्व के भीषण दुष्परिणाम, वंश शुद्धि की चिन्ता, स्त्रियों का अधिक चंचल स्वभाव और अन्तर्जातीय विवाह में पत्नी को पति के अनुकूल बनाने के प्रयत्न।

मनु का कथन है कि पुरुष को अपने रूप और बल का अभिमान करना व्यर्थ है। स्त्रियाँ पुरुष मात्र का अभिगमन करती हैं। चंचल और पुंश्चली और स्नेह शून्य होने के कारण पत्नियाँ यत्न-पूर्वक रक्षण करने पर भी पतियों के प्रति सच्ची नहीं रहतीं।[४] अतः पुरुष स्त्रियों को सदा अधीन कर रखा करें। स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं,[५] इस अवस्था का अनुमोदन गौतम,[६] बोधायन,[७] वशिष्ठ,[८] विष्णु, और याज्ञवल्क्य[९] ने भी किया है। इतना ही नहीं, पुरुष माता, बहिन और कन्या के साथ भी एकान्त में न बैठें, क्योंकि विद्वान् भी वासना-ग्रस्त हो जाता है।[१०] ऐसा प्रतीत होता है कि मनु आदि ने स्त्री की यह निन्दा मनुष्यों को उद्दाम वासना से सावधान करने के लिए ही की है।

स्त्री की अवध्यता :

मनु ने स्त्री-घाती से, उसके प्रायश्चित कर लेने पर भी, सब प्रकार के सम्बन्ध रखने का निषेध किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी यही विधान है।[११] स्त्री के अवध्य होने के कारण

---

१. मनु ९।८३

२. कुमार सम्भव २।१०, मनु ९।२३

३. हिन्दू परिवार मीमांसा पृष्ठ १६४ से १७१

४. मनु, ९।२-३ पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने······
न स्त्री स्वातंत्र्य हेति ॥

५. नैता रूपं परीक्षन्ते नासं वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूप वा पुमानित्येव व भुंजते ॥
पौंश्चल्या चवल चित्ताच्च न स्नेहाच्च स्वभाव ।
राक्षता यत्नतो पीह भर्तृषु विकुर्वते ॥
पौंश्चल्याच्चल चित्ताच्च नैस्नैह्याच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ मनु ९।१४।-१५

६. मनु० १८।१

७. मनु० २।३।४४

८. मनु।१०५।१२

९. मनु :१।८५:

१०. मनु २।११५

११. मनु० ११।२६१ मिताक्षरा

उसके जघन्यतम अपराध सतीत्व-खण्डन में भी पति उसके भरण-पोषण के लिए बाध्य था। रजोदर्शन से ही स्त्री की शुद्धि का सिद्धान्त सर्वमान्य था।[१] कहीं-कहीं कुलटाओं को प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी गई है,[२] क्योंकि "विवाद-रत्नाकर"[३] में स्मृति-वचनों में संगति बैठाते हुए स्त्रियों के वध, विरूपीकरण और बन्दीकरण को निषिद्ध माना गया है।

पत्नी का ताडन :

कौटिल्य ने पत्नी को अनुशासन में रखने के लिए दुर्वचन न कह कर बाँस की पतली खपची, रस्सी या हाथ से पीठ पर तीन प्रहार करने का आदेश दिया है। इस नियम से अधिक ताड़न करने पर पति को राजकीय दण्ड मिलेगा। मनु और यम ने प्रहार का स्थल पीठ ही नियत कर दी है। इसका अतिक्रमण करने वालों को चोरी का दण्ड निश्चित किया। शंख स्मृति के अनुसार स्त्री लालन और ताड़न से घर की शोभा बढ़ाती है। भक्ति काल में तुलसीदास जी ने इसी आधार पर "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" कह दिया है।

पत्नी का रक्षण

वृहत्पाराशर स्मृति के अनुसार स्त्री में काम वासना पुरुष से आठ गुनी अधिक होती है।[४] स्त्रियों का असती होना प्रकृति है, अतः पुरुष उसकी रक्षा करे।[५] दूषित सन्तानोत्पत्ति न हो, एतदर्थ पुरुष पत्नी की रक्षा करे।[६] पत्नी की रक्षा से पुरुष अपने पुत्र, कुल, चरित्र, आत्मा और धर्म की रक्षा करता है।[७] हारीत के अनुसार पत्नी की अरक्षा से धर्मनाश, धर्म-नाश से आत्मनाश और आत्मनाश से सर्वनाश होता है।[८] पैठीनसि भी वर्णसंकर के भय से स्त्री-रक्षा चाहता है।[९] वृहस्पति के मत में चौबीसों घंटे बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों द्वारा स्त्री की रक्षा की जाय।[१०] बन्द रखने में स्त्री-चरित्र की रक्षा नहीं हो सकती। मनु,[११] वृहस्पति,[१२] हारीत,[१३]

---

१. वशिष्ठ २८।१-४, ५।४, ३।५-८ मनु ५।१०८ याज्ञ १।७२ विष्णु २।६१ पराशर ७।२, १०।१२ महाभारत १३।५६।२१-२२ बोधायन सूत्र २।२।४।४
२. गौतम २३।४, मनु ८-३७१ यम : वि० पृ० ३९८ : महाभारत १२।१६५।६४
३. कौटिल्य ३।२६-११, मनु ८।२९९-३००, यम [वि० २०२] शंख स्मृति ४।१६
४. पृ० १२१
५. वीर० ४१०-११
६. मनु ९।९
७. वही ९।७
८. वीर ४१०
९. वीर ४११
१०. वीर ४११ व्यक १२९
११. मनु ९।१०-१२
१२. वृहस्पति : व्यक १३० :
१३. वीर ४११-८

शुक्र,[१] ने अतिशय कार्य व्यापृत रख कर स्त्री-रक्षण का सुझाव दिया है। नारी की परतंत्रता का विधान उसे पुरुष की दासता में रखने के लिए नहीं, वरन् उसी के हित की दृष्टि से किया गया था। विश्व के सभी समुन्नत और सुसंस्कृत देशों में ऐसे ही नियम बनाये गये थे।

स्त्री-जित की निन्दा :

पत्नी-शासित, भार्यावश्य अथवा स्त्री-जित पुरुषों की बड़ी निन्दा की गई है। मनु,[२] याज्ञवल्क्य[३] और वशिष्ठ[४] ऐसे व्यक्ति के अन्न को अभक्ष्य मानते हैं। देवता भी ऐसे घर में हवि ग्रहण नहीं करते।

भार्योपजीवी की निन्दा :

चारण, कुशीलव और शैलूष आदि नर अपनी स्त्रियों की कमाई पर निर्भर रहते थे। शास्त्रों में से ऐसे पुरुषों की तीव्र निन्दा की गई है। अपनी पत्नी के रूप में जीविका का साधन बनाने के वाले हत्यारे के तुल्य पापी और नरकगामी होते हैं।[५] चारण और कुशीलव साथी बनाये योग्य नहीं हैं।[६] उसका अन्न अभक्ष्य है, वे न्यायालय में साक्षी नहीं दे सकते।[७] अपनी पत्नी के प्रेमी से भेंट लेने वाले को कठोर दण्ड दिया जाय।[८]

स्त्रियों का उपनयन निषेध :

पूर्वकाल में कुमारियों का उपनयन वेदाध्ययन और गायत्री उपदेश होता था, किन्तु उनके गुरु पिता, चाचा अथवा अग्रज ही होते थे।[९] वीर मित्रोदय कृत 'संस्कार प्रकाश' में स्त्रियों के ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा नाम के दो भेद हैं। इनमें 'ब्रह्मवादिनी-नामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्य चर्या' का अधिकार था, सामान्य स्त्रियों के लिए यह विहित कर्त्तव्य नहीं था, परन्तु बाद में सभी स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन निषिद्ध कर दिया गया है।

---

१. शुक्र ४।४८-३१
२. मनु० ४।२१७
३. याज्ञ० १।१६३
४. वसि० १४।११
५. विष्णु ३७।२५, ४३।२६, ४४।५
६. मनु० ८।६५ याज्ञ० २।७०-७१ ना स्म च ४।१८१ पृ०
७. मनु० ४।२१४; याज्ञ० १।६१ पृ० विष्णु ५१।१२-१३, व्यास ३।५१
८. याज्ञ० २।३०१
९. पुरा कल्पे कुमारीणां मौंजी बन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता व नैनामध्यापयेत नरः

—मनु० स्मृति

स्त्रियों के लिए यज्ञ निषेध :

मनु ने कहा कि ब्राह्मण को अश्रोत्रिय, ग्राम्य पुरोहित और स्त्री द्वारा किये यज्ञ में भोजन नहीं करना चाहिए।[१] इससे स्त्री को यज्ञ की अनाधिकारिणी तो नहीं बताया गया, फिर भी उसकी ओर से यज्ञ अच्छा नहीं माना गया है। अधिक संभव यही है कि स्त्री द्वारा पति से पृथक् यज्ञ करना ही इसमें विगर्हणीय समझा गया है। फिर भी धीरे-धीरे स्त्री में यज्ञाधिकार निहित होते गये।

कन्याओं का अक्षत-योनित्व :

गौतम,[२] वशिष्ठ,[३] याज्ञवल्क्य[४] ने अनन्यपूर्वा, अस्पृष्ट मैथुना अथवा अनन्यपूर्विका कन्या को ही पाणिग्रहण के योग्य माना है। मनु[५] के मत से अक्षत-योनि कन्या का ही विवाह संस्कार हो सकता है। अतः उनका कौमार्य नष्ट करने वालों के लिए कठोर दण्ड था, और झूठा प्रवाद उड़ाने वालों के लिए वे सौ पण के दण्ड का विधान करते है। विष्णु ने भी इन बातों के लिए कठोरतम दण्ड का विधान किया है।[६] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में तो कन्या के कौमार्य-हर्ता का सर्वस्व छीन कर देश-निर्वासित कर देने का विधान है। नारद[८] के अनुसार कलियुग का एक लक्षण यह भी है कि कन्याएँ ही माता बनने लगेंगी।

कन्या :

मनु ने कन्या को पुत्रवत् माना है[९] और उसके विद्यमान होने पर कोई अन्य व्यक्ति अपुत्र-पिता का धन नहीं ले सकता।[१०] नारद[११] और बृहस्पति[१२] पुत्र के अभाव में कन्या को उत्तराधिकारी मानते है।

कन्या दर्शन का मंगलत्व :

शौनक कारिका ने आठ वस्तुएँ मंगलकारी मानी है, जिनमें कन्या भी एक है।[१३]

---

१. मनु ४।२०५
२. गौतम ४।१
३. वसिष्ठ ८।१
४. याज्ञ १।५२
५. मनु ६।१७६
६. विष्णु ५-४७
७. आप० २।१०।२६।२१
८. नारद १।३१
९. मनु १३।४५।११
१०. मनु ६।१३०
११. नारद, दायभाग ५०
१२. बृहस्पति, अपरार्क पृष्ठ ७४३
१३. कार्णे की हिन्दू धर्म शास्त्र पृष्ठ ५.११
'दर्पण : पूर्णकलशः कन्या सुमनसो ऽक्षताः।
दीपमाला ध्वजा लाजाः सप्रोक्तारचाष्ट मंगलम् ॥'

नारी सम्मान :

नारी जाति के विषय में स्मृतिकारों के विचार अत्यन्त उदार हैं। उनकी दृष्टि में नारी साक्षात् देवी और लक्ष्मी की अवतार है। नारी भगवती दुर्गा की प्रतिमूर्ति है। आधुनिक उच्चाशयों का विचार है कि जाति में नारी का सम्मान जितना अधिक होता है, वह जाति उतनी ही उन्नत है। इस दृष्टि से संसार की सर्वाधिक सभ्य जाति हिन्दू सिद्ध होती है।

मनुस्मृति : के अनुसार स्वकल्याणकामी पिता, भ्राता, पति तथा देवर के लिए उचित है कि स्त्रियों का आदर करें और उन्हें वस्त्रभूषण से अलंकृत रक्खें। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ सभी देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। जहाँ उनका आदर नहीं होता वहाँ सम्पूर्ण क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जहाँ बहिन, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू और माता आदि स्त्रियाँ दुःखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट होता है। जहाँ ये दुःखी नहीं रहतीं, उस कुल की सदा सुख-समृद्धि बढ़ती है। जिन्हें स्त्रियाँ शाप दे देती हैं वे सदा कृत्यापीड़ित की भाँति सदा नाश को प्राप्त होते हैं। प्रत्येक शुभ कर्म में तथा उत्सवों आदि में इनका भली-भाँति सम्मान करना चाहिये। जिस परिवार में पत्नी से पति सन्तुष्ट है और पति से पत्नी सन्तुष्ट है, वहाँ सदा कल्याण होता है, यह निश्चित है।[१]

कन्या स्नेह की पात्री है। उससे यदि कभी कुछ अनुचित भी हो जाये, तो पिता उसे सह ले, उस पर क्रोध न करे।[२] मनु ने कन्या विक्रय को हेय कहा है। शूद्र भी शुल्क के रूप में कुछ लेकर या रुपये पैसे लेकर अपनी कन्या का दान न करे, क्योंकि यदि कन्या का पिता दान लेता है तो वह अपनी कन्या को बेचता है।[३] यद्यपि स्मृतिकारों ने कन्या के विवाह का दायित्व उसके अभिभावकों पर रखा है तथापि यदि मासिक होने के तीन वर्ष बाद तक उसके विवाह की व्यवस्था नहीं की जाय तो उसे अपना पति चुनने का अधिकार है। ऐसी दशा में उसे और उसके पति को कोई दोष नहीं लगता।[४] वैसे कन्या के विवाह को न्यूनतम आयु निर्धारित कर दी गई है, तथापि यदि उस समय से साल-छः महीने पूर्व भी यदि कोई उत्तम वर मिल रहा हो तो कन्या का विवाह कर देना चाहिये।[५] किन्तु अच्छा वर न मिले तो चाहे कन्या को उम्र भर कुमारी ही पिता के घर पर रहना पड़े, तो भी अपात्र के साथ उसका विवाह न करे।[६]

स्त्रियों को धर्मतः सबसे पीछे भोजन करना चाहिये। नवागत वधू को सबसे पहले भोजन कराने का विधान है।[७]

---

१. मनु ३।५५-६०
२. मनु :४।१८५:
३. मनु :३।९८-१०२:
४. मनु ९।९०-९१
५. मनु :९।८८:
६. मनु :९।८९:
७. मनु ३।११४

माता :

मनुस्मृति[१] और वसिष्ठ[२] स्मृति में माता को गौरव बहुत अधिक दिया गया है। दस उपाध्यायों से आचार्य, सौ आचार्यो से पिता और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक है।[३] याज्ञवल्क्य ने कहा है कि माता देवताओं से भी अधिक पूज्य है। जो नारी सन्तानहीन हो, जिनके कुल में कोई न हो, जो पतिव्रता, विधवा या रोगिणी हो, उसकी रक्षा सब लोग करें।[४] नारी और ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए धर्मयुद्ध में किसी को मारना पड़े तो भी दोष नहीं होता।[५] जो बन्धु बान्धव स्त्री के जीवित काल में ही उसका धन हरण कर लें उन्हें धार्मिक राजा, चोर के जैसा दण्ड दे। और जो बन्धु-बान्धव स्त्री की धन-सम्पति, पशु-संपति, और वस्त्राभूषण आदि अपहरण करके स्वयं भोगते है, वे नरकगामी होते हैं।[६]

माता का सम्मान :

कहीं-कहीं गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, क्योंकि वह आध्यात्मिक जन्म देता है।[७] कहीं-कहीं पिता को सर्वोच्च कहा गया है।[८]

फिर भी माता को ही सर्वोच्च सम्मान हमारी स्मृतियों ने एक स्वर से दिया है।[९] और माता की ही गरिमा सभी शास्त्रकारों ने सर्वाधिक प्रतिपादित की है। माता निर्मात्री है,[१०] माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है,[११] माता-पिता की सेवा परम तप है।[१२]

पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि, कहे गये हैं। माता की भक्ति से भूलोक, पिता की भक्ति से अन्तरिक्ष लोक-तथा गुरु शुश्रूषा से ब्रह्मलोक

---

१. मनु २।१४५

२. वसिष्ठ १३

३. तेभ्यो माता गरीयसी

४. :८।२८:

५. :८।३४९:

६. :३।५२:

७. मनु २।१४५, याज्ञ १।३५, गो. ध. सू. २।५६, महा १२।१०८।१८-२०

८. महा १२।२६७।२

पिता परं दैवतं पितह मानवाना मातु विशिष्टं पितरं वदन्ति ;
ज्ञानस्या लाभं परम वदन्ति जितेन्द्रियार्थाः परमाप्नुवन्ति ॥
मिताक्षरे पराशर—पिता मूर्तिः प्रजापते :
तथा मनु २।२२५—

९. पुन देखिये, ८५

१०. वाचस्पत्य शब्द कल्पद्रुम—/मा—
निर्माणवाची धातु से माता शब्द बना है।

११. अत्रि १५१ नास्ति मातु' समो गुरु.

१२. मनु २।२२९

प्राप्त होता है।[१]

माता-पिता में विवाद हो तो पुत्र उसमें न पड़े। यदि बोले भी तो माता की ओर से, क्योंकि उसने गर्भ में रखा और पालन-पोषण किया है।[२]

मनु ने सन्तान-पालन स्त्री का कार्य माना है, क्योंकि प्रकृति ने स्वाभाविक रूप से यह कार्य उसे सौंपा है।[३] अतः यदि पिता अनाचारी और दुर्व्यवहारी हो, तो बच्चे माता के संरक्षण में रहेंगे।[४]

फिर भी गोद देने के अधिकार में पिता ही पुत्र पर पूर्ण प्रभुत्वशाली माना गया है।[५]

इन सब तथ्यों को देखते हुए विश्व के विचारकों को ऐसे ही कथन मिलते हैं कि—"मैं विश्वास करता हूँ कि भूमण्डल में ऐसा कोई भाग नहीं है, जहाँ माता-पिता की इतनी प्रतिष्ठा की जाती है।"[६]

व्यास स्मृति :

व्यास स्मृति में नारी के कर्त्तव्यों का विशद विवेचन करते हुए उसे पति-सेवा-परायण रहने का आदेश दिया गया है। वह प्रत्येक कार्य में पति की परामर्श दात्री मानी गई है। स्त्री की अनुकूलता ही स्वर्ग है, उसकी प्रतिकूलता नरक से भी भयावह है। स्त्री के समान कोई औषध नहीं। समस्त दुखों को वह दूर कर देती है। घर को घर नहीं कहते, स्त्री ही घर है।[७] भार्या से रहित घर जंगल से भी बुरा है।[८] भार्या देवता प्रदत्त सखा है। यदि पत्नी कभी अप्रिय वचन भी कह दे, तो स्वयं कभी अप्रिय वचन उससे न कहे। क्योंकि रति-प्रीति-धर्म सब स्त्री के ही अधीन हैं। पुरुष भरण करने से भर्ता और पालन करने से पति कहलाता है, यदि वह भरण-पोषण न करे तो वह न भर्ता है और न पति।

नारी जाति में पवित्रता का निवास है, वह कभी भी पूर्णतः अपवित्र नहीं होती। नारी का सारा शरीर ही पवित्र है। जो नारी-जाति से घृणा करते हैं, वे मानों अपनी माता का ही

---

१. मनु २।२२६-२२८

२. शांखा० :संस्कार प्रकाश पृष्ठ ४७६ पर उद्धृत:
   न माता पित्रोरन्तरं गच्छेत् पुत्रः।
   मातुरेवानुयात्। सा हि धारिणी पोषिणीच।

३. मनु ६।२७

४. हिन्दू ला आव् मेरिज एंड स्त्रीधन पृष्ठ १७६

५. वसिष्ठ १५।१०२
   तथा चित को बनाम जानकी
   ११ ब. हा. रि १६६

६. 'Rambles and Reflections of an Indian Official'—by Sliman—as quoted in हिन्दू परिवार मीमांसा पृष्ठ २३१

७. न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते। —व्यास

८. न गृहेण गृहस्थ स्यात् भार्यया कथ्यते गृही।
   यत्र भार्या गृहं तत्र भार्या-हीन गृहंवनम्॥ —व्यास

अपमान करते हैं। नारी गृहलक्ष्मी है, उसके सान्निध्य में गृहदेवता प्रसन्न होते हैं।

पुरुष ही शौर्य है नारी ही सौन्दर्य है। पुरुष की विशेषता उसकी विचार शक्ति है, जिसके द्वारा वह समस्त कर्मों का सम्पादन करता है। नारी की विशेषता उसकी प्रज्ञा है, जिसके द्वारा वह पुरुष की विचार-धारा को नियमित करती है और सभी विषयों में सामंजस्य स्थापित करती है। नारी के कंठ से निकला हुआ धर्म-संगीत ईश्वर के कानों को अतिशय सुख देता है। ईश्वर की प्रीति के लिए पुरुष को नारी के साथ-साथ प्रार्थना करनी चाहिए।

जिस पर नारी की कोप-दृष्टि है उस पर भगवान का भी अभिशाप लगा हुआ है। जो दुष्ट नारी के आँसू बहाता है, वह देव-कोपानल में भस्म हो जाता है। दु:खिनी नारी का उपहास करने वाला अकल्याण का भागी होता है। ईश्वर भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनते। नारी को असहाय समझकर सताने और पितृ अपहरण करने से बढ़कर नीच पाप और कोई नहीं है।

स्मृतियों में स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों की विवेचना भी अत्यंत सदाशयता और उदारता के साथ की गयी है। घर की स्वामिनी स्त्री को माना गया है। पति का समस्त धन पत्नी का होता है और कुछ धन केवल स्त्री का होता है, जिस पर पति या अन्य किसी भी सम्बन्धी का अधिकार नहीं माना जाता। याज्ञवल्क्य स्मृति, दाय भाग, मिताक्षरा, शुक्रस्मृति, व्यवहार मयूख, नारद स्मृति, देवल स्मृति, विष्णु स्मृति, बृहस्पति, स्मृति, पाराशर स्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कात्यायन सरोद्धार, वीर मित्रोदय, सरकार-प्रकाश आदि में नारी के साम्पत्तिक अधिकारों की इतनी विशद व्याख्या हुई है कि वर्तमान कानून भी उन्हीं के आधार पर बने हैं।

स्मृतियों में नारी निन्दा दो दृष्टियों से हुई है। १. अधम नारियों के कार्यों की, २. संन्यासियों के लिए नारी-संसर्ग को नरक द्वार बतलाते हुए। वस्तुतः यह नारी निन्दा नहीं है। नारी तो पुरुष जननी होने के कारण सदा ही परम वन्दनीय है। भक्ति काल वैराग्य प्रधान होने के कारण इसी निवृत्ति-मार्गीय नारी-निन्दा का प्रसार करने लगा था, क्योंकि उस समय के प्रायः सभी कवि सन्त और भक्त ही थे। फिर भी कृष्ण-भक्ति और राम भक्ति में नारी के अन्य पक्षों का भी निदर्शन हुआ है।

दक्ष स्मृति कहती है कि परिणय सूत्र में बँध जाने पर भी यदि नर नारी में भेद रहा तो नरक का दुख यहीं मिलने लगता है।[९] मनु के अनुसार स्त्री 'पूजनीया प्रयत्नतः' है। स्मृतियों ने, पति की ऋत्विजों के समक्ष की गई यह प्रतिज्ञा[१०] भी कि धर्म-अर्थ-संबंधी कोई काम मैं पत्नी के बिना नहीं करूँगा, वैसी ही समादिष्ट रखी। 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' को लेकर जो लोग भेरी-नाद कर रहे हैं, वे स्मृति वचनों की अपव्याख्या करते हैं। वस्तुतः यह स्त्री समाज का अपमानसूचक कथन नहीं है, वरन् उसके मान-सम्मान, रक्षा और प्रतिष्ठा की स्थापना का आदेश है।

---

९. प्रतिकूल कलत्रस्य नरको नात्र संशय।
१०. धर्मे अर्थे च नातिचरामि।

स्मृति काल में परिवार और स्त्री की स्थिति :

शिल्प और व्यवसाय की उन्नति के कारण परिवार के विभिन्न व्यक्तियों की आयों में विषमता आई, जिससे परिवार विघटित होने लगे। कुछ स्मृतियों ने संयुक्त परिवार का समर्थन भी किया, किन्तु अधिकांश ने विघटन स्वीकार कर लिया और पितृ-सत्ता समाप्त होती चली गयी। विभाजन में अवश्य ही स्त्रियों का प्रमुख हाथ रहा होगा।

पति-पत्नी संबंध :

इस काल में बाल-विवाह भी होने लगे। गौतम के 'प्रदान प्राग्रतो:'[१] के अनुसार रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह आवश्यक माना गया। फलस्वरूप स्त्री को शिक्षा देने का दायित्व भी पति पर पड़ा। वह (स्त्री) पत्नी का गुरू माना जाने लगा। गुरु बनने का कुछ कालोपरान्त ही पति देवता बन गया। शंख[२] ने कहा कि पति के कोढ़ी, पतित, अंगहीन या रुग्ण होने पर भी पत्नी उससे द्वेष न करे, क्योंकि पति ही देवता है। इसका अनुमोदन मनु ने किया।[३] याज्ञवल्क्य और विष्णु ने भी पति-सेवा से ही मोक्ष का प्रतिपादन किया। स्त्री की इस वश्यता के कारण थे: पुरुष की शक्तिमत्ता, स्त्री का समर्पण भाव, मातृत्व का दायित्व, स्त्री की आर्थिक पराधीनता, पिता की प्रभुता, बाल-विवाह, स्त्रियों की अशिक्षा और स्त्री-संबंधी हीन विचार।

पत्नी के अधिकार :—

पत्नी को पातिव्रत्य में बांधकर हिन्दू शास्त्रकारों ने जो कठोरता दिखाई है उसका पूर्ण परिमार्जन उन्होंने उसे व्यापक अधिकार देकर कर दिया है। व्यभिचारिणी होने तक की दशा में उसे पति से भरण-पोषण पाने का अधिकार है और स्त्री-धन पर एकमात्र उसी का स्वामित्व है।

भरण-पोषण पाने का अधिकार :

पत्नी के व्यभिचारिणी होने का दोष पति पर ही है। यदि पति स्वदार-निरत रहे और उसकी देखभाल रखे तो वह पुंश्चली क्यों हो![४] अत्रि[५] बलात्कार या चोरी से दूषित हुई स्त्री का कोई दोष नहीं मानते। ऋतु से उसकी शुद्धि मान ली गई है।[६] अथवा गर्भ रह जाने पर सन्तानोत्पत्ति के बाद वह शुद्ध हो जाती है।[७] अतः पत्नी के व्यभिचार पर उसके लिये हलके दण्ड की ही व्यवस्था की गई है।[८] जैसे पहरे में रखना,

१. गौतम १८।२२

२. न भर्तारं द्विष्याद्यप्यकीवलः स्यात्पतितो गहोनो व्याधितोवा पतिर्हि देवता स्त्रीणम्। शंख २५१

३. ६।१५४-१५५

४. याज्ञ १।७८-८१, मनु ४।१३३-३४, मनु ८।३१७, वसिष्ठ १६।४४

५. अत्रि ३।१६३

६. अत्रि ३।१६४, वसिष्ठ २८।२-३, याज्ञ १।७१, मनु ५।१०८, बृ. ४।३६

७. देवल ५०-५१ अत्रि १६५-१६६

८. मनु ६।१७७-७८, नारद ५।६०, व्यास २।४६-५०, गौतम २२।३५, याज्ञ १।७०

मैले वस्त्र देना, केवल भरण-पोषण करना, निरादर करते हुए भूमि पर सुलाना तथा चान्द्रायण व्रत, सिर मुडाना, झाड़ू लगवाना आदि। परन्तु ऐसी कठोर आज्ञाएँ कभी पालन नहीं की गयी। अन्य शास्त्र वचनों से उन्हें निरस्त कर दिया गया। व्यभिचार केवल उपपातक माना गया जिसकी प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि हो सकती है।[१] वसिष्ठ के गर्भे त्यागो,[२] की व्याख्या 'त्याग' का अर्थ धार्मिक कामों और दाम्पत्याधिकारों से वंचित करना' बताया गया है। वसिष्ठ के मत मे त्याज्य केवल चार प्रकार की व्यभिचारिणियाँ हो है। गुरुगामिनी, शिष्यगामिनी, शूद्र गामिनी, पति-हत्याप्रयासिनी।[३] शूद्र गामिनी के लिए मनु आदि ने कुत्तों को खिला देने की भयानक व्यवस्था की है।[४]

दूसरी ओर व्यभिचारी पति के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी है—अंग-भंग, दागना, वध, निर्वासन, जुर्माना करना आदि।[५] तथा व्यभिचारी को चोर,[६] महापातकी,[७] और ऐसा आततायी[८] समझा गया है जिसके वध में भी कोई दोष नहीं है। शक्ति काल मे तुलसीदास ने भी यही लिखा है। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू समाज मे आज भी असंख्य व्यक्ति पत्नी-परायण मिलते है। एक नारी व्रत वाले पुरुषों का अभाव नहीं मिलेगा।

साम्पत्तिक अधिकार :

पति के जीवित रहते उसकी सारी सम्पत्ति पत्नी के अधिकार में रहती है। स्त्री-धन पर तो केवल पत्नी का ही अधिकार रहता है; पति केवल दुर्भिक्ष के समय, धर्म कार्य में अथवा रोगी और बन्दी होने की दशा में उसका उपभोग कर सकता है।

पुराणों में नारी

नर नारी प्रोद्धरति मज्जन्तं भव-वारिधो

स्कन्द पुराण, कुमारिका खण्ड :

कन्या :—पुराण काल मे कन्या-प्राप्ति की अभिलाषा की जाती थी। वैवस्वत मनु की पत्नी ने पुत्रेष्टि के अवसर पर होता से कन्या के लिये याचना की थी।[९] वामन पुराण के अनुसार कन्या का दर्शन मंगलमय है।[१०]

---

१. देखिये—हिन्दू परिवार मीमांसा
२. वसिष्ठ २१।१२
३. वसिष्ठ २१।१०
४. मनु ८।३७१, गौतम २३।२४ महा० १२।१६५।६४
५. मनु ८।३५२-३६४, याज्ञ० २।२६०, वसिष्ठ २१।१-४, नारद १६।८
६. याज्ञ २।३०१
७. नारद १६।२,६
८. विष्णु ५।१८६
९. तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ :श्रीमद्भागवत ९।१।१४:
१०. वामन पुराण :१४।३५।३६:

पतिव्रता :—स्कन्द पुराण में पतिव्रता के धर्मों का विस्तार से उल्लेख करते हुए पति का नाम लेना निषिद्ध माना गया है। इससे पति की आयु की वृद्धि होती है।[१] पति यदि पत्नी को डाँटे-फटकारे तब भी उसको जोर से नहीं बोलना चाहिये, बल्कि पिटने पर भी उसको हंसमुख ही रहना चाहिये।[२] पद्मपुराण के अनुसार वही भार्या पतिव्रता है जो :—

कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी समा।
विपत्सु मंत्रिणी भर्तुः सा भार्या पतिव्रता ॥[3]

पति सेवा और आज्ञा पालन :

पुराण में पति सेवा और आज्ञा पालन के अनेकों उल्लेखनीय और सुन्दर वृत्तान्त हैं। ब्रह्म वैवर्त पुराण में कहा गया है कि पति सेवा ही स्त्री का व्रत, परंतप, परम धर्म और देव-पूजा है।[४] अतः व्रत, तपस्या, देवार्चा सबको त्याग कर केवल पति-चरण-सेवा, पति-स्तवन और पति-परितोषण ही करे।[५] भागवत पुराण में भी पति सेवा को ही स्त्री का परम धर्म बताया गया है।[६]

मार्कंडेय पुराण के अनुसार कोढ़ी और लँगड़े कौशिक ब्राह्मण की पत्नी (शांडिली या दीर्घिका) उसे उसकी इच्छानुसार वेश्या के घर ले गई थी और उसने पतिव्रत्य के प्रभाव से अगले दिन सूर्योदय को रोक दिया था।[७]

सावित्री ने सत्यवान की आयु का एक वर्ष ही बचा रहने का तथ्य जानकर भी एक बार हृदय में वरण करके उसी से विवाह किया। पति के जीवन के सिवा उसकी कुछ भी कामना नहीं थी।[८] गान्धारी ने धृतराष्ट्र को प्रज्ञाचक्षु जान कर आंखों पर पट्टी बाँधली।[९] हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या ने पति द्वारा बेची जाने में भी संकोच नहीं किया।[१०] पतिव्रता शची अपने पति इन्द्र के लम्पट होने पर भी साध्वी बनी रही। वह नहुष की लालसा के फेर में नहीं पड़ी।[११] दक्षपुत्री सती का पातिव्रत्य जन्मान्तरों में भी रहा। वही अगले जन्म में पाति-

---

१. स्कन्द पुराण ब्रह्म खण्ड धर्मारण्य अध्याय ७ का श्लोक १८
२. " " " श्लोक १६
३. पद्मपुराण सृष्टि खण्ड ४७।५६
४. पति सेवा व्रत स्त्रीणां पति सेवा परं तपः।
पति सेवा परो धर्मः पति सेवा सुरार्चनम ॥
ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण खण्ड उ० ५७।१८
५. व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः।
कुर्याच्चरण सेवां च स्तवनं च परितोषणम् ॥ वही ८३।११२
६. भर्तुः शुश्रुषणं स्त्रीणां परोधर्मः भा. प. १२।२६।२४:
७. मार्कंडेय पुराण १६ अध्याय २७ श्लोक स्कन्द पुराण में भी ६।१३५
८. वही, ३।२६६।१६
९. वही, १।११०।११४
१०. ब्रह्म १०४
११. मार्क अ ७, म महा ५।१०, अनु १२।३४२।२८-५३

व्रत की मूर्ति पार्वती बनी ।[१]

वात्स्यायन के कामसूत्र में भी यही निष्कर्ष निकाला गया है कि स्त्री पति को यह विश्वास दिलाए कि वह उसी की है, वह पति को देवता समझे और पति की इच्छा के अनुकूल ही आचरण करे ।[२] क्योंकि जो सदाचार की उपासना करती हैं, वे नारियाँ धर्म, अर्थ, काम के साथ पति के हृदय में अनन्य स्थान प्राप्त करती है । इसी से कामसूत्र में पति को देवता की तरह समझने का अनुमोदन किया गया है ।[३]

नारी दूषित नहीं होती :

अग्नि पुराण के अनुसार ऋतु के पश्चात् नारी निर्मल हो जाती है ।[४]

पतिद्वारा दण्ड :—राजा भगीरथ अपनी पत्नी के साथ जलकेलि कर रहे थे । रेणुका ने उसे देखने में देर कर दी, अतः क्रुद्ध जमदग्नि ने परशुराम के द्वारा उसका वध करवा दिया ।[५]

सतीत्व महिमा :

पुराणों में सतीत्व महिमा का बड़ा गुण-गान है । पृथिवी के जो तीर्थ हैं वे सती के चरणों में भी है और देवों तथा दुनियाँ का तेज भी सतियों में है ।[६] पतिव्रता पति के जीवन को यमदूतों से वैसे ही निकाल लेती है जैसे सँपेरा बिल से साँप को ।[७]

स्कन्द पुराण के अनुसार[८] पति देवताओं और पितरों को जो सेवा, दान, धर्म आदि करता है, उसका आधा फल स्त्री को पति-सेवा से ही मिल जाता है ।

निर्णयामृत[९] का आदेश है कि पति पत्नी का और पत्नी पति का व्रत करें । भविष्य पुराण के अनुसार जब तक पुरुष भार्या को नहीं प्राप्त करता, अर्ध-पुरुष ही रहता है ।[१०] जैसे एक पहिये का रथ, एक पंख का पक्षी, वैसे ही भार्या-हीन नर भी सब कर्मों में अयोग्य होता है ।[११] सृष्टि के आदि में रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे शरीर से स्त्री हुए, तब ब्रह्मा ने

---

१. देवी भागवत ७।१८
२. धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च ।
निःसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः ॥
३. देववत् पतिमानुकूल्येन वर्तेत । —कामसूत्र
४. अग्नि पुराण १६५।६,१६
५. भागवत पुराण ६।१६। तथा महाभारत ३।११६
६. ब्रह्म वैवर्त पुराण ३५।१,१६,१२७
७. स्कन्द पुराण ७।५४-५५
८. यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद् भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च ।
तस्यार्द्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृ-शुश्रूषयैव ॥ स्कन्द ॥
९. 'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पति व्रतम् ।'
१०. पुमानर्द्धं पुमां स्तावद् यावद् भार्यां न विन्दति—भविष्य पुराण, सातवाँ अध्याय
११. एक चक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः ।
अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ॥

इनके दो विभाग करके सृष्टि बना दी। इस प्रकार नर-नारी का मूलाधार है।[1]

पुराणों के अनुसार तो विष्णु ने भी मोहिनी अवतार धारण किया था अतः नारी-निन्दा पुराण मत में कैसे विगर्हित न होगी वे जगज्जननी की गदगद होकर स्तुति करते हैं।[2]

बौद्ध काल में नारी

सतीत्व महिमा :—

बौद्धकाल में सतीत्व के आदर्श को समाज में प्रतिष्ठा थी तथा स्त्री का पुंश्चली होना बुरा समझा गया था। स्त्रियाँ पतिव्रता होती थीं। जातक कथाओं में अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि उस समय यौन अराजकता नहीं थी। उदाहरणार्थ, श्रावस्ती के भूमिपति पर डाकुओं ने आक्रमण किया। डाकू सरदार उसकी पत्नी पर मोहित हो गया, परन्तु स्त्री ने कहा कि यदि तुम मेरे पति को मारोगे तो मैं विष खा लूँगी। किसी भी दशा में मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी।[1] साध्वी स्त्री कभी भी अपने पति को छोड़ कर अन्य का ध्यान या आधिपत्य स्वीकार नहीं करती थी। जातक कथा में एक यक्ष जब एक साध्वी से यह कहता है कि या तो मेरी इच्छा पूरी कर या मृत्यु स्वीकार कर, तो वह साध्वी पत्नी मृत्यु स्वीकार करती है।[2] धन का लालच देने वालों से, कामियों से वधू कहती है कि यह तो मेरे पति की चरण-धूलि के बराबर भी नहीं है।[3] राजपत्नी 'मृदुलक्षणा' काम मोहित 'परिव्राजक को शौच स्थान साफ करवा कर तथा फिर लज्जित करके उसका मोहभंग करती हुई अपनी सतीत्व-रक्षा करती है।[4] पति के संकट में केवल पत्नी ही उसके साथ रहती है, सारे साथी उसे छोड़ कर चले जाते हैं। पत्नी उसका साथ देती है, क्योंकि उसे पति के समान पृथ्वी के चारों कोनों पर कोई प्रिय नहीं मिल सकता है।[5]

बौद्धकाल में कुछ स्त्रियाँ दो विवाह[6] भी कर लेती थीं। और व्यभिचार-प्रवृत्त हो जाती थीं। इसी से जातक कथाओं में नारी को हेय भी माना गया है। इसके अनेक उदाहरण हैं, यथा, एक मूर्ख मृग ने हरिणी पर आसक्ति रखने से प्राण गँवाये। इससे बोधिसत्व ने निष्कर्ष निकाला कि उस जनपद को धिक्कार है जिसका संचालन स्त्रियाँ करती हैं।[7] अन-

---

१. अर्धनारी नर वपुः प्रचण्डोऽति शरीर वान्।
   विभज्यात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ॥—विष्णु पुराण प्रथमांशः

२. देव्या यथा ततमिद जगदात्म शक्त्या।—जगज्जननी की स्तुति।

१. जातक २६७ की निदान कथा।

२. जातक ५।६८२, फासबोल जातक।

३. जातक ५४६

४. जातक ५५

५. जातक २६७

६. थेरी गाथा टीका, पृष्ठ २६० इद्धि दासी के दो विवाह हुए थे

७. कण्डिन जातक सं० १३ 'धिरत्थुनं जनपदं यत्थित्थीपरिनायिका ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थीनं वसं गता।'

भिरत जातक में गुरु ने भार्या के दोष से दुखी शिष्य को उपदेश दिया है कि स्त्रियाँ लोक में नदी, मार्ग, बाजार, सभा और मदिरालय की भाँति सबके लिए होती है।[१] ब्रह्मदत्त की पत्नी एक आमात्य से अनुचित सबध रखती थी, तब बोधिसत्व ने राजा को समझाते हुए भी यही बात कही कि स्त्री सर्वगामी होती है, अत. वे क्षम्य है।[२] उच्छग जातक में भी इसी की पुष्टि होती है। एक स्त्री के पति, पुत्र और भाई बन्दी हुए। राजा ने कहा कि इनमें से एक को छोड़ देंगे, तब पत्नी ने कहा कि 'भाई कही प्राप्त नही हो सकता अतः इसे ही छोड़िये।[३]

किन्तु उपर्युक्त विवरण से यह परिणाम निकालना उचित नही है कि उस समय स्त्रियाँ सामान्य उपभोग्या होती थी। अनेक जातकों मे उल्लेख है कि स्त्रियों ने सतीत्व की रक्षा पूर्ण प्रयत्न के साथ की, यथा, जयप्रभा ने अपने सतीत्व-पातिव्रत्य की रक्षा की।[४]

बौद्ध साहित्य मे सास-बहू सम्बन्ध :—बौद्ध साहित्य में बहू द्वारा सास का सम्मान किये जाने के अनेक उदाहरण है। थेरी गाथा में ऋषिदासी नामी थेरी कहती है कि पितृ-कुल में पाई हुई शिक्षा के अनुसार मै प्रात साय सास-ससुर की पद वदना करती थी और चरण-धूलि सिर पर लेती थी।[५] इसी भाँति धनजय सेठ भी अपनी कन्या विशाखा को ससुराल में पालनीय दस उपदेश देता है,[६] और आगे चलकर जब विशाखा और उसके श्वसुर में विवाद हो जाता है, तब पच उसका निर्णय करते हैं और फलस्वरूप श्वसुर विशाखा को निर्दोष मान कर क्षमा-याचना करता है।

सास बहू कलह :—बौद्ध साहित्य में सास-बहू संघर्ष की भी पर्याप्त चर्चा है। कभी सास बहुओ पर मनमाना अत्याचार करती थी, तो कभी बहू सास की खबर लेती थी। सास के अत्याचार कभी-कभी इतने बढ़ जाते थे कि बहू उनसे त्राण पाने के लिए बौद्ध मठो में शरण लेती और भिक्षुणी बन जाती थी। कभी-कभी सासुओं ने बहुओं को मूसलो से इतना पीटा कि वे मर गईं।[७]

इसके विपरीत सास-ससुर पर बहू के अत्याचार के उदाहरण भी मिलते है। अट्ठ-कथा के अनुसार चार बहुएँ जब ससुर से तग आ गई, तो उसे घर से निकाल दिया।[८] इसी प्रकार सोण नामक सास को बहुओ के अत्याचार के कारण भिक्षुणी बनना पड़ा था।[९] एक बहू अपनी सास को मारने का प्रयत्न करती है, पर भाग्य की विपरीतता से उसकी माता और

---

१. अनभिरत जातक संख्या० ६५
२. जातक सख्या १६८
३. उच्छग जातक संख्या ६७
४. अवदान कल्पलता
५. थेरी गाथा सख्या ४०७
६. अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा १।७।२
७. अल्तेकर—Position of Women in Hindu Civilization, h. 107
८. ध० प० ३२४ की अट्ठकथा।
९. थेरी गाथा स० ४५ की अट्ठकथा, धम्मपद सं० ११५ की अट्ठकथा।

उसके स्वयं के प्राण चले जाते हैं।[1]

माता-पिता का महिमा :—बौद्ध काल में भी माता-पिता देवतुल्य सम्मानार्ह थे। फ़ास-बोल जातक के अनुसार माता-पिता ब्रह्मा एवं श्रेष्ठ देवता हैं।[2] बुद्धचर्या में माता-पिता को पूजार्ह कहा गया है।[3]

बौद्ध धर्मसंघों में स्त्रियों का स्थान :—बुद्ध ने पहले तो संघ में स्त्रियों को स्थान नहीं दिया था, किन्तु बाद में सौतेली माता के आग्रह पर सम्मिलित करने लग गये थे, किन्तु उनके लिए आजन्म अविवाहित जीवन व्यतीत करने का नियम बना दिया गया था। बाद में पतन-काल में विहार व्यभिचार और वासना के क्रीड़ा-स्थल बन गये।

भिक्षुणियाँ :—बौद्ध भिक्षुणियों को थेरी कहा जाता था। 'थेरी' का शब्दार्थ है ज्ञान-वृद्धा। इन थेरियों ने जो आत्मकथन किये हैं, वे थेरी-गाथा नाम से उपलब्ध हैं। केवल ७३ थेरी गाथाएँ बची हैं। इन गाथाओं से उनकी सामाजिक स्थिति का परिचय मिलता है। थेरियाँ राज महिषियों से लेकर वेश्याओं और अस्पृश्याओं के समाज के प्रत्येक वर्ग से आती थीं। आयु में भी उनमें बड़ा अन्तर होता था। कुमारिकाएँ, विधवाएँ और वृद्धाएँ सभी थेरी बन जाती थीं।

राजकन्या सुमेधा ने जीवन को क्षणभंगुर समझ कर बाराणसी की अधीश्वरी होने के बदले थेरी जीवन चुना। तीन पतियों द्वारा परित्यक्त हुई श्रेष्ठि-पुत्री इषि दासी अन्त में थेरी बन गई। भिक्षुणी शुभा को जीवक ने प्रतिरुद्ध कर उसके नेत्रों की प्रशंसा करते हुए काम-याचना की, जिस पर उसने अपनी आँखें निकाल कर उसे दे दीं। भद्रकुण्डलकेशा अपने लम्पट चोर, जुआरी पति की हत्या करके थेरी बन गई। पति-परित्यक्ता उत्पलवर्णा दैव की विडम्बना से अपनी ही पुत्री की सपत्नी बन गयी, जिसका पता लगने पर वह घोर ग्लानिवश थेरी बनी। उब्बीरी अपनी पुत्री की मृत्यु के शोक से शान्ति पाने के लिए थेरी बन गयी। वेश्या अम्बापाली अपनी सारी सम्पत्ति संघ को भेंट कर थेरी बनी थी, बुद्ध भगवान ने लिच्छवि राज की जगह इस का आतिथ्य स्वीकार किया था। अर्धकेशी, पद्मावती और गणिका विमला भी वेश्यावृत्ति त्याग कर थेरी बनी थीं। राजघराने में बुद्ध की माता महाप्रजापती गोतमी और बहिन नन्दा, अल्वीनृत-कन्या सेला एवं लिच्छविवंशीय सिंहा और जयन्ती, आदि भी थेरी बनी थीं।

इससे स्पष्ट है कि बुद्ध भगवान् ने न केवल धर्म-प्रवण नारियों को ही, अपितु तिरस्कृताओं को भी संघ में प्रविष्ट करके निर्वाण-मार्ग पर अग्रसर कर दिया। निश्चय ही, इससे उस समय स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ी थी।

---

१. जातक संख्या ३२४।
२. ५।३३१ ब्रह्मा हि माता पितरो।
   ६।३३४ पुब्ब देवता नाम माता पितरो।
३. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७८—सिगालोवाद सुत्त।

संदर्भ ग्रंथ :—(1) Rhys Davids : Budhist India जातक
(2) Charles Eliot—Hinduism and Budhism

संस्कृत साहित्य में नारी

मन्दारमालाकुलितालकाये कपालमालाङ्कित शेखराय ।
दिव्याम्बराये च दिगम्बराय नमः शिवाये च नमः शिवाय ।।

संस्कृत और पाली के साहित्य में समाज का और नारी का विस्तृत और सूक्ष्म चित्रण हुआ है। उसका विवेचन इस प्रबंध की सीमा से बाहर है, अतः यहाँ संक्षेप में उन मुख्य रचनाओं की विचारधारा का उल्लेख मात्र किया जा रहा है, जिनका कुछ-न-कुछ प्रभाव भक्तिकालीन जन-चेतना पर पड़ा।

दिव्यावदान :

दिव्यावदान की कथा 'शार्दूलकर्णावदान' में कुमारी प्रकृति का बुद्ध के परम शिष्य आनन्द को प्रेम-पाश में आबद्ध कर लेने, किन्तु बाद में बुद्ध के उपदेश से बौद्ध भिक्षुणी बन जाने का वर्णन है। 'कुणाल' की कथा में कुणाल की सौतेली माता की उसके प्रति वासनासक्ति, और अशोक के कान भर कर उसकी आँखें निकलवा लेने का करुण चित्रण है। 'रूपवती की कथा' यह है कि एक भूखी मरती हुई स्त्री जब अपने शिशु को खा जाने के लिए प्रस्तुत होती है तब रूपवती अपने स्तन काट कर उसे खाने के लिए दे देती है।

आर्यशूर :

आर्यशूर की जातक माला की प्रथम कहानी एक भूखी बाघिन (नारी) के अपने बच्चे को खा जाने के लिए तत्पर होने पर बोधिसत्व द्वारा अपना शरीर उसे दे देने का वर्णन करती है। एक अन्य कहानी मे एक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चो को भी मूर्खतापूर्ण दानशीलता के कारण, दान मे दे डालता है। कवि बच्चे का मातृ-प्रेम बड़े सुन्दर शब्दो में व्यक्त करता है।[१]

---

(3) 'Theri Gatha'—by Vijaya Chandra Mazumdar.

(4) Women in the Vedic Age-by Dr. Shakuntala Rao Shastri,

१. नैवेदं मे तथा दुःख मदयं यदयं हन्ति मां द्विजाः।
मापश्याम्म्बा यत्वद्य तद्विदारयतीव माम् ।।
रोदिष्यति चिरं नूनमम्बा शून्ये तपोवने।
पुत्र शोकेन कृपणा हतशावेव चातकी ।।
अस्मदर्थे समाहृत्य वनान्मूलफल बहु।
भविष्यति कथं न्वम्बा दृष्ट्वा शून्यं तपोवनम् ?
इमे नावश्वकास्तता हस्तिका रथकाश्चे ये
अतोऽर्धं देयमम्बाये शोकं तेन विनश्यति।
—कीथ द्वारा संस्कृत साहित्य के इतिहास, पृ० ६८-६६ पर उद्धृत।

भास

'मध्यमव्यायोग' में नारी का प्रियोपलब्धि-कौशल प्रदर्शित किया गया है। हिडिम्बा भीम से एक चाल चलती है, जिसके कारण उनका हिडिम्बा के पास जाना आवश्यक हो जाता है।

'अविमारक' नाटक में अविमारक और कुरंगी की प्रेम-कथा है। अविमारक राजकुमारी को हाथी से बचाता है, उनमें प्रेम होता है। अविमारक का छोटी जाति का होना उनके विवाह में बाधक बनता है, किन्तु शीघ्र ही ज्ञात हो जाने पर कि वह एक कुलीन राजकुमार है, विवाह सम्पन्न हो जाता है। यह जाति-बन्धनों के दृढ़ होते जाने की ओर संकेत है।

'चारुदत्त' में गणिका वसन्त सेना और निर्धनीभूत व्यापारी चारुदत्त की प्रेम कथा है।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' की कथा यह है कि वीणा-वादन-विचक्षण राजा उदयन को हाथी पकड़ने में दक्षता प्राप्त थी। उसकी इस अभिरुचि का लाभ उठा कर निकटवर्ती राजा ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा दिलवाने के लिए उदयन को पकड़वा लिया। यौगन्धरायण ने राजा को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की और उसे छुड़ा कर ले जाते समय वासवदत्ता को भी उसके साथ ही ले जाया गया।

'स्वप्नवासवदत्ता' की कथा है कि विद्रोही आरुणि ने उदयन का राज्य छीन लिया। तब कूटनीति का आश्रय लेकर यह घोषित कर दिया गया गया कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण लावाणक ग्राम में लगी आग में भस्म हो गये हैं। इससे उदयन (जो वैसे किसी भी दशा में दूसरा विवाह करता ही नहीं) का विवाह मगध राजकुमारी पद्मावती के साथ होने का मार्ग निकल आया। इस नये सम्बन्ध के कारण उदयन ने अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया। स्पष्ट है कि राजाओं के विवाह राजनीतिक कारणों से होते थे।

इस नाटक में कन्याओं का गेंद खेलना, सपत्नी दमन के लिए प्रचलित टोटके आदि पर भी प्रकाश पड़ता है। उदयन का सपत्नी-प्रेम और वासवदत्ता का सपत्नी-प्रेम अत्यन्त सराहनीय है।

चाणक्य नीति

'राजनीति समुच्चय', 'चाणक्य नीति', 'चाणक्य राजनीति', 'वृद्ध चाणक्य', 'लघु चाणक्य' आदि एक ही पुस्तक के नाम हैं। इसमें कन्या का एक बार ही विवाह होना,[1] पत्नी के पवित्र, दक्ष, पतिव्रता, पति-प्रीता और सत्यवादिनी होने की आवश्यकता,[2] कुमारी से गृहस्थी के प्रति विरक्ति हो जाना[3] तथा वृद्धा नारी भोग प्राणहारी होना[4] आदि सूक्तियाँ कही गयी हैं।

---

१. सकृज्जल्पन्ति राजन्याः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्या प्रदीयतेत्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

२. सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिव्रता सा भार्या या सत्यवादिनी॥

३. कुदार दारे च कुतो गृहे रतिः।

४. शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥

शूद्रक

शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' भास के चारुदत्त का ऋणी है। इसमें वसन्त सेना और चारुदत्त की प्रेमकथा इस राजनीतिक घटना से सम्बद्ध कर दी गयी है कि चारुदत्त का मित्र आर्यक वहाँ के राजा को सिंहासनच्युत कर देता है। इस नाटक की अनेक घटनाओं से चारुदत्त की उदारता और वसन्तसेना का आत्मत्यागी प्रेम झलकता है। नाटक सुखान्त है। वसन्तसेना को निम्न-स्थिति से मुक्ति मिल जाती है, और वह चारुदत्त की विधि परिणीता पत्नी बन जाती है।

कालिदास

ऋतुसंहार :—'ऋतुसंहार' मे प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी के प्रेम की ऋत्वनुकूल विभिन्न मनोदशाओ का अकन है। ग्रीष्म ऋतु में दिन भार बन जाता है, मध्य रात्रि में संगीत, नृत्य और सुरा से प्रेमीजन आनन्द प्राप्त करते है। चन्द्रमा भी इन प्रेमियों से ईर्ष्या करता है। वर्षा-ऋतु मे पर्वतावलम्बि घनो के दर्शन से प्रेम-भाव जागृत हो जाता है। शरद् नववधू की भाँति शस्याभूषित होकर आती है। हेमन्त और शिशिर मे प्रेमी-जन भानु-कृशानु सेवन करते हुए सामीप्य-सुख पाते है, किन्तु ऋतुराज वसन्त के आते ही सुख का विस्तार हो जाता है, नया जीवन और नया आनन्द मिलने लगता है।

कुमारसंभव—'कुमारसभव' कालिदास की शृंगार रस प्रधान सुन्दर काव्य-सृष्टि है। इसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं का मार्मिक अकन हुआ है। जहाँ विवाहित जीवन के सौख्य हैं, वही प्रिया-मृत्यु-संभव दारुण वियोग-शोक भी है। कीथ[१] के मत में शिव और उमा का विवाह रति-क्रीड़ा मात्र नही है, हल्के मात्र नहीं है, हल्के प्रेम की घटना मात्र नही है, अपनी 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' में पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने भी, शिव-पार्वती का विवाह केवल रति-सुख के लिए नही था, ऐसा स्वीकार किया है।[२] वे इस देवी-विवाह और प्रेम को मानवीय विवाह और प्रेम का प्रतिरूप समझते हैं, जो दुष्टो के सहार

---

१. History of Sanskrit Literature, p 87 by A. B. Keith.

२. 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा', पृ० ४० देखिए :

"शिव-पार्वती का विवाह केवल रति-सुख के लिए नही था। उनके समागम मे तारकासुर का सहार करने वाले परम तेज पुंज कार्तिकेय का जन्म होता है। शिव-पार्वती का देवी विवाह और प्रेम, मानवीय विवाह और प्रेम का प्रतिरूप है, जो वंश की वृद्धि और गृह की सुरक्षा के लिए परमावश्यक है। कालिदास की सभी कृतियाँ प्रायः शृंगार-रस-प्रधान है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे वासना-जन्य प्रेम के पक्षपाती थे। मदन का भस्म हो जाना तथा पार्वती का शिव को अपने सौन्दर्य-पाश में बाँधने में असफल होना यह सिद्ध करता है कि कवि बाढ की तरह आने वाली, बाह्य आकर्षणो तक ही सीमित रहने वाली वासना का घोर विरोधी है। वासना-जनित क्षणभंगुर प्रेम का फल दुःख और क्लेश के अतिरिक्त और कुछ नही। काम-वासनाओ को बिना जलाये सच्चे स्नेह की उपलब्धि नही हो सकती, बिना तपस्या स्नेह कभी परिनिष्ठित नही हो सकता।"

और मानव-कल्याण के लिए परमावश्यक है; और जो वासना-जन्य प्रेम से उच्च और दिव्य तपःपूत प्रेम पर प्रतिष्ठित है। 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग में उमा माता और पिता से आज्ञा लेकर अपनी सखियों के साथ शिव की उपासना करती हैं। द्वितीय सर्ग में तारक-ग्रस्त देवताओं को ब्रह्मा शिव की शरण लेने का आदेश देते हैं, तब इन्द्र प्रेम के देवता काम से यह सहायता चाहते हैं कि वह शिव का मन उमा की ओर आकर्षित कर दे। तृतीय सर्ग में काम अपनी पत्नी रति एवं मित्र वसन्त के साथ शिव-धाम में पहुँचता है किन्तु शिव की समाधिमुद्रा देख कर डर जाता है। शिव समाधि से कुछ विचलित से होते हैं तो काम को भस्म कर देते हैं। चतुर्थ सर्ग में विश्व प्रसिद्ध 'रति-विलाप' आरंभ होता है। पति के विरह में वह कुछ भी स्वीकार नहीं करती, चिता में जल मरने का आग्रह करती है। आकाशवाणी उसे पुनः पति की प्राप्ति का आश्वासन देकर जीवित रहने का आदेश देती है। पंचम सर्ग में काम के असफल होने पर उमा प्रचंड तप में संलग्न हो जाती है। एक वटु आता है और शिव के प्रति उमा के आकर्षण को जान कर शिव का अति भयावह रूप सामने रखता है। किन्तु पार्वती उसकी भर्त्सना करती है। तब वह वटु शिव के रूप में प्रकट हो जाता है। षष्ठ सर्ग में सप्तर्षि हिमवान से शिव-पार्वती के परिणय का प्रस्ताव रखते हैं। स्मेरमुखी उमा अपनी माता का मुख जोहती है, क्योंकि कन्याओं से सम्बद्ध बातों में गृहीजन उनकी माता की इच्छा का अनुसरण करते हैं। इस समय पिता हिमालय के पास ही बैठी हुई पार्वती की मानसिक दशा का चित्रण कालिदास की शृंगार-विषयक प्रतिभा का अनूठा उदाहरण है। कवि ने कमल-पत्र की गणना द्वारा उमा की सहज लज्जाशीलता, आन्तरिक प्रणय तथा आनन्दातिरेक के गोपन की प्रवृत्ति का बड़ा ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है।[१] सप्तम सर्ग में धूम-धाम के साथ विवाह सम्पन्न होता है। उमा की माता हर्ष और शोक से आकुल होकर कुछ हड़बड़ा भी जाती है। कुछ पांडुलिपियों में काव्य इससे आगे भी चलता है। अष्टम सर्ग में कामसूत्र के अनुसार, पति पत्नी की काम-केलि अंकित की गई है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इस सर्ग को कालिदास का ही मानना उचित है। इसके आगे कुमार का जन्म और तारक-वध नौ सर्गों में है।

'कुमारसंभव में पति अपने को पत्नी का क्रीतदास कहता है, और यही पत्नी के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार, सबसे बड़ा गौरव है।[२]

नववधू के रूप में पार्वती के प्रेम का हृदयाभिराम चित्रण भारतीय वधूत्व का सुन्दर उदाहरण है। जब पार्वती ने अपने दीर्घ नेत्रों से दर्पण में अपना रमणीय रूप देखा, तब वह शीघ्रता से शिव के समीप पहुँचने के लिये आतुर हो गई, क्योंकि स्त्रियों के लावण्य की सफलता

---

१. एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
   लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥—कुमारसंभव ६।८४

२. अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
   क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
   अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
   क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥

प्रियतम की स्नेहसिक्त दृष्टि में ही निहित है ।[1]

साथ ही पति के प्रति भारतीय पत्नी की अनन्यता और उत्सर्ग भावना कालिदास ने अनेकत्र और विशेषतः रति-विलाप में अंकित की है ।[2]

इस प्रकार 'कुमारसंभव' के रति-विलाप और 'पार्वती जटिल (शिव) संवाद' भारतीय नारी के दो पक्षों को प्रस्तुत करते है । आठवें सर्ग मे शिव-पार्वती-रमण अश्लीलता की सीमा छू लेता है ।

रघुवंश :—'रघुवंश' कालिदास का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है । इसमें सूर्यवंश के राजाओ, दिलीप, अज, रघु और दशरथ का यशोगान, रामचरित तथा राम के वंशजों का वर्णन है । आरम्भ मे दिलीप और उसकी पत्नी सुदक्षिणा की गो-सेवा अंकित की गई है। आगे चलकर इन्दुमती का स्वयंवर तथा फिर, उसकी मृत्यु पर अज का करुण विलाप और पत्नी के शोक में मर जाना अंकित है । अगले सर्गो में राम द्वारा ताड़का-वध, सीता-स्वयंवर कैकेयी की कूटनीति, सीता का वन-जीवन, सीता-हरण और लंका-विजय, राज्याभिषेक, अयोध्या में सीता के चरित्र पर आक्षेप, गर्भवती सीता का वनवास, राम के अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्ण मूर्ति की स्थापना, वाल्मीकि द्वारा सीता का निर्दोष सिद्ध करना, सीता का पुनः ग्रहण और तत्काल पृथ्वी प्रवेश तथा शोकहत राम का स्वर्ग गमन अंकित हुए हैं। सोलहवें सर्ग में कुशवती मे राज्य करते हुए कुश की स्त्री-वेषी अयोध्या नगरी स्वप्न में दिखाई देती है उसकी प्रार्थना पर कुश फिर अयोध्या को राजधानी बनाता है । इससे आगे के सर्गो मे, बहुत संक्षेप मे, राजाओ का नामोल्लेख-सा है, जो केवल दारा-प्रिय है । अंतिम सर्ग में क्षय-ग्रस्त अग्निवर्मन की गर्भवती विधवा पत्नी को शोकदशा के बीच काव्य की समाप्ति होती है ।

'रघुवंश' में दाम्पत्य सम्बन्ध की स्निग्ध मधुरिमा का आस्वाद मिलता है। पति के लिए पत्नी सच्चे अर्थो में प्रिया है, पत्नी के बिना पति के जीवन मे कोई रस नहीं रह जाता, कोई रंग नहीं रह जाता ।

परम पराक्रमी अज का पत्नी-शोक-जर्जर-विलाप भारतीय पति की पत्नी के प्रति प्रगाढ़ अनुरक्ति और अनन्यता का सन्देश देता है ।[3]

---

१. आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्श बिम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि० वेषः ॥
—कुमारसंभव ७।२२

२. कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् ।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥
तीव्राभिषङ्ग प्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तंभयतेन्द्रियाणाम् ।
अज्ञातभर्तृ व्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥

३. विललाप स बाष्प गद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैवकथा शरीरिषु ॥
ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ॥

भारतीय गृहिणी की यह प्रशंसा किस स्त्री के लिए स्पृहणीय नहीं होगी कि वह पुरुष के लिए सर्वस्व है।[1] स्त्री के नेत्रों का आकर्षण 'मत्त चकोर नेत्र' से उपमित हुआ है।[2]

माता रूप में नारी :—कालिदास ने माना कि नारी-जीवन की सार्थकता मातृत्व में है। 'रघुवंश' में मातृत्व का सुन्दर वर्णन है।[3] 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में भी मातृत्व की प्रशस्ति है। ऋषि-पत्नी की मातृवत्सलता अप्रमेय है। साथ ही कण्व का शकुन्तला को विदा करते समय यह कहना कि 'तू पवित्र पुत्र उत्पन्न करके मेरा विरह-दुःख भूल जायगी'[4] मातृत्व की महिमा का प्रतिपादन करता है। इस प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की परिणति भी मातृत्व में ही हुई है।

कन्या रूप में नारी :—कन्या रूप में नारी का गौरव और उसकी कर्तव्यशीलता 'कुमारसंभव' तथा 'रघुवंश' में प्रतिपादित की गई है। कालिदास के अनुसार कन्या को जितेन्द्रिय बनने के लिए तपस्या-निरत होना चाहिये। 'कुमारसंभव' में कालिदास पार्वती के तप का प्रभाव और रहस्य बतलाते हैं।[5] इसी तपस्या के वशीभूत होकर तो उसके कामजयी पति ने उसे शीर्ष स्थान दिया है। समस्त भारतीय साहित्य में नारी त्याग की मूर्ति के रूप में चित्रित हुई है। यह गौरव उसकी तपस्या ने ही उसे प्रदान किया है।

पत्नी रूप में नारी :—कालिदास ने परित्यक्ता सीता को अत्युदात्त रूप में चित्रित किया है। लोकमंगल वेदी पर राम ने आत्म-सुख का बलिदान कर दिया। सीता भी इस राजधर्म को समझती हैं, फिर भी वे लक्ष्मण से उपालंभपूर्वक पूछती हैं कि क्या यह त्याग शास्त्रानुमोदित और इक्ष्वाकु वंश की मर्यादा के अनुरूप है। वे तुरन्त ही सचेत हो जाती हैं और इस दुःखद घटना को अपने ही पापों का फल मान लेती हैं।[6]

उनके सगर्व स्वाभिमान का चित्र भी कवि ने बड़ा ही सुन्दर अंकित किया है। यह सगर्व स्वाभिमान की पवित्र ओजमयी वाणी उनके चरित्र को गौरव प्रदान करती है। परित्यक्ता सीता लक्ष्मण से कहती हैं कि "तुम मेरी ओर से उन राजा (राम) से यह संदेश कहना—लंका विजय के बाद देवताओं, वानरों, राक्षसों तथा स्वयं आपके सामने अग्निदेव ने मेरी पवित्रता का प्रमाण दिया था। क्या उसमें भी आपकी श्रद्धा नहीं? लोगों के निराधार प्रवाद को सुनकर ही आपने अपनी वाग्दत्ता पत्नी का परित्याग कर दिया। क्या यह आचरण आपको

---

१. गृहिणी सचिव : सखीमिथः प्रिय शिष्याललिते कलाविधौ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥
२. चकार सा मत्त चकोर नेत्रा लज्जावती लाज विसर्गमग्नौ।
३. 'रघुवंश', सर्ग ३, श्लोक १ से ४ तक।
४. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', अंक ४, श्लोक १८
५. इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥
—कुमार संभव, ५/२
६. कल्याण बुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः।
ममैव जन्मान्तर पातकानां विपाक विस्फूर्जथुरप्रमेयः॥

विद्वत्ता अथवा कुल के अनुरूप है ?"[१] स "राजा" क्या ही चुभता हुआ व्यंग्य है। राम पहले राजा है, पति बाद में।

उन्होंने सोचा वनवास के मिष मेरी तपस्या ही हो जायगी। अब 'राम' एक राजा है, मैं एक सामान्य तपस्विनी हूँ, अतः वे मेरा प्रजा की दृष्टि से ही ध्यान रखें—'तपस्वि-सामान्यमवेक्षणीया।' जानकी के इस निवेदन मे कितना ओज, त्याग, और कारुण्य भरा है।

'रघुवश' में 'अज विलाप' भारतीय दाम्पत्य जीवन की रस-सिक्तता और पति-पत्नी के पारस्परिक त्याग-भाव का चित्रण करता है। कालिदास ने पति-पत्नी को परस्परानुरक्ति के विविध पक्ष बताते हुए पत्नी को पति की गृहिणी, परामर्शदात्री, एकान्त-सखी और ललित-कला की शिष्या के रूप मे प्रदर्शित किया है।[२] फिर भी, कालिदास के मत में पति को पत्नी पर सर्वतोमुखी प्रभुता प्राप्त है।[३]

मेघदूत :—'मेघदूत' विरहाकुल पुरुष-हृदय का चित्र है। एक कल्पना-प्रसूत यक्ष को स्वामी के शापवश अपनी प्रिया से वियुक्त होकर राम-गिरि पर रहना पड़ता है। एक दिन मेघ को देखकर उसका विरह तीव्रतर हो जाता है और वह उससे अपना सन्देश अलकापुरी मे अपनी पत्नी के पास पहुँचा देने की प्रार्थना करता है। वह मेघ से कहता है—"मेरी पत्नी अति कोमलांगी है, अतः तुम उसे मृदुता से जगाना। वियोग-विधुरा प्रिया पतिनामांकित गीत को गाते-गाते नयन-जल से वीणा को भिगोती हुई, स्वयं आरम्भ की हुई मूर्च्छना को भी बारम्बार भूल रही होगी।"[४]

शृङ्गार-तिलक :—कालिदास द्वारा प्रणीत माने जाने वाले 'शृङ्गार-तिलक' मे नारी-हृदय की कठोरता प्रदर्शित की गई है। यहाँ कठोरता का अभिप्राय निष्करुणता से नहीं है, वरन् प्रेमी के प्रति शीघ्र आकृष्ट न होने वाली निर्ममता से है। अत्यन्त कोमल कुसुमवत् सुकुमार-कलेवरा होकर भी वह पाषाण-हृदया है।[५] उसके उरोज की समता करने की धृष्टता करनेवाला कंदुक ताड़ना पाता है, अत नेत्र की समता वाला उत्पल भयपूर्वक उसके चरणो

---

१. वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्
मा लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥

रघुवंश, १४।६१

२. गृहिणी सचिव (सखीमिथ) प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ॥

रघुवंश, अज विलाप।

३. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी। अभिज्ञानशाकुन्तलम्

४. उत्संगे वा मलिन वसने सौम्य निक्षेप वीणाम्
मद् गोत्राङ्कं विरचित पद गेयमुद्गातुकामा।
तंत्रीमार्द्रां नयनसलिलै सारयित्वा कथंचित्
भूयो भूयः स्वयमपि कृत मूर्च्छना विस्मरन्ती।

५. इन्दीवरेण नयन मुखमम्बुजेन कुन्देन दन्तमधर नव पल्लवेन।
अङ्गानि चम्पक दलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं घटितवा नुपलेन चेतः ?

में गिर गया है।[1] ऐसी बाला मेरे मन-मृग के लिए भ्रू-चाप और कटाक्ष-शर लिए व्याध बन गयी है।[2]

मालविकाग्निमित्र :—'मालविकाग्निमित्र' राजा अग्निमित्र और उनकी राजमहिषी की परिचारिका मालविका की प्रणय-कथा है। राजा मालविका के अनुपम सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उससे प्रेम करने लगता है और रानी द्वारा बाधाएँ उपस्थित करने पर भी 'कामतंत्र सचिव' विदूषक की सहायता से अपने कार्य में सफल होता है।

विक्रमोर्वशीयम् :—'विक्रमोर्वशीयम्' एक स्वर्गिक अप्सरा और मर्त्य की प्रेम-कथा है। इस कथा में ऋग्वेदीय कथा, शतपथ ब्राह्मण की कथा, विष्णु पुराण, भागवत पुराण और बृहत्कथा की इसी नाम की कहानी के तत्त्व मिलाये गये हैं। सर्वत्र पुरुष द्वारा स्त्री का अभिरंजन इस नाटक में मुखरित हुआ है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् :—'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की कथा महाभारत से ली गई है, किन्तु नाट्यकार ने उसमें कुछ परिवर्तन कर दिये हैं, जिनसे चरित्रों में उदात्तता आ गयी है।

इसमें कण्व दीर्घतर समय के लिए बाहर जाते हैं शकुन्तला प्रेम की सौदेबाजी नहीं करती और अनुसूया राजा से शकुन्तला के विषय में बात करती है एवं दुर्वासा की प्रादुर्भूति-से दुष्यन्त का चरित्र भी उच्च हो जाता है। फिर भी, कालिदास-काल में स्त्री की अनन्यता ही उसका प्रमुख गुण माना गया था। कालिदास का दुष्यन्त 'अनाघ्रात पुष्प', 'अलून पल्लव', 'अविद्धरत्न'[3] जैसी अक्षतयोनि प्रेमिका की इच्छा करता है। विवाहिता नारी का यह प्रमुख सद्गुण होता था कि वह पति-गृह में शान्तिमय वातावरण रखे और एतदर्थ सास-ससुर-परिजनों के साथ उपयुक्त व्यवहार करे। कण्व ने शकुन्तला को सास-ससुर आदि गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा करते रहने का उपदेश दिया है।[4]

शकुन्तला में तत्कालीन नारीत्व के सब पक्ष प्रदर्शित हुए हैं। कर्त्तव्य, स्नेह, प्रेम, उमंग, उच्छ्वास, विरह-व्रत, नारीत्व-गरिमा, तेज और औदार्य सभी उसमें यथावसर भव्यता के साथ प्रकट हुआ है।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कन्या-समाज में प्रचलित कालिदासकालीन विनोद वार्तायें भी मुखरित हुई हैं। शकुन्तला की सखियों के विनोद मनोहारी हैं।

कालिदास के नाटकों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कालिदासकालीन भारत में स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी, चित्रकला, संगीत, गृहकला, प्राथमिक चिकित्सा आदि में निष्णात हुआ करती थीं। कन्याओं का विवाह वयस्कता-प्राप्ति पर होता था। पति के साथ गुरुजनों के सामने जाने

---

१. पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादिव ताड्यते मुहुः।
   इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं तस्याः प्रसादाय पपात पादयोः॥
२. इयं व्याधायते बाला भ्रूरस्याः कार्मुकायते।
   कटाक्षश्च शरायन्ते मनो मे हरिणायते॥
३. शाकु० २।१०
४. वही ४।८

मे स्त्रियाँ लज्जा का अनुभव करती थी ।[१] वे पर्दा भी करती थी । पुरुष स्त्रियों के साथ शिष्ट व्यवहार करते थे । धनिकों तथा राजाओं में बहु-विवाह प्रथा थी । गुरुजन-सेवा पति-परायणता, परिजन-तोषण, सपत्नी के प्रति सौहार्द और ऐश्वर्य में गर्व-राहित्य तत्कालीन स्त्री के विहित आचरण थे ।[२] स्त्री का सौन्दर्य शारीरिक लावण्य में नहीं, वरन् चारित्रिक सौन्दर्य में पूर्णत्व प्राप्त करता है ।[३] स्वच्छ-निश्छल प्रेम मगल-भाव से सिक्त होकर नारीत्व का गौरव स्थापित करता है । भ्रमर-वृत्ति सर्वथा हेय है ।[४] एकनिष्ठ प्रेम ही प्रेम है । यह प्रेम पूर्व जन्म के सौहार्द का प्रत्यभिज्ञान है[५] और जन्मान्तर मे भी साथ रहता है ।[६]

महाभारत मे शकुन्तला अपने परित्याग के कारण नही, पुत्र के परित्याग के कारण राजा को बुरा कहती है और राजा को समझाती है कि पुत्र-त्याग से भारी हानि की संभावना हो सकती है ।

अश्वघोष

अश्वघोष के "सौन्दरनन्द" महाकाव्य में बुद्ध द्वारा अपने चचेरे भाई नन्द को बौद्ध धर्म मे दीक्षित करने की कथा है । इसमें सुन्दरी का सौन्दर्य तथा नन्द से उसके परिणय की गरिमा अंकित की गयी है । नन्द अपनी पत्नी के सौन्दर्य का दास हो गया था और सांसारिक सुखोपभोग में लीन रहता था । इसीलिए नन्द उसे अति अनिच्छापूर्वक छोड़कर ही बुद्ध के पास गया ।[७] उसे समझाया गया कि स्वर्ग की अप्सराएँ अधिक सौन्दर्यवती है । इस प्रकार जब उसका चित्त पत्नी से हट गया तब उसे बताया गया कि स्वर्ग का जीवन भी अस्थायी है, अतः परम निर्वाण प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए । फिर सुन्दरी की वियोग व्याकुलता अंकित हुई है ।[८] नन्द अनेक उदाहरण देते हुए ऐसे तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रिया के साथ रहना ही आनन्दमय जीवन है ।[९]

इस काव्य में नारी के दोषों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है । सर्ग आठ में

---

१. जिन्हेमि आर्यं पुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम् ।
२. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नी जने
   भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः
   भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
   यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः । शा० ४।१८
३. (क) निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
   (ख) प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।
४. शाकुन्तलम् ४।२८
५. मनोहि जन्मान्तर संगतिम्—रघु० ७।१५
६. भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः सीता—रघुवंश ।
७. सर्ग ४
८. सर्ग ६
९. सर्ग ७

स्त्रियों के दुर्गुण, यथा, मुख में चाटुता, हृदय में विश्वासघात, छल आदि बताये गये हैं।[1] सर्ग दस में नन्द को स्वर्ग की अप्सराएँ दिखाई जाती हैं, जिन्हें वह अपनी पत्नी से अधिक सुन्दर मान लेता है, और इस प्रकार सुन्दरी से मन हटा कर किसी एक अप्सरा की प्राप्ति चाहता है। बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द उसे चेतावनी देते हैं कि स्वर्ग धर्म से ही प्राप्त हो सकता है और फिर स्वर्ग-प्राप्ति भी तो क्षण मात्र की ही होती है। अतः मानव का जीवनोद्देश्य निर्माण-प्राप्ति ही होना चाहिए।[2]

बुद्ध चरित :

अश्वघोष के इस महाकाव्य में बुद्ध की काम-विजय दिखायी गयी है। गौतम के भिक्षु बनने जाने के पूर्व अनेक सुन्दरियाँ उनके दृष्टि पथ में पड़ती हैं और अन्तःपुर की अनेक कामिनियाँ उनका मन रमाने का प्रयत्न करती हैं। किन्तु अस्त-व्यस्त सोई हुई कुछ प्रमदाओं को देख कर गौतम की विरक्ति और भी बलवती हो जाती है, और कामशास्त्र के समस्त आकर्षण गौतम को मार से संघर्ष करने की ही प्रेरणा देते हैं। सुप्त सौन्दर्य का यह वर्णन वाल्मीकि के रावण हर्म्य वर्णन से प्रभावित है।

शंकराचार्य :

शंकराचार्य कृत देव्य पराधक्षमापण स्तोत्र के वचन 'कुपुत्रोवा जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' में मातृ हृदय का चरमोत्कर्ष व्यक्त हुआ है।

शंकराचार्य ने भी नारी को नरक का द्वार कहा है,[3] किन्तु माता के लिए उन्होंने असीम श्रद्धा प्रकट की है। संन्यास धर्म में निषिद्ध होने पर भी, माता का अन्तिम संस्कार उन्होंने अपने हाथों ही किया था।[4]

हाल की सतसई

(स० २०० से ४५० ईस्वी में)

'हाल की सतसई' जिस रूप में आज प्राप्त है, उस रूप में जीवन तथा जन-सामान्य की यथार्थताओं से निकटतम संबंध रखती है। इसमें ग्वाल-ग्वालियों, उद्यान-रक्षिकाओं, पिसनहारियों और मजदूर-मजदूरनियों के सच्चे चित्र हैं। सरल भाषा में सरल प्रेम, विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव से पल्लवित-पुष्पित होता है। हेमन्त प्रेमियों को निकटतर करता है, वर्षा प्रेमिकों को एकत्र आश्रय खोजने को प्रेरित करती है। शरच्चन्द्र की किरणें जो प्रेमी का स्पर्श कर रही हैं,

---

१. सर्ग ८

२. सर्ग १०

३. द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।

४. देखिये :—शंकर दिग्विजय, १५ २६-५५। माता को श्रद्धांजलि देते हुए उन्होंने कहा था—"आस्तां तावदियं प्रसूति समये दुर्वार शूलव्यथा, नैरुच्यं तनु शोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी। एकस्यापि न गर्भभार भरण क्लेशस्य यस्याः क्षमो दातुं निष्कृति मुन्नतोऽपि तनयस्तस्यैजनन्यै नमः।"

में स्त्रियाँ लज्जा का अनुभव करती थी।[१] वे पर्दा भी करती थी। पुरुष स्त्रियों के साथ शिष्ट व्यवहार करते थे। धनिकों तथा राजाओं में बहु-विवाह प्रथा थी। गुरुजन-सेवा पति-परायणता, परिजन-तोषण, सपत्नी के प्रति सौहार्द और ऐश्वर्य में गर्व-राहित्य तत्कालीन स्त्री के विहित आचरण थे।[२] स्त्री का सौन्दर्य शारीरिक लावण्य से नहीं, वरन् चारित्रिक सौन्दर्य में पूर्णत्व प्राप्त करता है।[३] स्वच्छ-निश्छल प्रेम मंगल-भाव से ससिक्त होकर नारीत्व का गौरव स्थापित करता है। भ्रमर-वृत्ति सर्वथा हेय है।[४] एकनिष्ठ प्रेम ही प्रेम है। यह प्रेम पूर्व जन्म के सौहार्द का प्रत्यभिज्ञान है[५] और जन्मान्तर में भी साथ रहता है।[६]

महाभारत में शकुन्तला अपने परित्याग के कारण नहीं, पुत्र के परित्याग के कारण राजा को बुरा कहती है और राजा को समझाती है कि पुत्र-त्याग से भारी हानि की संभावना हो सकती है।

अश्वघोष

अश्वघोष के "सौन्दरनन्द" महाकाव्य में बुद्ध द्वारा अपने चचेरे भाई नन्द को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने की कथा है। इसमें सुन्दरी का सौन्दर्य तथा नन्द से उसके परिणय की गरिमा अंकित की गयी है। नन्द अपनी पत्नी के सौन्दर्य का दास हो गया था और सांसारिक सुखोपभोग में लीन रहता था। इसीलिए नन्द उसे अति अनिच्छापूर्वक छोड़कर ही बुद्ध के पास गया।[७] उसे समझाया गया कि स्वर्ग की अप्सराएँ अधिक सौन्दर्यवती है। इस प्रकार जब उसका चित्त पत्नी से हट गया तब उसे बताया गया कि स्वर्ग का जीवन भी अस्थायी है, अतः परम निर्वाण प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। फिर सुन्दरी की वियोग व्याकुलता अंकित हुई है।[८] नन्द अनेक उदाहरण देते हुए ऐसे तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रिया के साथ रहना ही आनन्दमय जीवन है।[९]

इस काव्य में नारी के दोषों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। सर्ग आठ में

---

१. जिव्हेमि आर्यं पुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्।
२. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नी जने
   भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः
   भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
   यान्त्येवं गृहिणी पद युवतयो वामाः कुलस्याधय। शा० ४।१८
३. (क) निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
   (ख) प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता।
४. शाकुन्तलम् ४।२८
५. मनोहि जन्मान्तर संगतिज्ञम्—रघु० ७।१५
६. भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः सीता—रघुवंश।
७. सर्ग ४
८. सर्ग ६
९. सर्ग ७

स्त्रियों के दुर्गुण, यथा, मुख में चाटुता, हृदय में विश्वासघात, छल आदि बताये गये हैं।[1] सर्ग दस में नन्द को स्वर्ग की अप्सराएँ दिखाई जाती हैं, जिन्हें वह अपनी पत्नी से अधिक सुन्दर मान लेता है, और इस प्रकार सुन्दरी से मन हटा कर किसी एक अप्सरा की प्राप्ति चाहता है। बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द उसे चेतावनी देते हैं कि स्वर्ग धर्म से ही प्राप्त हो सकता है और फिर स्वर्ग-प्राप्ति भी तो क्षण मात्र की ही होती है। अतः मानव का जीवनोद्देश्य निर्वाण-प्राप्ति ही होना चाहिए।[2]

बुद्ध चरित :

अश्वघोष के इस महाकाव्य में बुद्ध की काम-विजय दिखायी गयी है। गौतम के भिक्षु बनने जाने के पूर्व अनेक सुन्दरियाँ उनके दृष्टि पथ में पड़ती हैं और अन्तःपुर की अनेक कामिनियाँ उनका मन रमाने का प्रयत्न करती हैं। किन्तु अस्त-व्यस्त सोई हुई कुछ प्रमदाओं को देख कर गौतम की विरक्ति और भी बलवती हो जाती है, और कामशास्त्र के समस्त आकर्षण गौतम को मार से संघर्ष करने की ही प्रेरणा देते हैं। सुप्त सौन्दर्य का यह वर्णन वाल्मीकि के रावण हर्म्य वर्णन से प्रभावित है।

शंकराचार्य :

शंकराचार्य कृत देव्य पराधक्षमापण स्तोत्र के वचन 'कुपुत्रोवा जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' में मातृ हृदय का चरमोत्कर्ष व्यक्त हुआ है।

शंकराचार्य ने भी नारी को नरक का द्वार कहा है,[3] किन्तु माता के लिए उन्होंने असीम श्रद्धा प्रकट की है। संन्यास धर्म में निषिद्ध होने पर भी, माता का अन्तिम संस्कार उन्होंने अपने हाथों ही किया था।[4]

हाल की सतसई
(स० २०० से ४५० ईस्वी में)

'हाल की सतसई' जिस रूप में आज प्राप्त है, उस रूप में जीवन तथा जन-सामान्य की यथार्थताओं से निकटतम संबंध रखती है। इसमें ग्वाल-ग्वालियों, उद्यान-रक्षिकाओं, पिसनहारियों और मजदूर-मजदूरनियों के सच्चे चित्र हैं। सरल भाषा में सरल प्रेम, विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव से पल्लवित-पुष्पित होता है। हेमन्त प्रेमियों को निकटतर करता है, वर्षा प्रेमिकों को एकत्र आश्रय खोजने को प्रेरित करती है। शरच्चन्द्र की किरणें जो प्रेमी का स्पर्श कर रही हैं,

---

१. सर्ग ८

२. सर्ग १०

३. द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।

४. देखिये :—शंकर दिग्विजय, १५ २६-५५। माता को श्रद्धांजलि देते हुए उन्होंने कहा था—"आस्तां तावदियं प्रसूति समये दुर्वार शूलव्यथा, नैरुच्ये तनु शोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी। एकस्यापि न गर्भभार भरण क्लेशस्य यस्याः क्षमो दातुं निष्कृति मुन्नतोऽपि तनयस्तस्यैजनन्यै नमः।"

प्रेमिका के लिए भी स्पर्श सुख प्रदात्री बनती हैं।

रात्रि ही काम्य है, क्योंकि सबेरा तो प्रेमी को विदा होने के लिए बाध्य करता है। वह दृश्य अत्यन्त मार्मिक है, जिसमें आगतपतिका आल्हाद भरित होने पर भी अपनी प्रोषित पतिका पड़ोसिन का वियोग-ताप न बढ़ाने की इच्छा से, अपना शृंगारोत्सव नहीं करती है।

हाल की सतसई मे प्रेम की विभिन्न दशाएँ और उसके विभिन्न रूप अंकित हुए है। प्रथम दृष्टि का गाढ़ानुराग, आत्मलीनता,[१] विकसित जीवन का गार्हस्थ्य-सुख, सन्तति-सुख, बच्चे का पिता को पीठ पर चढ़ते देख कर माता का मुदित होना, शिशु के प्रथम दन्तोद्गम पर हर्षित होना आदि के प्रसन्न वर्णना के साथ ही वियोग दशाओ के भी चित्र खीचे गये हैं। नागरिकाओ की रंगीतियाँ भी अंकित हुई है। पिशेल के मत में ऋग्वेद में तथा वैदिक युग से ही समस्त भारतीय साहित्य मे demi monda के चित्रण प्राप्त होते है। प्रकृति इस प्रेम को समयानुकूल रग प्रदान करती है, ऋतुओं का, साँझ-सबेरे का, तथा दृश्यो का गहरा प्रभाव पड़ता है। खग-मृग-जगत् मे भी प्रेम के मिलते-जुलते दृश्य दिखाई देते हैं, तथा प्रकृति नखशिख आदि में उपमान भी प्रस्तुत करती हैं। इन सबका प्रेम वर्णन में एक विशेष स्थान है।

वर्णनो में कहीं-कही नाटकीय तत्व भी समाविष्ट हुआ। कही कोई बन्दिनी नारी अपने मुक्तिदायक की प्रतीक्षा में है, कही दस्युओ द्वारा परिगृहीत नारियो को व्याकुलता है और कही वैद्य-जार से समागम-कांक्षिणी नारी वृश्चिक-दंशन का ढोंग रचती है।

लगभग १००० वि० में श्वेतांवर जैन जयवल्लभ द्वारा सम्पादित 'बज्जालग्ग' वस्तुत. धर्म-नीतियो का संकलन है। इसमें भी तत्कालीन नारी दशा के कुछ चित्र मिल जाते हैं। एक स्त्री का विचार कि जैसे आग घर को जला देती है, फिर भी आग अनिवार्य है ही; वैसे ही सताने वाला प्रिय भी संगमनीय ही है। एक वीरिणी नारी पति के रणविमुख न होकर वीर-गति पा लेने पर प्रसन्न है, क्योंकि अब उसे लज्जित नही होना पड़ेगा। एक श्लोक के अनुसार भक्तिपूर्वक माता के चरणों में झुकना गंगा स्नान का फल देता है।

भवभूति :

भवभूति कृत 'मालती माधव' नाटक में मालती और माधव के प्रेम के विकास की विभिन्न स्थितियाँ दिखायी गयी हैं जिससे इसे भारत का सुखान्त 'रोमियो एंड जूलियट' कहा गया है।[२] कन्याएँ अपने प्रेमियो के साथ पलायन कर जाती है, और बाद मे समाज की स्वीकृति उन्हे मिल जाती है।

मालती माधव में भवभूति कृत विवेचना प्रेम को आध्यात्मिक रंगो मे प्रस्तुत करती है।[३] यह प्रेम सुख और दु.ख दोनों में एक-सा रहता है। सारी अवस्थाओं में अनुकूल रहना

---

१. प्रिय का अपने दोष को क्षमा कराने के लिए प्रिया के चरणावनत होना पारस्परिक दन्तदान और नखदान।

२ A. 'Bhavabhuti : His Life and literature' —by S. V. Dixit
B. Keith : Sanskrit Drama

३. अद्वैतं सुख दु:खयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः॥

है। इससे हृदय को विश्राम मिलता है, बुढ़ापा इसका रस नहीं हर सकता। समय बीतने पर यह परिपक्व स्नेहसार में स्थित रहता है। यह कल्याणकारी प्रेम विरले भाग्यशाली पुरुष को ही प्राप्त होता है।

विण्टर नित्ज के मत में से भवभूति द्वारा प्रतिपादित प्रेम ऐन्द्रिक कम, आध्यात्मिक अधिक है।[१]

भवभूति का 'उत्तररामचरित' सीता को मानवीय रूप में अंकित करने का दिव्योदाहरण है। सीता वास्तव में मानवी के रूप में एक देवी हैं। वे विपदि धैर्यम् का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। वे सच्ची प्रतिप्राणा हैं, पति के व्यक्तित्व में अपने को लीन कर देने वाली हैं। राम द्वारा त्याग कर दिये जाने पर भी वे उनके दोषों को मन में भी नहीं ला सकती है। यहाँ तक कि जब सखी उनके दुःख से व्यथित होकर उनके सामने राम को निष्ठुर बताती हैं, तो वे उसके वचन को नहीं सहन कर सकतीं। राम के प्रति कोई भी, और किसी का कटु विचार उन्हें असह्य हो जाता है।

जब वासन्ती ने कहा—'अयि देव किं परं दारुणः खल्वसि'—अर्थात् देव आप सचमुच बड़े निष्ठुर हैं। तब सीता देवी उसकी वर्जना करती हुई कहती है कि सखि वासन्ति, तुम ऐसा क्यों कहती हो, आर्यपुत्र सबके पूज्य है, विशेषतः मेरी प्रिय सखि के।[२]

इस प्रकार भवभूति की सीता ने स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर ली है, उन्होंने अपने तन-मन को सुसंस्कृत बना लिया है। उनमें प्रतिहिंसा वृत्ति है ही नहीं। पति के प्रति वे स्वयं तो कुछ कहती ही नहीं, सख्युक्त कटु वचन भी उन्हें अप्रिय और असह्य लगते हैं। अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि सीता, वास्तव में मानवी के रूप में एक देवी हैं।

मयूर :

मयूर कृत सुभाषितावलि से कवि की वक्रोक्ति के उदाहरण के रूप में यह उद्धृत किया जा सकता है कि सहस्र वर्षों से मेरे क्रोड़ में बैठी हुई स्त्री के लिये भी यह कहना कितना सरल है कि व्यर्थ आरोप क्यों लगाते हो, मैं तो तुम्हारे अंग से नितान्त अनभिज्ञ हूँ।[३]

मयूर का चंडीशतक, दन्तकथा के अनुसार, पुत्री के शाप से कोढ़ी हुए कवि द्वारा दुर्गा की स्तुति है। कवि ने अपनी पुत्री के सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन किया है।[४]

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेह सारे स्थितं।
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते॥

१. Winternity : geschichte den Indischen Literatar, vol. III, p. 235

२. सखि वासन्ति किं त्वमेवं वादिनी भवसि, पूजार्हः
सर्वस्यार्य पुत्रो विशेषतो मम प्रिय सख्य :॥
—उत्तररामचरित, तृतीयांक, श्लोक २५ के पश्चात्।

३. आरोपयसि मुधा किं नाहमभिज्ञ स्त्वदंगस्य।
दिव्यं वर्षं सहस्रं स्थित्वेव युक्तमभिधातुम्॥

४. एषा का स्तनपीनभार कठिना मध्ये दरिद्रावती।
विभ्रान्ता हरिणी विलनयना संत्रस्तमूथोद्गता॥

राजशेखर :

राजशेखर ने अपने कर्पूर मञ्जरी सट्टक में स्त्री-पुरुष के परस्परावलम्बन की सराहना की है। उसने लिखा है कि चंचल नयनों वाली तरुणी नारी सदा पुरुषों के हृदय में विश्राम करती है, क्योंकि अपने गुणों के कारण वह हमेशा जागरूक रहती है। पुरुष चाहे सोया रहे या जिधर भी अपना रुख रखे, वहीं वह वर्तमान रहती है। बोलचाल में या काव्य-प्रबंध में भी वह साकार मूर्तिमती होकर विराजती है। और तो क्या, कल्पना में भी उसका स्खलन नहीं होता। भाव यह है कि दोनों का परस्पर विश्वास, आत्मीयता, हित-चिन्तना और तन्मयता दोनों एकाकार किये रहती है।[1]

दिङ्नाग :

बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग कुन्दमाला नाटक के वैदेही वनवास भाग में सीता को मानवी के रूप में चित्रित करते हैं। उनमें वे धैर्यच्युति भी प्रदर्शित करते हैं, जो स्वाभाविक तो है, किन्तु उससे हृदय की विशालता कम हो जाती है। सीता को वन में पहुँचाकर लौटते समय लक्ष्मण उनसे राम के लिए संदेश माँगते हैं, तब सीता राम को निष्ठुर[2] और पुरुष हृदय को अविश्वसनीय[3] कहती हैं। वे कहती हैं, ऐसे निष्ठुर के लिए मैं जो संदेश देना चाहती हूँ उसमें लक्ष्मण के वचन का आदर है, सीता का सौभाग्य नहीं। स्वभाव से ही निष्ठुर भावपूर्ण पुरुष-हृदय की अविश्वसनीयता विचित्र है।

इस कथन में हृदय की वह उदात्तता नहीं है, जिससे वह देवत्व की कोटि तक पहुँच सके है। मनुष्य की कसौटी तो विपत्ति है जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही वास्तव में मनुष्य है। भर्तृहरि ने भी कहा है—विपदि धैर्यम् ही सज्जन के प्रधान लक्षणों में से हैं। दिङ्नाग की सीता विपत्ति में धैर्य खो बैठती हैं। इस कसौटी पर वे हलकी पड़ जाती हैं।

तो भी इतना अवश्य है कि उन्होंने राम को बुरा नहीं कहा है। निष्ठुरता को सभी पुरुषों का स्वभावसिद्ध गुण बताना, राम को इस दोष से एक बड़े अंश में मुक्त कर देना है।

श्री हर्ष :

श्रीहर्ष का नैषधचरित नल-दमयन्ती की केलि-कथा है, जिसमें लेखक की नैयायिकता कहीं बाधक नहीं हुई है, चन्द्रमा जिसमें प्रेमवार्ता का साधनाद्वार बनता में, और श्लेष वचन

अन्त. स्त्रैदगजेन्द्रागडगलिता सलीलया गच्छति।
दृष्ट्वा रूपमिद प्रियाग गहनं वृद्धोऽपि कामायते ॥

१. चित्ते चिहुट्टदिण सुट्टदि सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टदि विसप्पदि दिम्मुहेसु
बोल्लम्मि वट्टदि पउट्टदि कव्व बन्धे
झाणे तुट्टदि चिर तरुणी चलावखी ॥

२. तथा निष्ठुरो नाम संदिश्यत इत्य प्रतिहत वचन तेषा लक्ष्मणस्य, न सीताया धन्यत्वम्।

३. अहो अविश्वसनीयता प्रकृति निष्ठुर भावाना पुरुष हृदयानाम्।

जिसमें प्रेम को रंगीन बनाते हैं।

कामिनी द्वारा स्वयं वह प्रथा, दूत-प्रेषण, विवाह के समय स्त्रियों के द्वारा पुरुषों को गाली गाया जाना, काम-शास्त्र की विविध विधियों का प्रचार में होना आदि तत्कालीन स्थितियों को यह काव्य हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

नेमिदूत :

नेमिदूत का विप्रलंभ शृङ्गार उदात्त होते हुए अध्यात्म में रूपांतरित हो गया है।[1] विवाह के लिए आते-आते जब नेमिनाथ विरागी बन कर चले जाते हैं, तब भी त्रैलोक्य सुन्दरी राजमती जो उन्हें अपने मन-मंदिर में पति रूप में स्थापित कर चुकी थी, पुनः उन्हें पाने का प्रयास करती है। तपोभूमि में एक वृद्धा ब्राह्मण को भेजती है[2] और फिर माता के समझाने पर भी विरह की असह्य पीड़ा के कारण[3] सखी के साथ स्वयं उन्हें मनाने पहुँचती हैं।[4] वहाँ वह विरह-विधुरा अनुनय-विनय और प्रलाप करती है तथा उसकी सखी भी उसके विरह की समस्त दशाओं का वर्णन करती है।[5] नेमिनाथ उसकी व्यथा-वेदना से पसीज गये। किन्तु वे पर्वत के उच्चतम शिखर (आनन्दमय कोष्ठ) पर स्थित हो गये थे। अर्थ-काम से ऊपर उठकर वे धर्म-मोक्ष की भूमि में विचरण कर रहे थे, अतः उन्होंने राजमती को प्रबोधन किया और उसे धर्म मार्ग का साथी बनाया।[6] राजमती भी विषय-लालसा से तो उनके निकट गई नहीं थी, वह तो सच्ची साधिका के रूप में अग्रसर हुई थी, नेमि के संयोग से दोनों

---

१. डॉ० फतहसिंह—साहित्य और सौन्दर्य में नेमिदूत का काव्यत्व।

२. नेमिदूत १।१०७

३. मातुः शिक्षाशतमलमवज्ञाय दुःखं सखीना
मन्तश्चित्रवैण्यजनयनियं पाणिपंकोरुहाणि।
हस्ताभ्यां प्राक् सपदि रुदती रुन्धती कोमलाभ्यां
मन्त्र स्निग्धं ध्वनिभिरबला वेणि मोक्षोत्सुकानि ॥१०६॥
रात्रौ निद्रां कथमपि चिरात् प्राप्य यावद् भवन्तं
लब्ध्वा स्वप्ने प्रणयवचनैः किंचिदिच्छामि वक्तुम्।
तावत्तस्या भवति दुरितैः प्राक्-कृतैर्मे विरामः
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥११३॥

४. वही २।७१

५. वही २।७८-१२३

६. तत्सख्योक्ते वचसि सदस्यंस्तां सतीमेक चित्तां
संबोध्येशः समभव विरतो रम्य धर्मोपदेशैः ॥
श्रीमान योगादचल शिखरे केवल ज्ञानमस्मिन्।
नमिर्देवोरग नर गणैः स्तूयमानो धिगम्यः ॥
मामानन्द शिवपुरि परित्यज्य संसार भाजां।
भोगानिष्ठानभिगततनुजं भोजयामास शश्वत् ॥१२५॥

से ऊपर उठकर शाश्वत सुख की वह अभिलाषिणी थी,[१] अतः अपने वरेण्य पति की इच्छा ही में उसकी परम तृप्ति सन्निहित थी। भक्तिकालीन चारो शाखाओ के कवि विप्रलंभ को ऐसे ही उत्कर्ष प्राप्त उदात्त रूप से प्रस्तुत करते थे।

भारवि :

भारवि के किरातार्जुनीयम् मे द्रौपदी के रोष और प्रतिशोध भावना का भी चित्रण हुआ है।

वनवासी पाडवो से द्रौपदी स्त्री-सुलभ अनृत का प्रश्रय लेती हुई आग्रह करती कि वे अपना प्रण तोड़ दें। वह युधिष्ठिर पर ताने कसती है और दुर्दशा का एकमात्र कारण युधिष्ठिर की शान्त नीति ठहराती है, तथा तुरन्त युद्ध छेड देने पर बल देती है। किन्तु युधिष्ठिर तथा अन्य विवेकी जन उसके कथन को धर्म युक्त और व्यावहारिक नही मानते। आगे जब अर्जुन तप करता है तब अप्सरायें उसमें मति-भ्रम उत्पन्न करने के लिए आती है। भारवि ने स्त्री-सौंदर्य का सुन्दर चित्रण किया है।

कुमार दास

सिंहलपति कुमारदास कृत जानकी हरण में दशरथ की रानियो के काव्यमय वर्णन, रानियो के साथ राजा का उपवन विहार, जल-क्रीड़ा, सीता का सौन्दर्य पूर्वानुराग, विवाह और मिलन आदि सुचारुतया अंकित हुए है। इस कृति में केलि-विदग्धा की मनोहारिता का अति सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किया गया है।[२] कवि यह आश्चर्य भी व्यक्त करता है कि ऐसी अपूर्व सुन्दरी की सृष्टि विधाता कैसे कर सका, जबकि उसे बनाते-बनाते अनंग का शरपात होने लगा था।[3] जागतिक व्यवहार की दृष्टि से, पति की प्रसन्नता ही पत्नी के लिए पुरस्कार स्वरूप है।[४] वैसे, तात्विक दृष्टि से तो प्रेम की अग्नि ही सर्वत्र आकाश तक में व्याप्त है।[५]

माघ

शिशुपाल बध मे स्त्रियाँ भी सेना के साथ रहती है। रानियाँ पालकियो में, रानियों की

---

१. दुःखं येनानवधि बुभुजे त्वद्वियोगादिदानीं
 संयोगाते नुभवतु सुखं तद्वपुमें चिराय।
 यस्माज्जन्मान्तर विरचितः कर्मभिः प्राणभाजा
 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण ॥११७॥

२. कैतवेन कलहेषु सुप्तया स शिरन् वसनं आत्तसाध्वसः।
 चौर इति अदितहासविभ्रमं सप्रगल्भं अवखंडितो घरे ॥

३. पश्यन् हतो मन्मथ बाण-पातैः शक्तोविधातृ न निमील चक्षुः।
 उरुविधाग हि कृतौ कथं तावित्यास तस्या सुमातेर्वितर्कः ॥

४. पुष्परत्न विभवैर्यथेप्सितं सा विभूषयति राजनन्दने।
 दर्पणं तु न चकाक्ष योषितां स्वामिसम्मदकरं हि मण्डनम् ॥

५. आततुना ततुना घन दारुभि. स्मरहितं रहितं प्रदिधक्षुणा।
 रुचिरमाचिर भासित वर्त्मना प्रखचिता खचिता न दीपिता ॥

सखियाँ घोड़ों या खरों पर और वेश्याएँ पैदल चलती हैं। वेश्याएँ स्नान अंगप्रसाधन कराने के लिए भी साथ रखी जाती हैं।[१]

चन्द्रोदय हृदय में प्रेम जगा देता है और स्त्रियाँ अपने प्रेमियों को आमंत्रण भेजती हैं।[२] ऋतुएँ भी स्त्री रूप में प्रतीत होती हैं। पुरुष भी उत्कंठित हैं और मद्यपान करते हुए केलिरत हो जाते हैं।[३] स्त्रियाँ जुलूसों, शोभा यात्राओं आदि के देखने के लिए भी बड़ी उत्सुक रहती हैं, कृष्ण की सवारी देखते हुए स्त्रियाँ अनेक भावनाएँ प्रकट करती हैं।[४]

स्वर भाव को समर भाव से संयुक्त कर देना माघ की एक बड़ी विशेषता है।[५] एक व्यक्ति गाढ़ प्रहार से मूर्च्छित हो गया। एक अप्सरा उसे मृत जान कर उसके सूक्ष्म देह को लेने आई। किन्तु इसी बीच हाथी ने उस व्यक्ति पर शीतल जल छिड़क दिया और वह व्यक्ति साँस लेने लगा। इस प्रकार उस अप्सरा का उद्देश्य विफल हो गया।

इसी प्रकार, एक अन्य उदाहरण में, हाथी पर बैठी हुई स्त्री अपने पति को युद्ध में हत देख कर तुरन्त प्राण त्याग देती है और इस प्रकार सतीत्व द्वारा अखण्ड देवत्व प्राप्त करती है। वह अपने पति का स्वर्ग में आलिंगन करती है।[६]

लक्ष्मणसेन

जयदेव के आश्रयदाता लक्ष्मणसेन ने राधाकृष्ण के माधुर्य भाव का चित्रण करने[७] वाला पद बनाया था।

धोयी

धोयी का पवनदूत मेघदूत के ढंग पर एक गन्धर्व कुमारी द्वारा लक्ष्मणसेन को भेजे गये संदेश का वहन करता है।

उमापतिधर

उमापतिधर का एक श्लोक स्वप्नज्ञान का आधार लेता हुआ पति-पत्नी-प्रेमिका के

१. शिशुपालवध सर्ग ६

२. वही, सर्ग ६

३. वही, सर्ग १०

४. वही, सर्ग १४

५. कश्चित् मूर्च्छामित्य गाढ़ प्रहारः सिलः शिते शीकरैर्वारणस्य।
उच्चश्वास प्रस्थिता तं जिघृक्षुर्व्यर्थाकूता नाकनारी मुमूर्च्छा।

६. त्यक्त प्राणं संमुगे हस्थिनीस्था वीक्ष्य प्रेम्णा तत्क्षणादुपुगतासुः।
प्राप्याखण्डं देव भूयं सतीत्वादा शिश्लेष स्वेव कज्जित् पुरन्ध्री।

७. देखिए :—रूप गोस्वामी पद्यावलि में संगृहीत कवियों के पद हैं :—
आहूताम मयोत्सवे निशिगृहं शून्यं विमुच्यागता
क्षीव (प्रेष्य जनः) कथं कुलवधुरे काकिनी यास्यति
वत्सत्वं तदिमां नयालभीमति श्रुत्वा यशोदा गिरो
राधा माधवयोर्जयन्ति मधा स्मेरालयाहृप्दव्यः॥

मनः संबंध प्रकट करता है।[1]

शिवदास

उत्प्रेक्षावल्लभ शिवदास का भिक्षाटन काव्य भिक्षुकवेषी शिव को देखकर इन्द्र की अप्सराओं में जगे काम भाव का चित्रण करता है। इस प्रकार संस्कृत धार्मिक काव्य में स्फुट रूप में नारी के विषय में कवियों ने अपनी मान्यताएँ व्यक्त की है। वस्तुतः ये विचार तत्कालीन समाज के थे और हमारे विवेच्य काल—भक्तिकाल—पर इन विचारों का गहरा प्रभाव था।

मेण्ठ

हयग्रीव वध के लेखक मेंठ का एक पद प्रसिद्ध है कि अकृत्रिम उत्ताल हास के कारण जब ग्राम विलासिनी का अधर खिल उठता है तब उसके मुख का मूल्य एक पूरे राज्य के समान हो जाता है।[2]

शिव स्वामिन्

शिव स्वामिन् के कप्फणाभ्युदय में भी सैनिकों की स्त्रियों के साथ जल-क्रीडा,[3] वन-विहार,[4] चन्द्रोदय से प्रेमोद्दीपन,[5] मद्य-पान[6] और कामकेलि[7] माघ कवि की भाँति ही अंकित हुए है।

इनके अतिरिक्त कामशास्त्र के नियमों का प्रतिपादन[8] एवं शिव के गणों की भी युद्ध काल में क्रीड़ाएं आदि उन सैनिकों के मध्यकालीन सैनिकों की रूप में प्रकट करती है।

दामोदर गुप्त

दामोदर गुप्त (काश्मीर के जयापी—७७६-८१३ का मंत्री) कृत कुट्टिनीमत में एक युवती को अपने लिए धन कमाने की शिक्षा दी गई है। यह कमाई होती है चाटुकारी तथा मिथ्या प्रेम द्वारा—ऊपर से प्रेम किन्तु भीतर धन-लालसा बनाये रखते हुए। इसमें छिप कर किये गये परकीया प्रेम के महत्व का प्रतिपादन है।[9] दामोदर गुप्त ने इसमे कामसूत्र के अपने दीर्घ अध्ययन का उपयोग किया है। एक रतिनिष्णात व्यक्ति द्वारा उत्पन्न की हुई यह हास्यजनक

---

१. निर्मग्नेन मयाम्भसि प्रणयतः पाली समालिंगिता।
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि।
इत्युत्स्वप्न परम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्गिणो।
रुक्मिणा शिथिलीकृतः सकपटं कण्ठग्रहः पातु वः॥

२. तथापि अकृतकोत्तालहास पल्लविता धरम्।
मुखं ग्राम विलासिन्याः सकलं राज्यमर्हति॥

३. सर्ग ६
४. सर्ग १०
५. सर्ग ११
६. सर्ग १३
७. सर्ग १४
८. सर्ग १६

९. पर्य्यगः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनोहरं सदनम्।
नार्हंति लक्षांशमपि त्वरितक्षण चौर सुरतस्य॥

स्थिति कि वह सुरत सुख में नेत्र-निमीलित प्रिया को मृत जान कर छोड़ खड़ा होता है। वही मनोरम है।[१]

क्षेमेन्द्र

काश्मीर के क्षेमेन्द्र की समय मातृका एक वेश्यामाता द्वारा एक नई बनाई हुई वेश्या को मिथ्या प्रेम से धन ऐंठने की शिक्षा देने की कथा है। इसी कवि के चतुर्वर्ग संग्रह क्षेमेन्द्र में गृहस्थ धर्म और विशेषतः प्रेम का वर्णन अधिक हुआ है।

क्षेमेन्द्र का प्रभाव जल्हण के मुग्धोपदेश में भी स्पष्ट है, जिसमें वेश्याओं की चालों का चित्रण है।

क्षेमेन्द्र से ५० वर्ष बाद अमित गति ने सुभाषितरत्न संदेह (सं० ९९४ में) लिखा। इसमें ३२ अध्याय है। छठे अध्याय में स्त्रियों के दोष दिखाये गये हैं और चौबीसवें में वेश्या जीवन का चित्रण है।

हेमचन्द

हेमचन्द के योगशास्त्र में भी स्त्री-निन्दा का सतत कथन है।

सोमप्रभ

सोमप्रभ की शृंगार वैराग्य तरंगिणी (सं० १२७६ ई०) तो जैसे अपने ४६ श्लोकों में केवल स्त्री प्रेम की निन्दा करने के लिए ही प्रवहित हुई है।

भट्ट उर्वीधर (समय : अज्ञात)

हास्य व्यंगमय शैली में अनेक विवाह करते चले जाने वाले और वृद्धावस्था में भी विवाह करने वाले लोगों की विवेकहीनता प्रकट की गई है।[२]

वैनतेय :

वैनतेय दरिद्र गृहस्थी का चित्र हास्यमय ढंग से खींचते हुए कहता है कि दीनजन एक ही कोठरी में पिचपिच रूप से रहते हैं, यहां तक कि उनके प्रसूति कार्य भी उसी में होते हैं।[१]

बृहत्संहिता :

वैराग्यवृति के कारण संतों में नारी-निन्दा की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। ऐसे लोगों की

---

१. शृणु सखि कौतुकमेकं ग्राम्येण कुकामिना यदद्यकृतम्।
सुरत सुख मीलिताक्षी मृतेति भीतेन मुक्तासिम॥

२. आ सप्ततेर्यस्य विवाह पंक्ति विच्छिद्यते नूनम पण्डितो सौ।
जीवन्ति ताः कर्तं नकुट्नाभ्यां गोम्यः किमुक्षा मवसं ददाति॥

१. तस्मिन्नेवगृहोदारे रसवती तत्रैव सा कण्डनी
तत्रोपस्करणानि तत्र शिशवस्तत्रैव वासः स्वयम्।
सर्वं सोढवतो पि दुःस्थगृहिणः किं ब्रूमहे तां दशा
मद्यश्चो जनयिष्यमाण गृहिणी तत्रैव यत् कुप्यति॥

कड़ी खबर वराह मिहिर ने ली है। सम्भवतः वही ऐसा एकमात्र व्यक्ति है। वह कहता है, जो वैराग्य मार्ग के कारण स्त्रियों के गुणों को छोड़कर केवल दुर्गुणों का कथन करते हैं, वे दुर्जन हैं। ऐसा कौन दोष है जो पुरुष नहीं करते, पर धृष्टतावश वे नारी निन्दा करते हैं। मनु ने कहा है कि नारियां गुणों में पुरुषों से अधिक है। मनुष्य स्त्री से ही उत्पन्न हुआ है, चाहे वह पत्नी हो, चाहे माता। शास्त्र मे विवाह-प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन करना सभी के लिए एक सा दोष कहा गया है, किन्तु पुरुष उसकी परवाह नहीं करते अतः नारियाँ श्रेष्ठ है। निष्पाप स्त्रियों की निन्दा करने वाले असाधुओं की धृष्टता ऐसी है, जैसे चोरी करते हुए भी चोर ठहर, चोर ठहर ऐसा चिल्लाते है। पुरुष एकान्त में स्त्रियों की चाटुकता करते हैं, पर विवाह करके वे वाक्य भुला देते हैं, जबकि स्त्रियाँ पति की मृत्यु पर उसके साथ चिता में जल जाती है।

बृहत्संहिता मे नारी-निन्दा का कारण यह बताया गया है कि जो व्यक्ति वैराग्य में लगते है, वे अपने दोषों के लिए नारी को उत्तरदायी ठहराते है।[1]

हितोपदेश :

हितोपदेश से ज्ञात होता है कि बंगाल के तान्त्रिको में गौरी पूजा पर-स्त्री-गमन से संबद्ध हो गई थी। कहानी में एक स्त्री गाव के जमींदार के पुत्र से प्रेम करने लगती है और भेद खुलने पर भी अपने पति और जमींदार को मूर्ख बनाकर अपनी तथा प्रेमी की रक्षा कर लेती है।[2] हितोपदेश मे भी नारियों के विषय मे ऊँची धारणा व्यक्त नहीं की गयी है। उसमें लिखा है कि स्त्रियो की भोजन मात्रा दुगुनी, चालाकी चौगुनी, अविचारपूर्ण कार्य छःगुना और काम भाव आठगुना होता है।[3] पर-पुरुष ससर्ग में रंगे हाथों पकड़ी जाने पर भी वे प्रत्युत्पन्नमतित्व से बच निकलने की युक्ति निकाल लेती है। सुहृद भेद की दूसरी, विग्रह की सातवी, संधि की चौथी और काकोलूकीय की ग्यारहवी कथा एतदर्थ द्रष्टव्य है।[4] स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।[5] गोद में पड़ी युवती की भी चौकसी करनी चाहिये।[6]

गुणाढ्य-बृहत्कथा :

विवाहों में जाति की एकता चाही जाती थी। सुरमंजरी का विवाह, जो मातंग-पुत्री

---

१. ये व्यंगनाना प्रवदन्ति दोषान् वैराग्य मार्गेण, विहाय दोषान्

२. भाग ३, कथा ६

३. आहारो द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासा चतुर्गुणः
   षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः —हितोपदेश सुहृद भेद १२०

४. सुहृद् भेद की दूसरी कथा—
   विग्रह की सातवी कथा—मन्दमति
   संधि की चौथी कथा—समुद्रदत्तवणिक
   काकोलूकीय की ११ वी कथा—वीर घर रथकार

५. मित्रलाभ १६

६. अंके स्थितापि युवती परिरक्षणीया।

के रूप में विख्यात थी, अवन्तिवर्धन से तभी ठीक माना गया, जब उसका क्षत्रियत्व विदित हो गया।

नरवाहनदत्त :

नरवाहनदत्त ने २६ विवाह किये। इससे बहुविवाह का सोमाधिक्य प्रकट होता है।; इसकी एक पत्नी मदनमंचुका पहले एक वेश्या थी, जो अपने सद्वृत्त के कारण कुल स्त्री बन गई। स्पष्ट है कि वेश्याओं की स्थिति काफी अच्छी थी, फिर भी उनसे विवाह करना अच्छा नहीं माना जाता था जैसा कि यौगंधरायण द्वारा कलिंगसेना के उदयन से विवाह की स्वीकृति नहीं दिये जाने से प्रकट है।

क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मंजरी में भी स्त्री समाज का ऐसा ही चित्र है।

कथा सरित्सागर

इसके एक खण्ड में स्त्रियों की अनाचारिता अंकित है। एक स्त्री अपने पति के हाथ काट डालती है, क्योंकि उसने उसे पीटा था। एक स्त्री सदा पातिव्रत्य-भंग में रत रहती है, किन्तु पति की मृत्यु पर सती हो जाने का आग्रह करती है। एक स्त्री दसपति कर लेने के पश्चात् एक ऐसे व्यक्ति से विवाह करती है जिसने दस पत्नियाँ छोड़ दी थीं और फिर उसे भी पराजित कर देती है, और इस प्रकार बहुत अधिक कुख्यात हो जाने पर संन्यासिनी बन जाती है। एक राजा का सफेद हाथी उसके राज्य की ८००० स्त्रियों में से मिली हुई एकमात्र पतिव्रता के स्पर्श से चंगा होता है राजा उस स्त्री की बहन से विवाह करता है, किन्तु धोखा खाता है। राजा रत्नाधिप का हाथी छत्तीस सहस्र रानियों के स्पर्श से नहीं जिया पर हर्ष गुप्त की पतिव्रता पत्नी शीलवती के छूते ही जी उठा। कथा सरित्‌ सागर—तरंग ३६।

सभी स्त्रियाँ असती नहीं हैं। सती साध्वी स्त्रियों की भी कमी नहीं है। देवस्मिता का सतीत्व रक्षण, धर्मदेव की पत्नी की पतिभक्ति तथा अन्यान्य स्त्रियों के सद्गुण, अतिथि सेवा आदि गुण स्त्रियों के सौजन्य को सामने लाते हैं।

वैताल पंचविंशतिका :

इसमें भी पतिपरायणा स्त्रियों की महिमा बतानी गयी है। ऐसी सुन्दरियाँ वीरता से ही वरणीय हैं और इनके लिए पुरुष अपना सिर भी समर्पित कर देते हैं। अनेक प्रेमित्व भी इन कहानियों में प्रदर्शित हुआ है।

शुक सप्तति :

इसकी लगभग आधी कहानियाँ विवाह-बंधन की पवित्रता भंग की कहानियाँ है। कुछ में वेश्याओं की धोखा धड़ियों का चित्रण है। धर्म का पाखण्ड व्यभिचार को आश्रय देता है। धार्मिक उत्सवों के दुराचार को छिपाने का साधन बना लिया जाता है। फिर भी कामुकता विगर्हणीय है। मदन सेन को अपनी पत्नी के प्रेम में ही डूबे रहने के कारण निन्दनीय समझा गया है।

सिंहासन त्रिंशिका भी पत्नी के विश्वासघात की कहानी है। ये सब कहानियाँ कल्पना प्रसूत तथा विनोद लक्ष्मी हैं, और इनसे तत्कालीन समाज का चारित्र्य-पतन सिद्ध नहीं होता।

एक वृद्धपति चोरी करने को घुसे हुए चोर का अभिनन्दन करता है, क्योंकि चोर के भय से उसकी युवा पत्नी ने उसका गाढ़ालिंगन किया है।[१]

सत्तू ब्राह्मण की कथा से ज्ञात होता है कि पति अपनी पत्नी को पीट भी देते थे।[२]

पंचतंत्र में विवाह-धर्म को तोड़ने वालों की सर्वत्र निन्दा की गई है तथा कहा गया है कि गृहिणीहीन गृह जंगल से भी अधिक दु:खद है।[३]

वररुचि और नन्द की कथा, स्त्रीजित पुरुष का मनोरंजक उदाहरण है। पंचतंत्र में अनेक स्थानों पर कुमारियों के दोषों का भी उद्घाटन किया गया है। यथा,

झूठ, दु:साहस, कपट, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता स्त्रियों के सहज दोष हैं।[४] उनका स्वभाव समुद्र की लहरों के समान चंचल है।[५] और प्रेम संध्याभ्र के रंगों के समान क्षणिक होता है।[६] वे एक पुरुष से बात करती हैं, दूसरे को कटाक्ष से देखती हैं और तीसरे को मन में स्मरण करती हैं।[७] पर-पुरुष के लिए वे लालायित रहती हैं।[८] नारी कभी पतिव्रता नहीं रह सकती।[९] वे मंदबुद्धि होती हैं, केवल अपना सुख चाहती हैं।[१०] कन्या तो जन्म से माता-पिता की चिन्ता का हेतु बनती है।[११]

अपभ्रंश काल में नारी चित्रण :

राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में, अपभ्रंश काल के सामन्त-जीवन में "सैकड़ों जनता को अपनी सुन्दर लड़कियों को वैध या अवैध रूप से रनिवास में भेजने के लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता की प्रथम रात भी सामन्त के लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथ से छूकर ही छुट्टी दे दे।"[१२] "उस समय के सामन्त जीवन का उद्देश्य या चाहे जैसे भी हो दुनिया का आनन्द खूब डट करके लेना। स्वयम्भू[१३] और पुष्पदन्त[१४] ने सामन्त

---

१. तृतीय तंत्र की छठी कहानी
२. चतुर्थ तंत्र की कहानी
३. गृहं तु गृहिणी हीन कान्तारादतिरिच्यते। पंचतंत्र—४।८१
४. मित्र भेद २०७
५. मित्र भेद २०६
६. मित्र भेद २०६
७. मित्र भेद १४६
८. मित्र भेद १८५-१९२
९. काकोलूकीय १६६, अपरीक्षत ९३
१०. काकोलूकीय ६०-६२
११. पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
    दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति, कन्या पितृत्वं खलुनाम कष्टम्॥
१२. हिन्दी काव्य धारा-भूमिका पृ० १८
१३. रचनाकाल ७९० ई०

जीवन के इन पहलुओं—भोग भोगना, और मृत्यु को तृणवत् समझना का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछे के काव्यों में हमें नहीं मिलता। सामन्त को मृत्यु की कोई पर्वाह नहीं थी, न मृत्यु के बाद की। विजय हुई तो उसके चरणों में सारे भोग पड़े हैं।"[१]

स्वयंभू अपभ्रंशकाल के एक महान कवि थे। उन्होंने तत्कालीन नारी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। श्री राहुलजी के अनुसार, "सामन्त समाज के वर्णन में उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। किसी एक सुन्दरी के सौन्दर्य को जितनी अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन स्त्रियों के सामूहिक सौन्दर्य का चित्रण करने में उसने कमाल कर दिया है। चित्रकार की भाँति कवि के सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिये। स्वयंभू ने राष्ट्रकूटों के रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदों को नजदीक से देखा था वहाँ परदा बिल्कुल नहीं था, इसलिये और सुविधा थी। उसी सौन्दर्य को उसने रावण और अयोध्या के रनिवासों के सौन्दर्य के रूप में चित्रित किया है। सामन्ती युग में स्त्रियों का अधिकार ही क्या हो सकता है। तो भी सिद्ध-युग तथा बाद की शताब्दियों की अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बेहतर जरूर थी। स्वयंभू ने सीता का जो रूप रावण को जवाब देते और अग्नि परीक्षा के समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।"[२]

अपभ्रंश के जैन कवियों के समय तक राधा-कृष्ण की लीलाओं का जनता में प्रचार हो चुका था और इन कवियों ने भी राधा-कृष्ण पर शृंगारपरक रचनाएँ कीं। कहीं धूलि-धूसरित कृष्ण गोपियों को क्रीड़ा रस से वशीभूत करते हुए,[३] कहीं राधा के पयोधर हरि को नचाते हुए[४], और कहीं नौका-लीला में कृष्ण द्वारा नाव को डगमग देने पर गोपी का कृष्ण का आन्तरिक अभिप्राय जानकर भी ऊपर से भयाकुल होना[५] अंकित किया गया है।

क्रमशः कृष्ण-कथा का यह आवरण भी शृंगार से हटता चला गया और वह लौकिक नायक-नायिकाओं के आश्रय पर परिस्फुटित होने लगा। अब कविगण विरहणियों को प्रतीक्षाकुलता में दीवार पर दिन-गणना की लकीरें खींचते हुए,[६] दिन गिनते-गिनते उनकी

---

१. हिन्दी काव्य धारा—भूमिका पृ० ४८-४६

२. वही—पृ० ५१-५२

३. धूली धूसरेण वर युवकसरेण तिणा मुरारिणा।
कीला रस वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा॥
पुष्पदन्त, आदि—उत्तर पुराण पृ० ६४

४. हरिनच्चाविउ अंगणइ विह्माइ पाडिउ लोउ।
एम्बहि राह पओहरहं जं भावइ तं होउ॥
हेमचन्द :१२वीं शती द्वारा संकलित दोहा।

५. प्रेम-विह्वल गोपी का चित्र—
अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोड़ि डगमग कुगति णदेहि।
तइ इत्थि णइहि संतार देई जो चाहइ सो लेहि॥ —प्राकृत पैंगलम् १२।६

६. अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गण्डीए।
पढम विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चित्तलिओ॥ —हाल, गाथा सतसई ३।८

दशकुमार चरितम् :

दण्डी के दशकुमार चरित मे मुग्ध प्रेमियो के तथा निम्नवर्गीय जीवन और वेश्यादिकों का खुलकर चित्रण हुआ है। अनैतिकता पर कोई आवरण नही डाला गया है, फिर भी लेखक का उद्देश्य नैतिकता ही है। यद्यपि वह इसे भी न्याय मानता है कि धर्म-अर्थ-मोक्ष में से यदि एक का त्याग अन्य दो की सम्यक पूर्ति मे सहायक होता हो, तो उसका त्याग कर दिया जाना चाहिये। एक राजकुमार दूसरे की पत्नी को प्राप्त करना भी धर्म-विहित मानता है। विश्रुत धोखा-धड़ी के लिये मंदिर का और दुर्गा के नाम का प्रयोग करता है। चन्द्रदेव व्यभिचार की पुष्टि करते है, और मारीचि साधु को पथभ्रष्ट करने के लिए एक वेश्या स्वर्ग के व्यभिचारो के दृष्टान्त प्रस्तुत करती है। भिक्षुणियाँ दूती का कार्य करती है, और एक बौद्ध स्त्री वेश्याओं की प्रमुख वेश्यामाता है। रानी वसुन्धरा मिथ्याभाषी हैं और चन्द्रसेना किसी भी लाभ के लिए अपना सुन्दर मुख बन्दरी जैसा बनवाने को तैयार नही है।

सुबन्धुकृत वासवदत्ता :

राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु के राजा शृंगार शेखर की पुत्री वासवदत्ता से प्रेम और विवाह इसकी कथावस्तु है।

प्रबन्ध चिन्तामणि :

इसमें लिखा है कि मयूर की साध्वी पत्नी के शाप से बाण कोढ़ी हो गया था।[1]

बाण :

बाण ने प्रथम प्रेम का बड़ा मर्मस्पर्शी और सजीव चित्रण किया है। कादम्बरी जब पहली बार प्रेम प्रभावित होती है तब यौवनोद्वेग और कौमार्य पूर्ति की परस्पर विपरीत धाराओं में बहती है।

हर्ष चरित :

चतुर्थ उच्छ्वास के पृ० १४०-४१ पर युवती कन्या पिता को चिन्ता के भँवर में डाल देती है।[2] फिर भी पिता का स्नेह कन्या पर असीम ही रहता है। प्रभाकरवर्धन अपनी स्नेह लालिता पुत्री के प्रति उद्विग्न आकुलता व्यक्त करता है।[3]

---

१. पृ० ६४-६५

१. हर्षचरित, छठा उच्छ्वास—इंडियन कल्चर, स० ४ पृ० २१६,
उद्वेगमहावर्तें पातयति पयोधरोन्नमन काले।
सिरदिव तटमनुवर्षं विवर्धमाना सुता पितरम्॥

२. हर्ष चरित—छठा उच्छ्वास—इंडियन कल्चर स० पृ० २१६
मदंगसंभूतान्यक लालित न्यपरि त्याज्यान्यपत्यकाव्य काण्ड एवापरथा-संस्तुते नीर्यन्ते॥

हर्षचरित में प्रभाकर वर्धन की पत्नी यशोवती चिता पर चढ़ते हुए अपने वीरजा, वीरजाया, वीरजननी होने का गर्व प्रकट करती है।

चम्पू :

सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू (रचनाकाल सन् ६५६ ई०) में राजमाता—एक स्त्री—को पशुबलि पोषक बताया गया है। चन्द्रमती की व्यभिचार प्रवृत्ति और उसके हत्या प्रवृत्ति जन्मान्तरों में भी आवृत्त हुई है।

भर्तृहरि—शृङ्गार शतक :

इस संसार सागर में मनुष्य रूप मीनों को फँसाने के लिये स्त्री जाति बंसी है। स्त्री जाति संदेहों का भँवर, अविनयों का लोक, दुःसाहसों का नगर, दोषों की अक्षयनिधि, सैकड़ों कपट वाली, स्वर्गद्वार का विघ्न, अविश्वासों की जन्मभूमि, नरकपुरी का द्वार, मायामोह की पेटी, ऊपर से अमृतमय पर भीतर से विषमय और प्राणियों को बाँधने का पाश है।

राजतरंगिणी

इसमें उल्लिखित है कि सहस्रों कुलीन स्त्रियों के स्पर्श से जो चट्टान नहीं हिलती, वही चन्द्र कुल्यानदी की चट्टान एक पतिव्रता कुम्हारिनी के स्पर्श से हट गयी।

भोज प्रबंध :

एक पतिव्रता ने पुत्र को आग में जलते देखकर भी पति की नींद बिगड़ने के भय से नहीं जगाया। उस समय आग बालक के लिए चन्दनवत् शीतल हो गई, बालक जला नहीं।[1] भोज प्रबन्ध में स्त्रीजित के मनोरंजक उदाहरण भी हैं। अकबर बीरबल विनोद में भी स्त्रीजित के एक दो विनोदमय उदाहरण हैं।

भोज प्रबन्ध में स्त्री पुंवच्च सूत्र की समस्यापूर्ति स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदातद्धि गेहं विनष्टम् कह कर की गई है अर्थात् स्त्री के पुरुष बन जाने पर घर नष्ट हो जाता है। एक नीति श्लोक का प्रतिपाद्य है कि स्त्री-बुद्धि प्रलयकारी होती है।[2]

कथा काव्य में नारी

पंचतंत्र :

तत्कालीन नर-नारी सम्बन्ध का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से इसमें किया गया है। यहाँ उसकी कुछ कहानियों के संक्षेप देकर उस समय की नारी-भावना का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

एक जुलाहे की पत्नी एक भूमिपति से अवैध सम्बन्ध बढ़ाना चाहती थी। एक कुट्टिनी उसकी सहायता के लिए उसके वेष में उसके यहाँ कार्य करने लगती है। जुलाहा उसे अपनी पत्नी समझकर क्रोधान्ध होकर उसकी नाक काट लेता है।[3]

---

१. श्लोक २६२

२. आत्मबुद्धिः शुभकारी गुरुबुद्धिर्विशेषतः।
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकारी॥

३. प्रथमतंत्र की कहानी

एक वृद्धपति चोरी करने को घुसे हुए चोर का अभिनन्दन करता है, क्योंकि चोर के भय से उसकी युवा पत्नी ने उसका गाढ़ालिंगन किया है।[१]

सत्तू ब्राह्मण की कथा से ज्ञात होता है कि पति अपनी पत्नी को पीट भी देते थे।[२]

पंचतंत्र में विवाह-धर्म को तोड़ने वालों की सर्वत्र निन्दा की गई है तथा कहा गया है कि गृहिणीहीन गृह जंगल से भी अधिक दुःखद है।[३]

वररुचि और नन्द की कथा, स्त्रीजित पुरुष का मनोरंजक उदाहरण है। पंचतंत्र में अनेक स्थानों पर कुमारियों के दोषों का भी उद्घाटन किया गया है। यथा,

झूठ, दुःसाहस, कपट, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता स्त्रियों के सहज दोष हैं।[४] उनका स्वभाव समुद्र की लहरों के समान चंचल है।[५] और प्रेम संध्याभ्र के रंगों के समान क्षणिक होता है।[६] वे एक पुरुष से बात करती हैं, दूसरे को कटाक्ष से देखती हैं और तीसरे को मन में स्मरण करती हैं।[७] पर-पुरुष के लिए वे लालायित रहती हैं।[८] नारी कभी पतिव्रता नहीं रह सकती।[९] वे मंदबुद्धि होती हैं, केवल अपना सुख चाहती हैं।[१०] कन्या तो जन्म से माता-पिता की चिन्ता का हेतु बनती हैं।[११]

अपभ्रंश काल में नारी चित्रण :

राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में, अपभ्रंश काल के सामन्त-जीवन में "सैकड़ों जनता को अपनी सुन्दर लड़कियों को वैध या अवैध रूप से रनिवास में भेजने के लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता की प्रथम रात भी सामन्त के लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथ से छूकर ही छुट्टी दे दे।"[१२] "उस समय के सामन्त जीवन का उद्देश्य था चाहे जैसे भी हो दुनिया का आनन्द खूब डट करके लेना। स्वयम्भू[१३] और पुष्पदन्त[१४] ने सामन्त

१. तृतीय तंत्र की छठी कहानी
२. चतुर्थ तंत्र की कहानी
३. गृहं तु गृहिणी हीन कान्तारादतिरिच्यते। पंचतंत्र—४।८१
४. मित्र भेद २०७
५. मित्र भेद २०६
६. मित्र भेद २०६
७. मित्र भेद १४६
८. मित्र भेद १८५-१६२
९. काकोलूकीय १६६, अपरीक्षत ६३
१०. काकोलूकीय ६०-६२
११. पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
 दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति, कन्या पितृत्वं खलुनाम कष्टम्॥
१२. हिन्दी काव्य धारा-भूमिका पृ० १८
१३. रचनाकाल ७९० ई०
१४. रचनाकाल ९५९-९७२ ई०

जीवन के इन पहलुओं—भोग भोगना, और मृत्यु को तृणवत् समझना का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछे के काव्यों में हमें नहीं मिलता। सामन्त को मृत्यु की कोई पर्वाह नहीं थी, न मृत्यु के बाद की। विजय हुई तो उसके चरणों में सारे भोग पड़े हैं।"[1]

स्वयंभू अपभ्रंशकाल के एक महान कवि थे। उन्होंने तत्कालीन नारी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। श्री राहुलजी के अनुसार, "सामन्त समाज के वर्णन में उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। किसी एक सुन्दरी के सौन्दर्य को जितनी अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन स्त्रियों के सामूहिक सौन्दर्य का चित्रण करने में उसने कमाल कर दिया है। चित्रकार की भाँति कवि के सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिये। स्वयंभू ने राष्ट्रकूटों के रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदों को नजदीक से देखा था वहाँ परदा बिल्कुल नहीं था, इसलिये और सुविधा थी। उसी सौन्दर्य को उसने रावण और अयोध्या के रनिवासों के सौन्दर्य के रूप में चित्रित किया है। सामन्ती युग में स्त्रियों का अधिकार ही क्या हो सकता है। तो भी सिद्ध-युग तथा बाद की शताब्दियों की अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बेहतर जरूर थी। स्वयंभू ने सीता का जो रूप रावण को जवाब देते और अग्नि परीक्षा के समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।"[2]

अपभ्रंश के जैन कवियों के समय तक राधा-कृष्ण की लीलाओं का जनता में प्रचार हो चुका था और इन कवियों ने भी राधा-कृष्ण पर शृंगारपरक रचनाएँ कीं। कहीं धूलि-धूसरित कृष्ण गोपियों को क्रीड़ा रस से वशीभूत करते हुए,[3] कहीं राधा के पयोधर हरि को नचाते हुए[4], और कहीं नौका-लीला में कृष्ण द्वारा नाव को डगमग देने पर गोपी का कृष्ण का आन्तरिक अभिप्राय जानकर भी ऊपर से भयाकुल होना[5] अंकित किया गया है।

क्रमशः कृष्ण-कथा का यह आवरण भी शृंगार से हटता चला गया और वह लौकिक नायक-नायिकाओं के आश्रय पर परिस्फुटित होने लगा। अब कविगण विरहिणियों को प्रतीक्षाकुलता में दीवार पर दिन-गणना की लकीरें खींचते हुए,[6] दिन गिनते-गिनते उनकी

---

१. हिन्दी काव्य धारा—भूमिका पृ० ४८-४६
२. वही—पृ० ५१-५२
३. धूली धूसरेण वर युवकसरेण तिणा मुरारिणा।
   कीलया रस वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा॥
   पुष्पदन्त, आदि—उत्तर पुराण पृ० ६४
४. हरिनच्चाविउ अंगणइ विह्माइ पाडिउ लोउ।
   एम्वहि राह पओहरहं जं भावइ तं होउ॥
   हेमचन्द्र :१२वीं शती द्वारा संकलित दोहा।
५. प्रेम-विह्वल गोपी का चित्र—
   अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।
   तइ इत्थि णइहि संतार देई जो चाहइ सो लेहि॥ —प्राकृत पैंगलम् १२।६
६. अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गण्डीए।
   पढम विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चित्तलिओ॥ —हाल, गाथा सतसई ३।८

उंगलियों को जर्जर होते हुए,[1] तथा पपीहे की पिउ-पिउ सुनकर उनके मन को अधिक व्यथा पाते हुए,[2] और प्रिय से आशा-पूर्ति न होती देखकर और भी निराश होते हुए,[3] अंकित करने लगे। प्रिय स्वागत के हेतु विरहिणी ने नयनोत्पल से पथ प्रकीर्ण किया है और कुच-कलश हृदय द्वार पर स्थापित किये हैं।[4] इन कवियों ने अभिसारिका की आतुरता का भी सुन्दर अंकन किया है। प्रिय-मिलन के लिए नायिका इतनी उतावली है कि वह अभिसरण समय से पूर्व ही घर में इधर-उधर घूमने लग जाती है।[5] कभी-कभी कोई मुग्धा प्रिय-सौन्दर्य पर इतनी विमोहित हो जाती है कि अंग-तृप्ति भूल कर रूपसुधा पान में ही रात्रि बिता देती है।[6] उधर नायक भी कम रसिक नहीं है। नयिका की बाँकी दृष्टि उनके हृदय पर अनीदार भाले की भाँति चोट करती है[7] और वयस्का प्रौढ़ा नायिका भी उन्हें शर्कराखण्डवत् प्रतीत होती है।[8]

अपभ्रंश-काल के कवियों ने नारी-सौन्दर्य,[9] जो सामन्ती ढंग का है भिन्न-भिन्न देशों

---

१. जो मइ दिण्णा, दिअहडा दइए पवसेतंण ।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरि आउ नहेण ।
हेमचन्द्र सकलित दोहा

२. बप्पीहा पिउ पिउ भणवि किंतिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पणु वल्लहइ बिहुंवि न पूरिअ आस ॥
हेमचन्द्र—प्राकृत व्याकरण

३. बप्पीहा कइ बोल्लिएण निग्घिण वारिंहि वार ।
सायर भरि अइ विमल जल लहइ न एकइ धार ॥
हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण

४. रत्था पइण्णणा अणुप्पला तुमंसा पडिच्छये एन्तम ।
दारणि हियेहि दोहिवि मंगल कलसें हिव थणेहि ॥
हाल, गाथा सतसई २१४२

५. अज्ज मए गन्तव्य घण अन्धारे वि तस्स सुहस्स ।
अज्जा निमीलि अच्छो पअ परिवाडि घरे कुरइ ॥
वही ३।४६

६. अंगहिं अंग न मिलिउ हलि अहरें अहर न पत्तु ।
पिउ जो अन्ति है मुह कमल एम्बहि सुरहु सुमत्तु ॥
हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण

७. विट्ठी ए मइ भणिय तुहुं मा कुरु वकी दिट्ठ ।
पुत्ति सकण्णी मल्लि जिवं मारइ हिमइ पइट्ठ ॥
—वही

८. मंज भणइ मुणालव इ जुव्वण गयुं न झूरि ।
जो सक्कर सय खण्ड थिय सोविस मीठी चूरि ॥

९. स्वयं भू देव—सीता-सौन्दर्य (रामायण २६।३ ३८।३) मन्दोदरी-सौन्दर्य (रामायण १०।२-३, ४१।४) रावण की अन्तःपुरस्थ स्त्रियों का सौन्दर्य (रामायण ४०।११,

की नारियों के रहन-सहन और स्वभाव,[1] नखशिख,[2] यत्किंचित् नायिका भेद,[3] आभूषण-सज्जा,[4] भोग में योग[5] या भोग से निर्वाण,[6] प्रेम का स्वरूप,[7] मिलन,[8] हाव-भाव[9]

४७।५) अयोध्या की अन्तःपुरस्थ नारियों का सौन्दर्य (रामायण ६६-२१)
विभिन्न देशों की नारियों का सौन्दर्य (रामायण ४६।८ ७१।६)
पुष्पदन्त—आदि पुराण—पृ० ३१-३२-४६
धनपाल—भविसयत्त कहा—पृ० ३२-३३
बब्बूर—Bibleothica Indica (1902) 185,523
हरिभद्र सूरि—णेमिणाह संधि ७ चरित्र
सोमप्रभ सूरि—कुमारपाल प्रतिबोध राजशेखर सूरि—नेमिनाथ फाग पृ० ८३-८४

१. स्वयं भू दे—रामायण ४६।८ तथा ७१।६ —कुछ अन्य कवि भी
२. स्वयं भू देव—नारी सौन्दर्य के अनेक स्थलों पर।
पुष्पदन्त—णाय कुमार चरित, ६ पृ० १२
अन्य कवियों के शृंगार वर्णनों में
३. पुष्पदन्त—कुपिता नायिका
अबदुर्रहमान : १०१० ई० लगभग : प्रोषित नायिका द्वारा संदेश-प्रेषण
४. स्वयं भू देव—सौन्दर्य वर्णनों में।
पुष्पदन्त—सौन्दर्य वर्णनों में।
धनपाल—(१००० ई० लगभग)—भविसयत्त कहा पृ० ६७-६८
जिन पद्मसूरि—(१२०० ई० लगभग) आभूषण शृंगार सज्जा-थूलिभद्द फागु पृ० ३६-४०
राजशेखर सूरि—[१३०० ई० लगभग] शृङ्गार सज्जा—नेमिनाथ फाग पृ० ८३-८४
अन्य कवियों में यत्र तत्र।
५. गोरखपा :८४५ ई०: गोरखबानी—४६।१४२, ५१।१४६,५३।१५५ ५४।१५६,
तिलोपा : ६५० ई० : कण्हपा : ८४० ई० : दोहाकोष २८-३२
अनेक सिद्ध कवि दोहा कोष २४,३४,३५
६. सरहपा : ७६० ई० : दोहा कोष २४-२५-२७-३३-३४-३७-३६-१०१
तथा अनेक सिद्ध कवि
७. स्वयं भू—काम अवस्था—रामायण २१।८-६, २६।८
सोमप्रभ सूरि : ११६५ ई० : कुमारपाल प्रतिबोध—१३,५०,५।
अन्य कवियों में प्रसंग प्राप्त स्थलों पर यदाकदा।
८. स्वयं भू—सीताराम मिलन—रामायण ७८।६-८
अन्य कवि भी प्रसंगानुसार
९. प्रायः सभी कवि
जिन पद्म सूरि—थूलि भद्द फागु पृ० ४०

विवाह,[1] गोपीकृष्ण-प्रेम[2] विरह वर्णन[3] तथा प्रकृति-द्वारा विरह-मिलन के भावों का उद्दीपन,[4] सुखी घर और उस सुख में नारी का योग[5] आदि के सुन्दर चित्रण किये हैं।

---

१. पुष्पदन्त—जसहर चरिउ पृ० २१
हरिभद्र सूरि : ११५६ ई० : णेमिणाह चारिउ संधि
अन्य कवि प्रसंग प्राप्त स्थलों पर।
२. पुष्पदन्त—कृष्णगोपी लीला—उत्तर पुराण पृ० ६४-६५
३. स्वयं भू—सीता का विरह–रामायण ४६।६-१२
पत्नी से विदा होना—रामायण ५६।३-५,६२।५
धनपाल—भविसयतकहा पृ०१०-११
अब्दुर्रहमान—सनेहरासय-२५-१२२ पत्नी का विरह-करकंड चरिउ, पृ० ५१
कनकामर मुनि—:१०६० ई० : पति का विरह-करकंडचरिउ पृ० ६७
हेमचन्द्र—११२० ई० : प्राकृत व्याकरण १४७,१६५,१६६,१७०,१७२,
छन्दोनुशासन–पृ० ३४-३६-४०-४४-४५
सोमप्रभ सूरि : ११६५ :
कुमार पाल प्रतिबोध ८६
विनय चन्द्र : १२०० ई० नेमिनाथ चतुष्पादिका-प्रचीन गुर्जर
काव्य सग्रह १६२०
तथा अन्य कवि भी प्रसंगानुसार यत्र तत्र
४. स्वयं भू—जलक्रीड़ा : रामायण २६।१४-१६; ७६।११ :
तथा विरह-मिलन वर्णन के अनेक अवसर
पुष्पदन्त—आदिपुराण : २२८-२६ : २२-६-३३, २४० । जसहरचरिउ
पृ० ४०-४१ तथा २४४
धनपाल—भविसयतकहा ५६-५७ आदि
अब्दुर्रहमान—संनेहरासय १३० से २२३ पद तक
बब्बर—: १०५० ई०: स्फुट कवितायें ऋतुओं पर
हेमचन्द्र—छन्दोनुशासन पृ० ३४-३५-३६-३७-३६-४१-४२-४५
हरिभद्र सूरि—णेमिणाह चरिउ संधि ४ सोमप्रभ सूरि—कुमारपाल प्रतिबोध—
वसन्त-वर्णन
जिनपद्म सूरि—थूलिभद्द फागु पृ० ३८-३६
विनय चन्द्र सूरि—नेमिनाथ चतुष्पादिका—बारहमासा
आदि आदि कवि।
५. बब्बर—सुखी जीवन : स्फुट कविताएँ : ४४,५३,५७,६१,६३,६५,११७,१७१,
१७४,
प्रबंध चिन्तामणि—पृ० २४

कुमारी-निन्दा[1] भी की गई है। सदाचरण[2] पर बल देते हुए वेश्या-गमन[3] तथा दासी-प्रेम[4] की विगर्हा की है तथा नारियों की सम्भावनार्हता[5] एवं इनके सामाजिक अधिकार[6] की स्थापना की है। माता का वात्सल्य[7] भी अंकित किया है।

इन कवियों ने चाहे जल-क्रीड़ा[8] आदि की रंगरेलियों के चित्र खींचे हों, तो भी इनका मुख्य अन्तिम निष्कर्ष सदा यही रहा कि ये मद-मस्तियाँ सब क्षणिक और व्यर्थ हैं। संसार ही तुच्छ और त्याज्य है[9] अतः मनुष्य को आत्म-ज्ञान की ओर ध्यान देना चाहिये। भौतिक रूप भाव की ओर आकर्षित करते हैं। रूपासक्ति से पतिंगे आग में पड़ते हैं।[10] इंद्रियों को विषयों

---

१. बब्बर—कुलक्षणा : स्फुट कविताएँ : ६७
हेमचन्द्र—छन्दोनुशासन पृ० ३६

२. स्वयं भू—सीता की अग्नि परीक्षा रामायण ८३।७६ रावण सीता संवाद ६५।१५
सोमप्रभ सूरि—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ४२७
अन्य कवि भी

३. पुष्पदन्त—णाय कुमार चरित्र पृ० ४८-४६

४. प्रबंध चिन्तामणि पृ० २४

५. स्वयं भू—रामायण-कौशल्यादिक के प्रति सम्मान प्रदर्शन।

६. स्वयंभू—रामायण ४६।१५,८३।७-८
अन्य कवियों ने बहुत कम स्थलों पर

७. सालिभद्दकक्का, पृ० ६५-६७

८. स्वयंभू—रामायण २६।१४-१६, ६६।११

९. स्वयंभू—गर्भवास का दुःख—रामायण ३६।८
आवागमन का दुःख—रामायण ३६।६-१०
संसार की तुच्छता—रामायण ३६।७-१२, ७८।२-३
काया-नरक—रामायण ३६।७, ५४।११, ७४।४
कोई किसी का नहीं—रामायण ५४।७

पुष्पदन्त—काया-नरक—जसहर चरिउ पृ० ३०-३१
संसार की तुच्छता—णायकुमार चरिउ पृ० ६०

रामसिंह—संसार की तुच्छता—पाहुडँ दोहा २,३,१२,१५,१६,२०,२६ आदि
बब्बर—संसार की तुच्छता—(स्फुट कविताएं) १०३,१४२
कनकामर मुनि—संसार की तुच्छता—करकंड चरिउ पृ० ८२,८५
हरिभद्रसूरि—संसार की तुच्छता—णेमिणाह चरिउ संधि
सोमप्रभसूरि—संसार की तुच्छता—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३११ तथा अन्यत्र अनेकत्र

१०. रूवह्व उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीवि पडंत॥
मुनि देवसेन (१० वीं शताब्दि)

की ओर खींचने की कभी ढील नहीं देनी चाहिये, जिह्वा स्वाद और पर-स्त्री-गमन को तो बलपूर्वक छोड़े, क्योंकि मुनिवेष धारण कर लेने पर भी भोग भावना का मन से छूटना कठिन ही होता है, जैसे केंचुल छोड़ देने पर भी सांप विष नहीं छोड़ पाता ।[१]

नाथ-सिद्ध साहित्य में नारी

मनुस्मृति[१] तथा चाणक्यनीति[२] के अनुसार ब्राह्मण सदसद् अनेक व्यवसाय करते थे, जिनमे नीच व्यवसाय वालों के लिये श्राद्ध-भोजन निषिद्ध था। ये व्रात्य कहलाते थे। डॉ० बागची के अनुसार वस्तुत: ये वे ब्राह्मण थे जो परिस्थितिवशात् कर्मकांड छोड़ कर कृषि में लग गये थे। किन्तु कुछ विद्वानों के मत में ये अवैदिक और अभारतीय थे।[३]

सिद्धजन भी इन्हीं ब्राह्मणों में से थे। जिन शब्दों से उनके निम्न जातित्व का बोध होता है, वे वस्तुत: उनकी योगचर्याओं के नाम है।[४] डॉ० धर्मवीर भारती के अनुसार ये सिद्ध जन्मना शूद्र या क्षत्रिय थे और इनमे से कुछ सिद्धों ने निम्न वर्ग की स्त्रियों से विवाह कर उनकी आजीविका अपना ली थी। सरहपा अपनी महामुद्रा साधना त्याग कर विवाह के उपरान्त तिल कूटने लगे थे।[५] आचार्य सेन ने रोटी और बेटी को जाति-भेद का आधार माना है।[६] इस प्रकार सिद्ध जन व्यवसाय और विवाह दोनों दृष्टियों से श्रमजीवी जातियों के साथ थे और प्राय: स्त्री के व्यवसाय का अनुवर्तन करते थे।

सिद्ध जन सामान्य प्राकृतिक जीवन के उपासक थे। मनु आदि के द्वारा प्रतिपादित निग्रह इन्हें नहीं थे। एक सहजिया कथा रागात्मक सहज जीवन पद्धति की नैसर्गिकता सामने लाती है। उसके अनुसार ब्रह्मा के दो पुत्र थे, मनु और जड़ भरत। मनु ने बाह्याचारों का विधान किया, किन्तु जड़ भरत ने रेवा तट पर एक चरवाहे को प्रेमक्रीड़ा रत देख कर तथा फिर नारायण को भी शक्ति-संयुक्त देखकर बाह्याचारों के निग्रहों को निरर्थक और अप्राकृतिक

---

१. सप्पि मुक्की कुंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ ॥
जिब्भउ होहिं म इंदियहं पंच हं विण्णि णिवारि।
एक्क णिवारहि जीह डिय अण्ण पराइय णारि ॥
श्री हीरालाल जैन संपादित 'पाहुड दोहा' में 'मुनि रामसिंह' (११ वी शती) के दोहे।

१. मनुस्मृति ३।१५१-४

२. चाणक्य नीति ११।४४,१२।१४

३. Early Histoy of Kamrup-Barua

४. Customs of Indian Mystics, विश्वभारती Quarterly p. 143 Aug-Oct. 1945

५. सिद्धसाहित्य—डॉ० धर्मवीर भारती। पृ ६२

६. सेन जाति भेद पृ ११६

सिद्ध किया।[१] किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि सिद्ध साधना भोगवादी साधना थी। डॉ० धर्मवीर भारती का भी यही मत है।[२]

भगवान् बुद्ध के समय से ही उनके प्रतिपादित कठोर श्रमण-आचारों के विरुद्ध विद्रोह होने लगा था और अनेक स्थानों पर भिक्षुजन पत्नियों, प्रमदाओं और युवती दासियों को उपहार विशेषतः पुष्पोपहार भेजा करते थे तथा स्वर्णादिक भी ग्रहण करने लगे थे।[३]

जादू टोने—यद्यपि ब्राह्मणों ने अंधविश्वासों तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोनों का कभी स्वागत नहीं किया तथापि जन-साधारण में इनका बहुत प्रचार रहा। मार्चीरमुखी,[४] शक्ति,[५] कुब्जिका[६] आदि अनेक कुलदेवियाँ[७] उस काल में व्यापकता से पूजी जाती थीं।

चमत्कारों पर विश्वास—जादू-टोनों आदि के अतिरिक्त लोगों का चमत्कारों पर भी विश्वास था। ये अति प्राचीन काल से प्रचलित थे। विनय पिटक में यह उल्लेख है कि सेनीय बिम्बिसार ने भद्दीय नगर के मेण्डक नामक गृहस्थ द्वारा निष्पन्न चमत्कारों की वास्तविकता का पता लगवाने का प्रयत्न किया था।[८] ब्रह्मजालसुत्त में भी अनेक चमत्कारों के उल्लेख हुए हैं।[९] सर चार्ल्स ईलियट[१०] और डॉ० विनय तोष भट्टाचार्य[११] का मत है कि यद्यपि बुद्ध इन चमत्कारों (इद्धियों) की सार्थकता में विश्वास नहीं करते थे, तथापि चमत्कार-विश्वासी जनता में अपने मत का प्रचार करने के लिये उन्होंने इनका भी समावेश कर लिया था। दस्यु अंगुलिमाल के समक्ष उन्होंने एक अपराजेय रूप धारण किया था।[१२] निश्चय ही इन चमत्कारों आदि के प्रचार-प्रसार में तत्कालीन नारी समुदाय का प्रमुख योग था।

चार क्षण, चार आनन्द और उनको प्राप्त करने की चार मुद्राओं की भी सामान्य शृंगार की शब्दावलि के द्वारा व्याख्या की गयी है।[१३]

---

१. Basu-Post Chaitanya Sahajiya Cult, P.P. 263-264
२. सिद्ध साहित्य पृ ६४,१३०,१३८,१८२,१८८,२१६,२२५,२७१,२७७
३. बागची—दोहाकोष-दोहा ६२, पृ ३६
४. अभिधम्म कोष—प्रथम अध्याय—राहुल
५. Manual of a Mystic- p. 9
६. बागची—दोहा कोष, दोहा १५, पृ० ५२
७. बागची—दोहा कोष, दोहा ११
८. महावग्ग
९. ब्रह्मजाल सुत्त पृ० ६ तथा आगे
१०. Hinduism aud Buddhism Pt. I, p. 319
११. (क) चुल्लवग्ग पृ० ७६
(ख) Rhys Davids-Pali English Dictionary p. 121
(ग) Hinduism and Buddhism Pt. I, p. 319
१२. Hinduism and Buddhism Pt I, p. 317
१३. विचित्रं विविधं स्यात्सर्मालिंगनचुम्बनादिकम्—दोहाकोष पर उद्धृत

मुद्रा अर्थात् मोददायिनी, अतः नारी।[१] श्री सम्पुट मे बताया गया है कि भगवान बुद्ध ने निर्माणचक्र में लोचना मुद्रा, धर्मचक्र मे मामकी, सम्भोग चक्र में पाण्डरा और महासुखचक्र मे तारा मे मुद्रा, रूप से संभोग किया।[२] सिद्धो ने भी डोम्बी, चाडाली, कपाली, योगिनी, शबरी, मातगी, शुडिनी आदि को नैरात्मा के विभिन्न अभिधानो के रूप में प्रयुक्त किया है। यद्यपि इन सबको सांकेतिक अर्थों में ही प्रतिपादित किया गया था, तथापि इनके आधार पर कुछ लोगो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सिद्ध लोग इन निम्नजातियो की स्त्रियों को गुह्य साधनाओ में सम्मिलित किया करते होगे। सिद्धो के वाक्य भी ऐसे है कि उनसे ऐसे परिणाम निकाले भी जा सकते है। बौद्ध तत्रो मे कहा है कि मण्डल चक्र और मुद्रा मैथुन में स्त्रियो का उपभोग एक अनुष्ठान है। प्रज्ञा परमार्थ रूप मे नैरात्म ज्ञान है और सम्वृति रूप में देहधारी नारी रूप।[३] अत. प्रज्ञा का वास्तविक ज्ञान तभी होगा जब देहमयी सम्वृति प्रज्ञा का उपभोग कर लिया जाय।[४]

तब किसी कुलीन स्त्री से रमण कर शून्यता ज्ञान की प्राप्ति होती है।[५] मुद्रा में जाति-कुजाति का बन्धन नही, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वेश्या, शूद्रा, कैवर्ती, चाडाली सभी ग्राह्य हैं।[६] ज्ञानसिद्धि[७] मे लिखा है कि मुद्रा की आय, जाति, रूप आदि के विषय में शिष्य को गुरु निर्देशन दे। आगे चल कर इन पद्धतियो का इतना अधिक विकार हुआ कि साधक को मैथुन के समय स्वयं अस्खलित रहते हुए मुद्रायोगिनी को स्खलित करा कर उसके रज को प्राणायाम द्वारा अपने शरीर मे खीच लेने की युक्तियाँ भी बतायी गयी।[८]

सिद्धो के जीवन भी ऐसा ही संकेत देते हैं। सरहपा को महाराष्ट्र में अपने ही समकक्ष योगिनी मिली थी, जिससे उन्होने महामुद्रा में मैथुन किया था।[९] शबरीपा लोगी और गुनी मुद्राओ के पति थे, जिनके नाम उन्होने डाकिनी, पद्मावती और ज्ञानावती रख दिये थे। वे बगाल में मछलियो के बीच में रहे और मैथुन द्वारा सिद्धि प्राप्त की।[१०] उनका बाह्य जीवन पापमय था।[११] अबौद्ध सिद्धो में भी सपत्नीक रहने की प्रथा थी।[१२]

---

१. मुद्रयते लक्षणेनेति मुद्रणं तेन भण्येति। दोहा कोष तथा पृ० ६८ टीका भाग
२. श्री सम्पुट : इनके सांकेतिक अर्थों के लिए देखिये—
सिद्ध साहित्य पृ० २४६-२५२ तथा पृ० २७१-२७७
३. सिद्ध साहित्य—डा० धर्मवीर भारती पृ० २२०-२२१
४. प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि पृ० ११
५. 'द्वादशाब्दा सुकन्या विंशति वर्षपर्यन्ताम्' वही, सेकोद्देश टीका पृ० २४
६. प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि पृ० २४
७. वही, पृ० ७८
८. Mystic Tales of Lama—Taranath
९. साधनमाला, पृ० ४६०
१०. अद्वय वज्रसग्रह पृ० १३
११. चर्यापद पृ० १२४
१२. मेघदूत—अद्रेः शृंग हरतिपवन—मुग्ध सिद्धागनाभिः

कुक्कुरीपा[१] और वीणापा[२] ने सखि को संबोधन किया है। तिलोपा का कथन है कि विष से विष नष्ट होता है, वैसे ही भव (वासना) से भव का नाश होता है।[३] आर्य देव कहते हैं जिस तरह कान का जल जल से, काँटा काँटें से, वस्त्र का मैल मैली सज्जी से निकलता है, वैसे ही विषयासक्ति विषय-साधना से ही नष्ट होती है।[४]

सिद्धों का जीवन दर्शन भोगवाद में आध्यात्मिक चेतना की समाविष्टि करता था। किन्तु समयानुक्रम में सांकेतिक अर्थ पीछे भी पड़ गये, जिससे वह विकसनशील परम्परा क्रमशः जर्जरित होती चली गई।

मानव बलि :

भवभूति के **'मालती-माधव'** में कापालियों के केन्द्र श्री शैल की एक योगिनी कपाल कुण्डला माला पहनती थी। उसने अपने गुरु अघोरघण्ट की आज्ञा से मालती को राजमहल से उठा ले जाकर कराल चामुण्डा देवी के आगे बलि देने का उपक्रम किया था।

हर्षचरित में कापालिक यति भैरवाचार्य ने घोर रूप बना कर राजा पुष्यमूर्ति के साथ श्मशान में जाकर शवासीन होकर वेताल साधना की थी।[५]

वामाचार के पंचमकार :

वामाचार में वीर, राज और देव नामक भैरवी चक्रों की नियोजना पंच मकारों[६] के आधार पर होती थी। भैरवी चक्र के चलने पर ऊँच-नीच सभी वर्ण दूध-जल, गंगा-जल, साधारण जल की भाँति मिल कर एकात्म हो जाते हैं।[७] जाति-भेद रहता ही नहीं था।[८] साधक-जन स्त्री-साधिकाओं से मिलते थे और मद्यपान के अनन्तर उनके मनोरथ सुखों की परस्पर पूर्ति होती थी। राजचक्र में यामिनी, योगिनी, रजकी, श्वपची, कैवर्तकी—ये पाँच शक्तियाँ रहती थीं, और देवचक्र में राज-वेश्या, नागरी (कोई भी रजस्वला कन्या) गुप्तवेश्या देव वेश्या और ब्रह्म वेश्या नामक पंचशक्तियाँ होती थीं।[९] आगम सार में सभी सांकेतिक अर्थ दिये गये हैं।[१०]

---

१. बौद्धगान ओ दोहा, पृ० २०
२. सेकोद्देश टीका पृ० २७ भूमिका पृ० २०
३. जिम विस भक्खइ विसहिं। तिम भव भुंजहि भवहिण जुता॥
दोहा कोष पृ० ६७
४. चित्त विशुद्धि प्रकरण पृ० ३-५
५. भण्डार कर पृ० १८२
६. मद्यैर्मांसैस्तथामत्स्यैर्मुद्राभि मैथुनैरपि
७. "प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः द्विजातयः"
८. कुलार्णव तन्त्र पृ० ७५-७७
९. पुरश्चर्यार्णव पृ० २७
१०. आगमसार में पंच मकारों के सांकेतिक अर्थ :—
मद्य :—सोमधारा क्षरेद्र यात्तु ब्रह्मरन्ध्रात् वरानने।
पीत्वानन्दमयीं तां यः स एव मद्यसाधकः॥

इनके ऊपरी अर्थ गृहीत नहीं होते थे। कहा गया है कि यदि मद्यपान से सिद्धि मिलती होती तो सभी मद्यप सिद्ध हो जाते। संभोग सिद्धिदायक होता, तो कौन-सा प्राणी असिद्ध रह जाता। अतः वाममार्ग खग की धार पर चलने और व्याघ्रकर्ण पकड़ने से भी अधिक कठिन है।[1] जो भी हो, प्रायः सभी तत्कालीन सम्प्रदायों में साधनाओं की ऐसी ही मिथुनपरक व्याख्याएँ मिलती है, जो गुह्याचारों के आधार पर स्थित है। इसके दो ही कारण हो सकते है—या तो पहले से ही भ्रष्ट समाज की चारित्र्य-शुद्धि के लिए सिद्धों ने वासनापरक शब्दों को नवीन आध्यात्मिक अर्थ देकर शुद्धि-पथ प्रशस्त किया, या अपने उपदेशों को रहस्यमय एवं गूढ़ बनाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया। उद्देश्य कुछ भी रहा हो, सिद्ध-पंथ का प्रचार बढ़ने पर इन शब्दों को इनके सामान्य अर्थ में ही ग्रहण किया गया, और भ्रष्टाचार का बोलबाला भी हो गया। तत्कालीन नाटकों एवं कथाओं से यही सिद्ध होता है।

सिद्ध-साहित्य का काव्य पक्ष :

यदि हम सांकेतिक अर्थों को कुछ देर के लिए दूर रख कर देखें, तो हमें उनके काव्यों में लौकिक काव्यशास्त्र नायक-नायिका भेद भी स्पष्टः दृगत होता। 'वस्य वज्र' 'प्रेम-पचक' मे बोधिचित और नैरात्म ज्ञान के नायक-नायिका रूप को स्पष्ट किया गया है। सिद्धों में नायिका के स्वकीया रूप का ही आग्रह है और उन्होंने विवाह के सारे प्रतीक प्रस्तुत किये है। किन्तु काण्हपा एक स्थान पर[2] डोम्बी का परकीया जैसा वर्णन करते है, और दो-एक चर्या पदो में मुग्धिनी[3] मानती[4] का वर्णन सामान्या जैसा है। इसी प्रकार शवरीपा की शबरी मुग्धा[5] नायिका का, कुक्कुरीपा की वधू मध्या नायिका[6] का और गुण्डुरीपा की योगिनी प्रौढ़ा नायिका[7] का उदाहरण है। ये ही नायिकाएँ अवस्था-दृष्टि से स्वाधीन पतिका, अभिसारिका आदि रूपों में भी प्रकट होती है। कामरूप सहेट स्थल है और गुरु दूती है। सभोग नायकारब्ध होता है और गुण्डुरीपा की योगिनी से,[8] काण्हपा की डोम्बी से,[9] और शबर की शबरी से

मांस :—मांशब्दात् रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवि स एवं मांस साधकः॥
मत्स्य :—गंगा यमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्य साधकः॥

१. पुरस्चर्यापाद पृ० २८
२. दसवां चर्यापद
३. चर्यापद ३
४. चर्यापद १४
५. चर्यापद २८
६. चर्यापद २
७. चर्यापद ४
८. चर्यापद ४
९. चर्यापद २८

प्रणय याचना।[१] केवल एक स्थान पर नायिका स्वयं कामपीड़ित होकर अभिसार करती है।[२] विप्रलंभ का एक ही पद प्राप्त है, जिसका शृंगार नायिकारब्ध है।[३]

नायक उपाय का प्रतीक है, इसी से शृंगार नायकारब्ध ही रहता है, किन्तु जब नायक शून्य भाव में निष्क्रिय हो जाता है तो नायिका उसमें काम भाव जाग्रत करती है। यही कारण है कि प्रज्ञा की अभिव्यक्ति के रूप में पच्चीस योगिनियाँ हेरुक[४] और हेवज्र[५] के प्रति प्रणय-निवेदन करती हैं। योगिनी नायिका उत्तमा प्रकृति की अतीर्ष्यालु है और हेरुक दक्षिण नायक है। अन्यत्र नायक अनुकूल नायक है। लौकिक साहित्य में नायिका अपनी प्रणयाकुलता दूती द्वारा अभिप्रेषित करती है, किन्तु सिद्धों की नायिका यह कार्य स्वतः करती है। उद्दीपन के रूप में रूप-वर्णन तथा प्रकृति की रमणीयता का प्रयोग किया गया है। प्रतीकों को भी पूर्णतया नैसर्गिक रूप में प्रकट किया गया है। रात्रि में रति और अभिसार के लिए प्रशस्त समय है, रात्रि का अर्थ है प्रज्ञाभिषेक का समय।

वज्रयानी शब्द :

खसम—शून्यावस्था। कबीर ने इस अर्थ में भी इसका प्रयोग किया है—'खसमहिं छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बयो;[६] किन्तु अधिकतर उन्होंने अर्थ भेद करके अरबी खसम का अर्थ इसमें निहित कर दिया—"खाखा चाहे खोरि मनावे। खसमहिं छाँड़ि दसौं दिसि धावे।[७] होइगा खसमु त लेइगा राखि।"[८] प्रभु पति हैं, वह स्वयं रक्षा करेंगे। चित्त स्थिर रखने से स्वर्ग मिलता है, खसम त्यागने से नरक।[९] अन्य सम्प्रदायों का तत्वज्ञान झूठा खसम है, त्याज्य है।[१०]

खसम की मृत्यु और तज्जन्य उल्लास :

यद्यपि संत कवियों ने खसम, पति की भक्ति और पातिव्रत्य के ही उपदेश दिये हैं, किन्तु उलटबाँसियों में पति की हत्या करने या उसे खा जाने को भी अच्छा बताया गया है।

माई मैं दूनौं कुल उजियारी
बारह खसम नेहरै खायो, सोरह खायो ससुरारी।'

---

१. चर्यापद १०
२. चर्यापद २
३. कुक्कुरीपा
४. बुद्ध कपाल साधना, साधनमाला, द्वि० खं० पृ० ५०१
५. हेवज्रतंत्र तथा डाकार्णव—दोहा कोष में उद्धृत पृ० ५३-५४
६. बीजक पृ० २७८
७. बीजक पृ० २९२
८. संत कबीर पृ० ३५
९. बीजक पृ० २८
१०. बीजक पृ० ३६

पलटू ने तो खसम मृत्यु पर उल्लास भी प्रदर्शित किया है।[१]

(१)

खसम बिचारा मरि गया जोरू गावै गान
झूठ सकल संसार माँग भरि सेंदुर पारा
हम पतिबरता नार खसम को जियतै भारी
वाको मूड़ौं मूड सरवर जो करै हमारी।
दुतिया गई हैं भाग सुनो अब रांध परोसिन
पिया मरे आराम मिला सुख में कहुं दिन दिन
पलटू ऐसे पद कहै बूझै सो निरवान
खसम बिचारा मर गया जोरू गावै तान॥

(२)

खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय।
पलटू सोइ सुहागनी जियतै पिय को खाय॥

इन पंक्तियों की विचारधारा का अर्थ तभी स्पष्ट होगा जब हम सिद्धो के योगिनीचार का भाव समझ लेंगे। सरहपा के एक पद[२] की अद्वयवज्र ने इस प्रकार टीका की है खसम गृहपति (मन) का मरण है, उसको सहज स्वरूप में स्थिर कर देना। उस दशा में दुतिया (द्वैत) नहीं रहती और चित निर्वाण प्राप्त कर लेता है। कबीरादिक संत कवियों का भी ठीक यही तात्पर्य है।

सुरति

सुरति के स्मृति, श्रुति, श्रोता, चित्तप्रवाह, प्रेम-क्रीड़ा मैथुन आदि अनेक अर्थ हुए हैं। सिद्धो ने इसका प्रयोग मैथुनपरक अर्थ में किया था। सरहपा[३] और कण्हपा[४] ने इसका अर्थ स्मृति या श्रुति न कर, प्रेमविलास किया था, किन्तु नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ जी ने मैथुनपरक अर्थ का बहिष्कार किया और तब से इसे अनाहतनाद आदि अर्थों में अभिव्यक्ति मिलने लगी। कबीर ने भी रति क्रीडा[५] और वासना[६] अर्थों में इसे प्रयुक्त किया। मीरा ने इसे रति[७] के अर्थ मे लिया है। बाद में सुरति शब्द के बड़े दूरविभ्रष्ट नये-नये अर्थ करके विचित्र रूपक बाँधे गये।[८]

---

१. पलटू साहब की बानी, पृ० ८२
२. बागची, दोहाकोष, पृ० ३५ पर संगहीत
३. दोहाकोष पृ० ३६
४. दोहाकोष पृ० ४५
५. संत कबीर, पृ० ३८
६. विषया अजहुँ सुरति सुख आसा। कैसे ह्वइहै राजाराम निवासा॥
७. मीरा वृहद् पद संग्रह पृ० ३२४
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँरी।
८. क. पलटू साहब की बानी १, पृ० ३७

मुद्रा :

मुद्रा के तीन अर्थ थे—१. अंग—स्थिति, जैसे अभयमुद्रा २. बाह्य उपचार, जैसे कुंडल। यह नारी, जो तांत्रिक अनुष्ठानों (मैथुन तथा बिन्दु रक्षा) में सह साधिका बने। गोरख पद्धति और हठयोग प्रदीपिका आदि में वज्रोली, सहजोली आदि मुद्राओं का उल्लेख है, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार ये मुद्राएँ नाथ सम्प्रदाय में वज्रयानी सम्प्रदायों से आई थीं।[१] मत्स्येन्द्र के योगिनी कौलमार्ग में तो ऐसी मुद्राओं का प्रमुख स्थान था।[२] हठयोग प्रदीपिका में ऐसी प्रक्रियाओं का वर्णन है जिनसे मैथुन के समय योगी बिन्दु-रक्षा कर सके, और यदि क्षरण हो जाय तो उसे प्राणायाम द्वारा पुनः भीतर खींच ले।[३] योगिनी नारी अपने रज को कैसे अक्षरित रखे, इसकी भी विधियाँ दी हुई हैं।[४] गोरख सिद्धान्त संग्रह के इस कथन से कि तान्त्रिक साधक बाह्य अनुष्ठानों पर ध्यान केंद्रित रखते हैं।[५]

जब कि योगी अंतरंग की उपासना करते हैं, तथा गोरखवानी में वज्रोली आदि मुद्राओं को भोगमययोग[६] बताये जाने से यह स्पष्ट है कि नारी शरीर का प्रयोग तत्कालीन साधनाओं में विहित था, जिसे गोरख ने निषिद्ध ठहराया। गोरख द्वारा नारी-संग की इस विवर्जना का परिणाम यह हुआ कि नारी को माया का रूप माना जाने लगा और उसके त्याग के उपदेश दिये जाते रहे।[७] आगे के समस्त संत तथा भक्ति-साहित्य में यही विचारधारा पनपती रही। यद्यपि यह स्मरणीय है कि नारी को योगादिक कार्यों में ही माया समझा जाता रहा, सामान्य गृहस्थी में तो नारी का प्रमुख और आदृत स्थान ही था।

तान्त्रिक गुह्याचारों का निर्गुण सम्प्रदाय पर प्रभाव :

'अनुराग सागर' में एक साधना का उल्लेख है जिसमें योनि को पारस मानकर उसका संसर्ग आवश्यक कहा गया है। डॉ० बड़थ्वाल जी ने प्रतिपादित किया है कि कुछ संतों ने वज्रोली आदि साधनाओं एवं मुद्राओं को ग्रहण किया है और सहजोली को सर्वश्रेष्ठ मुद्रा कहा है।

ख. प्रणामी साहित्य पृ० २२

ग. बोध सागर ७। पृ० ११३, ११६, १२४, १२५, १३५, ८, पृ० ६१। पृ० १३०, १०। पृ० १३

१. नाथ सम्प्रदाय पृ० ७२
२. कौलज्ञान निर्णय, श्लोक १०, पृ० ५५
३. हठयोग प्रदीपिका—तृतीयोपदेश श्लोक ८३
४. वही १०३
५. गोरख सिद्धान्त संग्रह, पृ० २०
६. बजरी करता अमरी राषै अमरी करता बाई।
   भोग करता जे ब्यंद राषै, ते गोरष का गुरुभाई ॥
   गोरखबानी पृ० ४६
७. क. कनक कामिनी त्यागी जोइ। सो जोगेस्वर निरभै होइ ॥
   गोरखवानी पृ० ३५

तो भी निर्गुण सम्प्रदायों में महामुद्रा साधना से कोई प्रत्यक्ष वास्ता नहीं था। इससे सम्बद्ध शब्द परिवर्तित अर्थों में ही प्रयुक्त हुए हैं।

तांत्रिकों में यक्षिणी (जाखिनी, जाकिनी) सिद्ध करने का विधान है जो साधक को अलौकिक शक्तियाँ देती है। जायसी के राघवचेतन ने भी यक्षिणी सिद्ध कर रखी थी 'राघौ पूजा जाखिनी, दुइज देखावा साँझ।'

गुरु गोरखनाथ का निर्गुण सम्प्रदाय पर प्रभाव :

कौलाचार की साधना के प्रारंभ में पंचपवित्र का अध्यात्मपरक अर्थ होता आ रहा था किन्तु कालान्तर में इसे पंचमकार का नाम दिया गया, और वामाचार में इसका स्थूल अर्थ लगाया जाने लगा, इससे विलास-वासना की जागृति हुई, और सहजयानियों, वज्रयानियों तथा नाथपंथियों का भी कामुकता में पड़कर अधःपतन हो गया।

गोरखनाथ ने पुनः पवित्रता का संचार किया। वे अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को जो कौलमार्ग में चले गये थे पुनः योगमार्ग पर ले आये।[1] गुरु गोरखनाथ ने अपने हठयोग को कौलाचार की कामुकता-परिलिप्त यौगिक क्रियाओं से दूषित नहीं होने दिया। उन्होंने काम-वासना के सर्वथा परित्याग और ब्रह्मचर्य और शील सदाचार पर ही सदा बल दिया है।[2]

सभी संतों को गोरखनाथ का सुधारवाद प्रिय रहा और उन्होंने साधना में से कामुकता का पूर्णतः बहिष्कार भी किया। तांत्रिक गुह्याचारों के प्रति उनमें घृणा थी, जिसका उन्होंने बड़ी तीव्रता के साथ उद्घाटन किया। पूर्ण सदाचार और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की उन्होंने दशना की और वासना की साधनाभूता नारी को नरककुंड, नागिन और बुद्धि-नाशिनी कहा।

ख. कदे न सोवे सुन्दरी सनकादिक के साथि।
जब तक कलंक लगा इसी काली हांडी हाथि॥ —वही पृ० ७७

ग. पासि बैठी सोभै नहीं सापि रमाई बुद्धि।
गोरष कहै असतरी कहा सलह कहूं मुंडि॥ —वही पृ० ७८

१. जाग मछन्दर गोरख आया,
—गोरखबानी

२. क. स्वामी बन पंडि जाउं तो पुध्या ब्यापै, नग्री जाउंत माया।
भरि भरि षाउंत बिन्द बियापै, क्यों सीझति जल ब्यंद की काया॥

ख. जप तप जोगी संजम सार। बाले कंप कीया छार।
येहा जोगी जग में जोय। दूजा पेट भरै सब कोय॥

ग. कंचन रूप काया का मंडण, अविरथा काई उन्हौंवौ।
गोरष कहै सुणौरे मोढू, अरंड अमी कत सींचौं॥

घ. छाडो दंद रहो निरदंद। तजो अत्यंगन रहौ अबंध॥

ङ. नारी, सारी, कौगुरी। तीन्यू सतगुर परहरी॥
आरंभ घट परचै निसपती। दरसै बोध कथंत श्री गोरखजती॥
—डा० बड़थ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी से

कबीर जो स्वयं गृहस्थ थे, नारी की निन्दा में उतने ही तत्पर हैं, जितना पाखण्डियों की निन्दा में थे। उन्होंने अनेकशः कहा :—

कामणि काली नागणी तीन्यू लोक मझारि।
राम सनेही ऊबरे विषई खाए झारिव॥
नारी सेती नेह बुधि-विवेक सबही हरै।
कोई गमावै देह, कारिज करेइन सरै॥
नारी कुण्ड नरक का, बिरला थामै बाग।
कोई साधूजन ऊबरैं, सब जग मूवा लाग॥

कबीर ग्रंथावली पृ० ३६।४०

गोरखनाथ ने नारी (भग) को ऐसी राक्षसी बताया था, जो बिना दाँतों के ही सारे संसार को खा जाती है।

भग राकसि लो भग राकसि लो, बिना दांत जग खाया लो॥
ग्यानी हुवा सुग्यान मुष रहिया जीव लोक आयौ आय नवायालो॥

गोरखवानी पृ० ४३

शाक्तों की निन्दा :

शाक्तजन नारी के प्रति घोर कामुक दृष्टिकोण रखते थे। यही कारण है कि कबीर तथा तुलसी एवं अन्य कुछ कवियों ने भी शाक्तों की घृणापूर्वक निन्दा की है। कबीर का तो यह दृढ़ विश्वास था कि शाक्तों को यमदूत रस्सियों से बाँधकर कष्ट देते हुये यमपुर ले जायेंगे।

सापति सण का जेवड़ा भीगां सूं कठठाइ।
दोई आषिर गुरु बाहिरा बांध्या यमपुरि जाइ॥

कबीर ग्रंथावली पृ० ३६

डाकिनी

डाकिनी>डाइन वह ज्ञानवती तान्त्रिक साधिका होती थी जो योग साधना में स्वयं भी प्रवृत्त रहे और किसी साधक को भी प्रवृत्त कराये। वज्रतंत्र में डाकिनी शब्द सदा 'देवी' शब्द संयुक्त रहा है। शबरी याने 'लोगी' और 'गुनी' को डाकिनी, पद्मावती तथा ज्ञानवती नाम दिया था। और सिद्ध कम्बलाम्बर या बौद्ध डाकिनियों के प्रभाव से हटकर तांत्रिक डाकिनियों के प्रभाव में चले गए थे। इनसे तो यही सिद्ध होता है कि डाकिनी शब्द सम्मानवाचक ही था।

किन्तु कालान्तर में डाकिनियों की गुह्य साधनाओं और श्मशान अनुष्ठानों के कारण जन-साधारण उनसे विरक्त रहने लगा, और उनके मारण, मोहन, उच्चाटन आदि को गर्हित मानने लगा। कबीर ने जहाँ-जहाँ डाइन शब्द का प्रयोग किया है, सर्वत्र उसमें गर्हा की समाविष्टि है।

'एक डाइन मेरे मन में बसेरे, नितउठ मेरे जियको सेरे।' या 'डाइन के लरिका पांच रे, निसिदिन मोहनचावै नाचे रे। कहै कबीर हूँ ताको दास, डाइनि के संग रहै उदास॥'

—कबीर ग्रंथावली, पृ० १३८

योगिनी>जोइणि :

जो स्त्री साधिका महामुद्रा की साधना करावे, उसे योगिनी कहा जाता था। योगिनी काल-मार्ग योगिनी की पूजा का विधान था।[1] सरहपा योगी के गाढ़ालिंगन द्वारा सहज की साधना करते थे।[2] और गुडरीपा इसके प्रगाढ़ालिंगन की कामना करते थे।[3] कृतका साधना में तो अवधूती योगिनी होती थी, किन्तु सहज साधना में वास्तविक नारी का उपयोग होता था।[4] गोरखनाथ जी ने नारी का 'नाडी' अर्थ करके नाड़ियों को ही नौ सौ योगिनी माना था।[5] इड़ा पिंगला को भी योगिनी के रूप में परिकल्पित करके रूपक बांधे गए हैं।[6] परन्तु एक स्थान पर महामुद्रा को भी महायोगिनी कहा गया है—

'महामुद्रा अजब नग्री महां जोगणी स्वभू बोलिए।'[7]

इसी कारण संत साहित्य में योगिनी शब्द दोनों अर्थों में व्यवहृत हुआ है। जायसी की इन पंक्तियों में जोगिनी शब्द अपने प्राचीन अर्थ को भी समाविष्ट किये है :—

अब को हमहिं करहिं भोगिनी।
हमहूँ साथ होइब जोगिनी॥

पलटू ने सुषम्ना को योगिनी कहा है :—

भीतर औटे तत्व को उठे सबद की खानि।
सुरत देइ उद्गारि जोगिनी आपुइ जागी॥[8]

इसी को पलटू योगिनी का अलमस्त होना भी कहते है।

भूली जग की चाल सब भई जोगिनि अलमस्ता।[9]

मीरा ने तो अनेक बार जोगिण शब्द का प्रयोग किया है। उनके लिए कृष्ण जोगी हैं और स्वयं वे जोगिनी, जो उनकी पूर्व जन्म में प्रेमिका गोपी रही थी—[10]

'धूतारा जोगी एक बेरियां मुख बोलरे
पुरब जनम को मैं हूँ गोपिका अधाबिच पड़गयो कोलरे॥'

इस प्रकार मीरा का 'जोगिण' शब्द तन्त्र-साधना का शब्द किसी भी प्रकार नहीं है। यह तो केवल माधुर्य साधनामयी विरहिणी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :—

---

१. कौलज्ञान निर्णय पृ० ६८
२. दोहाकोष, पृ० ११
३. चर्यापद, पृ० ११० पद ४
४. कौलज्ञान निर्णय, पृ० ६७
५. गोरखबानी पृ० १६२ आदि
   नौ सौ जोगिणी चालिवा साधं कुरिज बहुतरि गाइवा नाथ॥
६. गोरखबानी, पृ० १०५
७. गोरखबानी पृ० २०५
८. पलटू साहिब की बानी पृ० १००
९. पलटू साहिब की बानी पृ० ३०
१०. मीरा बृहद् पद संग्रह पृ० २६६

जोगण होइ मैं वण वण हेरूं तेरा न पाया भेस
जोगिय के कहु ज्यों जी आदेस ।
माला मुद्रा मेखला रे बाला खप्पर लूंगी हाथ ।
जोगिण जग ढूंढस्यूं रे म्हारा सवंलियारी साथ ॥

मीरा की योगिन विरह में विलाप भी करती है और तब शुद्ध भाव-स्तर पर वह एक विरहिणी स्वकीया के रूप में ही प्रकट होती है :—

पिय बिन सूनो है जी म्हारो देश
ऐसा है कोई पिउ को मिलावे तनमन कर सब पेस
तेरे कारण वण वण डोलूं कर जोगण को भेष ।
—मीरा पृ० २६६

सास ससुर शब्दादि :

ये शब्द भी सिद्ध और नाथ-साहित्य में तथा संत-साहित्य में भी, प्रतीकात्मक रूप से प्रयुक्त हुये हैं। ससुर श्वास है।[१] वधू परिशुद्धावधूती है।[२] सास का निरोध है।[३] इन्द्रियाँ ननद और साली हैं।[४] कहीं-कहीं सुरति को सास और शब्द को ससुर कहा है।[५]

कुक्कुरीपा ने ससुर (श्वास) के सोने और वधू (परिशुद्धावधूती) के जागने का अर्थात् श्वास को योगिनन्द्रा में लीन कर देने का उपदेश दिया है।[६] वधू की बात को सास श्वास के घर में ताला लगा देने वाला कहा है।[७] काण्हपा ने इसी क्रिया को सास-ससुर, ननद-साली आदि को मार डालना बतलाया है।[८]

यद्यपि संत कवियों ने भी प्रायः इन्हीं अर्थों को ही लिया है तथापि कहीं-कहीं अर्थान्तर भी कर दिये हैं। मीरा ने सास को सुषुम्ना के लिए प्रयुक्त किया है।

सासु हमारी सुषुम्ना रे।[९]

पलटू ने सास को माया और ननद को वासना के अर्थ में प्रयुक्त किया था, ऐसा पलटू की वासना की बानी के सम्पादक ने प्रतिपादित किया है।[१०] कबीर ने साली शब्द का प्रयोग सृष्टि जाल के अर्थ में किया है।

---

१. मुनिदत्त—व्याख्याकार
२. कुक्कुरीपा—ससुर निन्द गेल बहुड़ी जागअ ।
३. गुंडुरीपा—चर्यापद पद ४ पृ० ११०
४. काण्हपा—चर्यापद पद ११ पृ० ११८
५. गोरखबानी पृ० १०५
६. ससुरा निन्द गेल बहुड़ी जागअ ।
७. सासु घरे घालि कोंचा ताला । चांद सुजग बेणि पखा काला । २१४
८. चर्यापद ११ पृ० ११८
९. मीरा बृहद् पद संग्रह, पृ० १४८
१०. पलटू की बानी, भूमिका ।

कबीर साली सिरजन हारकी जाने नाही कोइ।
के जानै आपन धनी के जासु दिवानी होइ।[1]

सिद्धों और संतों मे अन्तर :

वज्रयानी सिद्ध प्रज्ञा रूपिणी नारी से प्रणय निवेदन करता था, किन्तु संत स्वयं को नारी मानकर राम को पति रूप में वरण करता है। यद्यपि संतों का पातिव्रत्य-आग्रह सहजिया के स्वकीयात्व से पूर्णतया मेल खाता है, तो भी सिद्धो में नायक के कारण विप्रलंभ उतना नहीं मिलता, जितना वह सन्तो के नारी भाव के कारण उनमें सहजतया ही परिव्याप्त मिलता है।

खुसरो के समय में नारी :

अमीर अबुल हसन खुसरो (१२५५ ई०—१३२४ ई०) ने, जो गुलाम, खिलजी और तुगलक वंशों के राज्य काल में थे और जिन्होंने ग्यारह सुलतानों का वैभव-विलास पूर्ण शासन देखा था, उस भारतीय समाज का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है, जिस पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा था। खुसरो ने अपनी मसनवियों[2] में सुलतानो के ऐश्वर्य और भोग-विलास का जीवित चित्र खींचा है। मसनवी खिज्रनामः मे अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्र-खाँ और गुजरात के राय कर्ण की पुत्री देवलरानी के प्रेम और विवाह का वर्णन है। इससे प्रकट है कि जिस स्त्री को बादशाह बलात् पकड़ लेते थे, उनकी पुत्री भी आततायी के पुत्र को अपना प्रेम दे सकती थी। प्रेम के राज्य में धर्म-भेद नहीं होता, यह उन्होंने इस प्रकार सिद्ध कर दिया था। खुसरो की कहमुकरियाँ[3] तत्कालीन विलासता की कहानी सुनाती है। स्त्री किस प्रकार वासना-तृप्ति की साधन मात्र मानी जा रही थी, यह स्पष्ट रूप से इनमे अंकित है। मुस्लिम वातावरण वाला पुरुष-समाज किस प्रकार छैलाओं के रूप में, अश्लील संकेतों और शब्दों का प्रयोग करता हुआ विचरण करता था, यह भी इन कह-मुकरियों में स्पष्ट ध्वनित हो रहा है। आम, मंजन, अंगिया, बन्दर, भांग, ज्वर, पान, पानी, पंखा, पवन, तारा, तेल, चन्द्र, चोर, कुड़ा, जूता, सपना, सुनार, रूमाल, काँटा, कुत्ता, केला, लहँगा, मेंह, हाथ, हार आदि अनेक माध्यमों द्वारा केवल साजन-और-साजन का ही सर्वत्र विषय-विलास दिखाया गया है। उस समय की लोक-रुचि में अश्लीलता का कितना प्रवेश था और लम्पटता कितनी रुचिकर बन गयी थी—यह सब इन कह-मुकरियों की लेखन-शैली से ज्ञात हो रहा है।

ऐसे वातावरण में कामुकों का ध्यान उन पतली दुबली छैल छबीली[4] तिरियाओं पर

---

१. सन्त कबीर, पृ० २७४

२. १. मसनवी किरानुस्सादैन २. मसनवी मतल उल् अनवार ३. मसनवी शीरीं व खुसरु ४. मसनवी लैली व मजनूँ ५. मसनवी आईने इस्कंदरी या सिकन्दरनामा ६. मसनवी हश्त बिहिश्त ७ मसनवी खिज्रनामः या खिज्रखाँ देवल-रानी या इश्किया ८. मसनवी नुह सिपहर ९. मसनवी तुगलक नामा।

३. ब्रजरत्नदास : खुसरो की हिन्दी कविता, पृ० ३६ से ४१

४. वही : बूझ पहेलियाँ, संख्या १, पृ० १६

जमा रहता था, जो बड़ी नजाकत से लचकती हुई[1] चलती थीं, काले चिट्टे बाल[2] सजाये हुए, 'घूम घुमेला लहंगा पहिने' हुए,[3] बन ठन कर,[4] भड़कीले वस्त्र धारण कर[5] लोगों को तरसाती[6] रहती थीं। कवि को, जो तत्कालीन जन-साधारण का प्रतिनिधित्व करता ऐसी स्त्रियाँ जो व्यभिचार मार्ग पर आरूढ़ रहती थीं,[7] परम घृणास्पद प्रतीत होती है। वह उन्हें 'कुनार' और 'छिनाल' तक की संज्ञा देता है और उन्हें देखना तक पसन्द नहीं करता।[8] यहाँ तक कि एक ढकोसले में कवि ऐसी विषाक्त सुन्दरियों के बड़े-बड़े नेत्रों को उपमा, क्रोधपूर्वक, बैल के सींग से देता है। उन बुढ़ियाओं को, जो स्वयं तथा अन्यान्य नवेलियों को ऐसे नीच कृत्य में प्रवृत्त करती है, कवि 'कलमुँही' और 'शैतान को खाला' कहता है, और फिर भी जब उसे संतोष नहीं होता तो शाप-सा देना चाहता है।[9]

नारी वही प्रशस्य है, जिसका हृदय पति के हृदय से एक रंग हो गया।[10] पति का

---

१. वही : संख्या ३ 'लचकत चैसे नारी', पृ० १६

२. वही, संख्या १५, पृ० २१

३. वही संख्या १० पृ० २०

४. वही, संख्या ६, पृ० २०

५. वही, संख्या ६०, पृ० २६—'पर वह रंग-रंगीली'

६. वही, संख्या ५७, पृ० २६

एक नार नौरंगो चंगी, वह भी नार कहावै।
भांति-भाँति के कपड़े पहने, लोगों को तरसावै॥

७. वही, संख्या ४३, पृ० २४, ग्यारह देवर छोड़ के चली जेठ के

८. क. वही, संख्या ४४, पृ० २४—एक नार दो को ले बैठी।

ख. वही संख्या ७२, पृ० २७

एक पुरुख और नौ लख नारी। सेज चढ़ी वह तिरिया सारी
जले पुरुष देखे संसार। इन तिरियों का यही सिंगार

ग. वही संख्या ७३, पृ० २७

एक पुरुष औ सहसों नार। जले पुरुष देखे संसार॥
बहुत जले औ होवे राख। तब तिरियों की होवे साख॥

घ. वही, संख्या ६५, पृ० ३०

बालों बाँधी एक छिनाल। नित वो रहवे खोले बाल॥
पी को छोड़ नफर से राजी। एतुरा हो सो जीते बाजी॥

ङ. वही, संख्या २४, २२—ऐसी नार कुनार को मैना देखन जावँ।

९. वही, बूझ पहेलियाँ, संख्या ४, पृ० १६

एक बुढ़िया शैतान की खाला। सिर सफ़ेद और मुँह है काला।
लुंडों घेरे है वह नर नार। लड़के रखे हैं उससे प्यार॥
उछले कूदे नाचे वो। आग लगे उस बुढ़िभस को॥

प्यार और विश्वास पाकर वह जीवन को सफल समझती है।[1] उसका प्रियतम उसके लिए नायक बन जाता है, उसका शृंगार करता और मान बढ़ाता है,[2] मीठी-प्यारी बातें करता[3] तथा उसके मृदुल लावण्य की साज सँभाल करता है।[4] किन्तु यदि नारी का व्यवहार रसहीन हो तो वह पुरुष की चहेती नहीं बन पाती, ऐसी स्त्रियों को उनके पति पीटते भी रहे होंगे—ऐसा खुसरो की एक पंक्ति से प्रकट होता है।[5]

खुसरो के समय में परदे का प्रचलन हो गया था और स्त्रियाँ छिपे स्थान पर स्नान करती थी।[6] छुआछूत की समस्या प्रबल थी।[7] इस समय फूहड़ स्त्रियाँ भी थी, जिनमें गृहस्थी के संचालन की रुचि और रीति नहीं थी।[8] नवयुवतियाँ और विरहिणियाँ कामाभितप्त रहती थी और अपने भावोच्छ्वासों को गीतों में अभिव्यक्ति देती थी।[9] सावन का महीना विवाहिता

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये एकरंग॥ (२६१)

१. वही, कहमुकरियाँ, संख्या १८६, पृ० ३६
बखत बेबखत मोयं बाकी आस। रात दिना वह रहवत पास॥
मेरे मन को सब करत है काम। ऐ सखि साजन ना सखि राम॥

२. वही, कहमुकरियाँ, संख्या १६३, पृ० ३६
मेरो मोंसे सिंगार करावत। आगे बैठ के मान बढ़ावत॥

३. वही, कहमुकरियाँ, संख्या २१३, पृ० ४१
आठ पहर मेरे ढिग रहै। मीठी प्यारी बातें करै॥

४. वही, कहमुकरियाँ, संख्या १६२, पृ० ३६
मेरा मुँह पोछे मोको प्यार करे। गरमी लगे तो बयार करै।

५. वही, कहमुकरियाँ, संख्या २४२, पृ० ४३
जोरू क्यो मारी, ईख क्यो उजाड़ी ?—रस न था।

६. वही, दो सखुना हिन्दी, संख्या २३४, पृ० ४३
सितार क्यों न बजा, औरत क्यो न नहाई।—परदा न था।

७. वही, ढकोसला, संख्या ८, पृ० ४६
भादो पक्की पीपली, चू चू पड़े कपास।
बी महतरानी दाल पकाओगी, या नंगा सो रहूँ ?
तथा—ढकोसला संख्या १, पृ० ४८

८. वही, ढकोसला संख्या ७, पृ० ४८
खीर पकाई जतन से चरखा दिया जलाय।
आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजाय॥
ला पानी पिला॥

६. वही बसन्त और फुटकर पद्य, संख्या २८६ गीत, पृ० ४६-५०
तथा, दो सखुनाहिन्दी और फारसी, संख्या २७४, पृ० ४७

स्त्रियाँ भी अपने पिता के यहाँ ही झूले आदि के आनन्दों में जीवन व्यतीत करती थीं।[१] अंगिया, चुनरी, चोली, चूड़ियाँ, चूड़े, रङ्ग-बिरंगे कपड़े, अनेक प्रकार के गोटे, गहने, कंठा-कंठी, मेंहदी, सुरमा, काजल, मिस्सी, पान, चौसर और चौपड़ के खेल, डोली की सवारी, झूला-झूलना, चक्की चलाना, मुक्ता, दर्पण, आरसी आदि का प्रयोग स्त्री-जगत् में होता था।[२]

यह भी स्मरणीय है कि स्त्री-धन-ग्राही व्यक्ति समाज के निरादर का भाजन होता था। स्त्री का ही सारा स्वत्व माना जाता था।[३]

हिन्दू राज्यतन्त्र के समाप्त हो जाने पर भी भारतीय ग्राम्यजीवन मुसलमानों से आक्रान्त नहीं हुआ था। जीवन की मधुरता और सरसता पूर्ववत् चल रही थी। गार्हस्थ्य-जीवन की सुख-सुषमा सर्वत्र विद्यमान थी। मुसलमान कवि खुसरो ने भी भारतीय जीवन के इस सौन्दर्य पर मुग्ध होकर हिन्दी में इसके रमणीय चित्र अंकित किये हैं।[४] खुसरो ने लक्ष्य किया था कि भारतीय दम्पति द्विधा-भाव से सर्वथा रहित हैं, उनका पूर्ण आध्यात्मिक एकीकरण हो गया होता है।[५] एक गीत में भी वधु-गमन की वैसी ही कारुणिकता अंकित की है, जैसी कालिदास ने शकुन्तला के पतिगृह गमनावसर पर की थी।[६]

इस प्रकार खुसरो के काव्य में भारतीय नारी का सच्चा चित्रण हुआ है; हाँ, बदलते हुये प्रभाव भी उभर आये हैं।

---

१. वही, सावन का गीत, संख्या २६०, पृ० ५१
२. समस्त खुसरो काव्य में यत्र-तत्र उल्लिखित।
३. वही, पहेली, संख्या ११६, पृ० ३२
   बात की बात ठठोली की ठठोली।
   मरद की गांठ औरत ने खोली॥
४. वही, फुटकर पद्य संख्या ८, पृ० ५१
   गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
   चल खुसरो घर आपने रैन भइ चहुँ देस॥ २६२ आदि
५. वही, फुटकर पद्य संख्या ७ : २११: पृ० ५१
६. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रदीप, पृ० ३६-३७ पर उद्धृत
   बहुत रही बाबुल घर दुलहन, चल तोरे पी ने बुलाई।
   बहुत खेल खेली सखियन सों, अन्त करी लरिकाई॥
   + + +
   चले ही बनेगी, होत कहा है, नैनन नीर बहाई।
   अन्त बिदा होय चलि है दुलहिन, काहू की कछु न बसाई॥
   मौज खुसी सब देखत रहि गये, मात पिता और भाई।

तृतीय अध्याय

भक्तिकाल से पूर्व हिन्दी साहित्य में नारी

क. विद्यापति का नारी चित्रण।
ख. वीर काल में नारी।

विद्यापति का नारी-चित्रण

आज्ञा यत्र न लंघ्यते न विनये वैषम्यमारोप्यते
सद्भावः प्रथमोदियतो न हृदये वाच्यास्पदं नीयते ।
अन्योन्यं सुखदुःखयोः समतया यद् भुज्यते वैभवं
तत्प्रेम प्रिययोर्मुदे तदितरत् कन्दर्प-कारागृहम् ।।

पुरुष परीक्षा ३७।४

विद्यापति का जन्म चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था, जो मिथिला के लिए दुर्भाग्य का समय था। मिथिल नरेश गणेश्वर की २५२ लक्ष्मणाब्द में सुलतान असलान ने छलपूर्वक हत्या कर दी थी। जनता विजेता के अत्याचारों से पीड़ित, संत्रस्त और आश्रयहीन हो गई थी। अराजकता और दरिद्रता की विभीषिका में सद्‌गुणों और शालीनता का होम हो गया था। यह स्थिति तब तक चलती रही, जब तक कि सन् १४०३ में जौनपुर के शासक इब्राहिम शाह की सहायता से तिरहुत का उद्धार नहीं कर लिया गया। विद्यापति ने अपनी 'कीर्तिलता' में इसका विशद वर्णन किया है।[1]

विद्यापति ने अपनी 'कीर्तिलता' (ई० सन १३८०) में जौनपुर नगर का जो वर्णन किया है, वह तत्कालीन भारतीय समाज का एक सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है। जयदेव के समय से या उससे पहले से ही जो वासना की तरंगिणियाँ प्रोच्छलित प्रवाहों से समाज को परिप्लावित करने लगी थीं, वे अब विगर्हा-कलित-विलुलित होती हुई जन-मानस को पूर्णतः ईर्ष्यांकिल बना चुकी थीं। समाज के रक्त में वासना के कण इतने अधिक संबिद्ध हो चुके थे कि चेतना और ज्ञान-तंतु सभी को विषयों की मरीचिका ने प्रेमाकुल कर दिया था। परिणाम-

---

१. कतहु तुरुक बरकई, बाँट जाइते बेगार गर।
घरि आनए बाँभन बटुवा, मथा चढावए गाइक चुडुवा ।।
फोट चाट जनेऊ तोड उपर चढावए चाह घोर।
धोआउरि धाने मदिरा साँध देउर भाँगि मसीद बाँध ।।
गोरि गोमठ पूरिल मही, पएरहु देना एक ठाम नहीं।
हिन्दु बोलिदुरहि निकार, छोटे ओ तुरका भभकी मार ।।
हिन्दुहि गोट्ठओ गिलिए हल तुरुक देखि होअ भान।
अइसेओ तसु परताणे रह चिरे जीवत सुरतान ।।
—कीर्तिलता, पृष्ठ ४४

स्वरूप घर-बाहर, नगर-उपवन, हाट-बाट, गली-कूचो, विद्वत्समाजों, ग्राम-गोष्ठियों, धार्मिक कृत्यों और सामाजिक उत्सवों सभी में पुष्पदृष्टि के लुब्ध रस-लिट्, गंगला-मुखियो को ही नहीं अपितु अभिजातोत्तम-लोचन-मरन्द पर लोट-पोट होते रहने में ही जीवन की चरमश्री समझने लगे थे।

यही कारण है कि हम 'कीर्त्तिलता' के कवि को जौनपुर की वीथियों में वानिनियों-दुकानदारिनियों की विभ्रम भंगिमाओं को चित्रित करते हुए देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नगर में पान की दुकानों की शोभा प्रमदा विक्रेत्रियों से ही होती थी और ताम्बूल की मधुरता उनकी रस-स्निग्ध दृष्टि से ही अभिवृद्धि पाती थी अतः नागरिक जन खैरसार की लालिमा के लिए कम, कामिनियों की व्रीडा-लालिमा से अनुरंजित होने के लिए वहाँ अधिक पहुँचते थे। सहस्रों चतुर, रूपवती, यौवनवती और गुणवती बनिनियाँ सड़कों पर सखियों के साथ बैठी रहती थी।[1] ऐसी कामिनियाँ भी मतकुंजर गति से चलती हुई चौराहों और बाटों में घूम-घूम कर, मुड़-मुड़कर पुरुषों पर कटाक्ष-पात करती थी।[2]

सच्चरित्र और संयमी लोग, जो इस कुटिल कटाक्ष-कन्दर्प-शर-श्रेणी से बचना चाहते थे, गँवार की संज्ञा पाते थे।[3] मार्ग में चलती हुई स्त्रियों को परेशान किया जाता था, गुंडे धक्का-धक्की करके उनकी चूड़ियाँ तोड़ देते थे।[4] वर्णाश्रम-धर्म नष्ट किया जा रहा था, यति भी स्त्री-गामी हो रहे थे।[5] गुण्डों की बाढ़ आ गई थी, धर्म-भीरु हिन्दुओं को गन्दा कह धकियाया जाता था।[6] नटिनी, तुरकिनी और स्वैरिणी स्वैरगति रखती थी।[7] ऐसे वातावरण

---

१. सब दिसं पसरु पसार रूप जोव्वण गुणे आगरि।
वानिनि वीथी माहि वइस सए सहसहि नागरि॥
—कीर्त्तिलता पृ० ३२

२. चलकमल पत्त-पमान नेत्तहि मत्त कुंजर गामिनी।
चौहट्ट वट्ट पलट्टि हेरहि साकसाकहि कामिनी॥
—कीर्त्तिलता पृ० २६

३. तान्हि करो कुटिल कटाक्ष छटा कन्दर्प शर श्रेणी जओ नागरन्हि
का मन गाउ। गो बोलि गमारन्हि खाउ।
—कीर्त्तिलता पृ०, ३६

४. यात्रा हु उह परस्त्रीक वलया भाग।
—कीर्त्तिलता, पृ० ३०

५. ब्राह्मण क यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लुव।
वेश्याह्नि करो पयोधर जटीक हृदय चूर॥
—कीर्त्तिलता, पृ० ३०

६. कही कोटि गन्दा, कही बादि बन्दा।
कही दूर टिक्काविए हिन्दु गन्दा॥
—की

७. गीति गरुदि आ

में कुल-कामिनियाँ भी विचलित हो जाती रही होंगी ।[१] एक स्त्री के अनेक प्रेमियों में दाँवपेंच और हत्या के प्रयास भी चलते होंगे ।[२] युद्धस्थल में भी स्त्री-सहवास चलता रहता था ।[३]

मुस्लिम राज पुरुष हिन्दू स्त्रियों को अपमानित करने के लिए कटिबद्ध रहते थे। जिस किसी राजा को वे जीतते, उसके यहाँ की अगणित नारियों को बन्दी बाँदियाँ बनाते[४] और बाजारों में बेचते थे ।[५] ये सैनिक गृहस्थी जोड़कर नहीं रखते थे उनके परिणीता तो होती ही नहीं थी ।[६] जहाँ गये, वहीं की कोई स्त्री पकड़ ली ।[७] पराजित राजाओं की बाँदियाँ विशेष रूप से छीनी जाती थीं ।[८] इन कार्यों में मुसलमान आततायियों को निन्दा, अधर्म लज्जा भाव आदि की शंका नहीं रहती थी [९] स्त्रियों के प्रिय पति उनकी आँखों के सामने मारे जाते थे,

---

चरख नाच तुरुकिनी आन किछु काहु न भावइ ॥
अप्रद सेरणी विलहु सव्व को जूठ सव्व पा ।

—कीर्त्तिलता, पृ० ४२

१. पुन्दकारी हुकुम कहलो का अपने लो जाए परारिहा ।

—कीर्त्तिलता पृ० ४२

२. बे भूपाला मेझ्नी वेण्डा एक्का नारि ।
सहहिन पाइ वेवि मर अवस करावए मारि ।

—कीर्त्तिलता, पृ० ६०

३. मधुपान रतोत्सव करी परिपाटि राज्य सुख अनुभवन्ते ।

—कीर्त्तिलता, पृ० ६८

४. गो यम्मन वँभ दोस न मानथि ,
परःपुरनारि वन्द कए आनथि ॥

—कीर्त्तिलता, पृ ६०

५. अरल घांगड वाटकहि लटक वड डे दिस धाड़ें जथि ।
तं दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि ॥

—कीर्त्तिलता, पृ० ६०

६. न दीनाक दया, न सकता क डर
न वासि सम्वर न विआहीं घर ।

—कीर्त्तिलता, पृ०६२

७. उद्धरण १२

८. कुल्आ का तेल आंड़ लाइ क
वाँदी वड दासनो छाड़ क ॥

—कीर्त्तिलता, पृ० ६८

९. न आपक गरहा न पुन्यक काज
न शत्रु क शंका न मित्र का लाज ।

—कीर्त्तिलता, पृ० ६२

घर लूटे जाते थे और नौनिहाल फाड़ कर फेंके जाते थे।[१]

स्त्रियों की सज्जा :

विद्यापति के समय में केशों को पुष्पावलि से सजाना,[२] भ्रू-लता-भंगिमा उत्पन्न करना,[३] सीमन्त में सिन्दूर भरना[४] आदि स्त्रियों की अलंकृति के प्रमुख साधन थे। मध्य कटि-क्षीणता,[१] पयोधरों की मुखरता,[२] नेत्रों की मादकता,[३] स्वर की मधुरता[४] और अंचल की फहरान[५] उनमें निहित रम्य आकर्षण के माध्यम थे। स्त्रियां सुन्दर चित्रों, आभूषणों, वस्त्रों, फलों और फूलों के प्रति विशेषतः आकृष्ट होती थीं।[६]

वेश्याओं की रूप सज्जा आकर्षण का प्रमुख केन्द्र थी और वह सुन्दर अलंकृति की आदर्शभूता मानी जाती थी। केश-रचना करना, जूड़े बनाना, तिलक लगाना, पत्रावली लगाना और रेशमी वस्त्र धारण करना सर्वसामान्य प्रसाधन थे।[७] चपला, उज्ज्वलदर्शना, क्षीणकटि

---

१. दूर दुग्गम आगि जारथि
ना विभारि बालक मारथि।
लूडि अर जन, पेटे वए
अन्याजे वृद्धि, कन्दल खए॥

—कीर्तिलता, पृ० ६२

२. तन्हि केश कुसुम वस, जनि माण्य जनक लज्जावलंबित मुखचन्द्र चन्द्रिका करो अधोगति देखि अन्धार हस।

—कीर्तिलता पृ० ३६

३. नअनाचल संचारे भूलताभंग, जनि कज्जल कल्लोलिनी करो वीचि-विवर्त बड़ी-बड़ी शफरी तरंग। —वही

४. अति सूक्ष्म सिन्दूर-रेखा दिन्हले पाए, जनि पचशर करो पहिला प्रताप।

—वही

१. दोसे हीनि, माझ खीनि। —वही
२. रसिके आनलि जूआँ जीति, पयोधर के भरें भागए चाह। —वही
३. नेत्रक रीति तीय भागे तीनु भुवन साह —वही
४. सघर वान राअन्हि छाज —वही
५. काहु होअ अइसनो आस,
कइसे लागत आचर बतास॥
६. चमत्कारिषु चित्रेषु भूषणेष्वंबरेषु च।
लोभो भवति नारीणां फलेषु कुसुमेषु च॥

—पुरुष परीक्षा २७।४, पृ० २०३

७. तान्हि वेश्याहि करो सुखसार मण्डन्ते, अलक तिलका पत्रावली लण्डन्ते दिव्याम्बर पिन्धन्ते, उभारि उभारि केशपाश बन्धन्ते।

—कीर्तिलता, पृ० ३४

वेश्याएँ सखियों से छेड़-छाड़ करती हुई और कुटिल कटाक्षपात करती हुई पुरुषों को मोहित करती थीं।[१]

वेश्याओं का आधिक्य :

ऐसा प्रतीत होता है कि वेश्याओं का इस युग में आधिक्य था। सामान्य जनता इनकी ओर आकर्षित होती थी, यद्यपि वह सशंक भी रहती थी[२] और उन्हें छलनामयी, छद्ममयी, कलंकिनी तथा धूर्तता की आगार मानती थी।[३] उनका सिन्दूर लगाना केवल पुरुषों को ठगने का साधन था।[४] वेश्याओं के भवन राजपथ में सर्व दृष्टि-आपात्य स्थानों पर होते थे। ये अति भव्य होते थे, इतने कि जैसे इनके बनाने में विश्वकर्मा को भी परिश्रम करना पड़ता।[५]

नारीविषयक तत्कालीन आदर्श :

'पुरुष परीक्षा' नामक अपने संस्कृत चम्पू-काव्य में विद्यापति ने अपने समय से कुछ पूर्वकालीन इतिहास का भी दिग्दर्शन कराया है। हम्मीर देव के समय का जौहर,[६] राजा जयचन्द्र की पत्नी का विश्वासघात,[७] स्त्री की मूर्खता से हानि,[८] एक रानी के व्यभिचरण[९] आदि के वर्णन करते हुए कवि ने यह भी बताया है कि काम-विहीन मन ही शुद्ध होता है,[१०] वामा-नयन-विशिख-सहाय काम-चौर का परिणाश करते ही मुक्ति मुट्ठी में आ जाती है।[११]

इन कथाओं का सार निकालते हुए कवि ने पत्नीव्रत का आदर्श उपस्थित किया है।

---

१. सखिजन प्रेरन्ते, हसि हेरन्ते सआनी, लाख्मी, पातरी पतोहारी, तरुणी, तरट्टी, वन्ही तरुणीं, विअख्खणी परिहास पेसणी सुन्दरी सार्थे जबे देखिअ तबे मन कर वेसरा लागि तीनू उपेख्खिअ। —वही।

२. जं गुण मन्ता अलहना गौरव लहइ भुअङ्ग।
वैसा मन्दिर धुअ वसइ धुत्तह रूअ अनङ्ग॥
—कीर्त्तिलता, पृष्ठ ३४

३. अवरु वैचित्री कहू जो का जन्हि केस धूप धूम करी रेखा ध्रु वहु उप्पर जा। काहु काहु अइसेनजो संगत करे का जरे चान्द कलंक लज्ज कित्तिम, कपट तारुन्न। धनमिमित्ते धर पेम, लोमे विनअ, सौभागे कामन। —वही

४. 'विनु स्वामी सिन्दूर परा परिचय अपामन। —वही

५. राजपथक सन्निधान संचरन्ते अनेक देखिअ वेश्यान्हि
करो निवास, जन्हि के निर्माणे विश्वकर्मुंह मेल बड प्रयास।
—कीर्त्तिलता, पृ० ३२

६. पुरुष परीक्षा वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित, सं० १९८४, पृष्ठ १६

७. वही ३७ घस्मरकथा पृष्ठ २०१ से २१३

८. वही ३७ घस्मरकथा, पृष्ठ २०३ से २०५

९. वही ४० निस्पृहकथा, पृष्ठ २२१

१०. वही — पृष्ठ २१८ श्लोक ६-१०

११. वही पृष्ठ २१८ श्लोक ११

इससे यह स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज मे एक पत्नीव्रत सम्मानास्पद था।[१] समाज यह अपेक्षा रखता था कि पति-पत्नी एक दूसरे का पूरा ध्यान रखें।[२] यदि स्त्री की सौभाग्यता पति की अनुकूलता में है,[३] तो पुरुष का सौख्य भी पत्नी के प्रति सच्चे रहने में निहित है।[४] परस्त्री मे माता की भावना रखना सर्वसिद्धि प्रदायी है।[५] ऐसा काम ही धर्म का शृङ्गार है।[६]

विलास पर अर्थाभाव का आघात :

प्रेम-प्रणय और विलास की रंगीनियों के होते हुये भी आर्थिक विषमताओं का प्रभाव पड़ रहा था और प्रत्येक दम्पती के दश-दश पुत्रोत्पत्ति की स्मृति-कालिक इच्छा अब नष्ट हो चुकी थी। अब तो बहुपत्यता दारिद्रय का हेतु मानी जाने लगी थी।[७]

---

१. वही, ३५ अनुकूल कथा पृष्ठ १६१
२. वही, ३७ दक्षिण कथा पृष्ठ १६७-२००
३. धाता नीतिज्ञ कार्येषु सारि क्रीडासु पाशक।
सौभाग्येषु प्रियः स्त्रीणामनुकूलः प्रतीक्ष्यते ॥
—वही ३७।५
४. (क) या कुत्रापि न विस्मृता न च दृशो तृप्ते यदालोकने।
यस्याश्चाधर पावनतया श्लाध्य जनुः स्वीकृतम्।
त्व मे प्राणसमाऽसि भाषितमिदं यस्यै मुद्रा प्रत्यहं
तस्याः किं विरहेऽपि जीवितमतो वाचालता नाथ्यये ॥
वही ३५।८
(ख) भूयादनश्वरं प्रेम यूनोर्जन्मनि जन्मनि।
धर्मं शृङ्गार सयुक्त सीता राघवयोरिव ॥ वही ३५।५
(ग) स्वकीया के प्रति प्रेम रखना पुण्यवत्ता का लक्षण है :—
स्वकीय परकीया वा वनितेत्य मिधीयते।
तन्मध्ये परकीया तु क्षणादेव विमुचति ॥६॥
स्वकीया तु महापुण्ये तम्याकस्यापिदेहिनः।
सम्पतौ च विपत्तौच मरणेऽपि न मुचति ॥
तत्स्वकीया प्रति प्रेम जायते पुण्यकर्मणं ॥७॥
—पुरुष परीक्षा, कथा ३५
५. वसु लोष्ठसमानं मे स्त्रियः सर्वाश्च मातरः।
जन्तवः सुहृदः सर्वे परबुद्धिर्न कुत्रचित् ॥३॥
पुरुष परीक्षा, कथा ४१
तथा
६. त्रिवर्गेष्वपर काम फलं धर्मार्थयोरपि।
तत्रामंगो भवेद्यस्य स कामी कथ्यते पुमान ॥२॥
पुरुष परीक्षा कथा ३५
७. पुरुष परीक्षा ३४ सावधान कथा श्लोक २-३ पृ० १८८

जीवन इतना विषम हो चुका था कि पति के विरह से उत्पन्न एकाकी स्थिति की विभीषिकाओं में तिल-तिल जलने की अपेक्षा वियोगिनियाँ जीवित ही एकबारगी जल मरना पसन्द करती थीं। इसमें जहाँ वियोग का कष्ट सालता था, वहाँ उससे भी अधिक असहाय-अशरण अवस्था की भयावह कल्पना भी अपना योग अवश्यमेव देती होगी।[1]

इन सब परिस्थितियों तथा तत्कालीन हिन्दू मनोवृत्ति का अध्ययन करने पर डा० रामरतन भटनागर का यह कथन कुछ सारयुक्त प्रतीत होता है कि विद्यापति ने शैवसर्वस्वसार, प्रमाण-भूत, पुराण-संग्रह, गंगा वाक्यावली, दुर्गाभक्ति तरंगिणी, दान वाक्यावली और वर्ष कृत्य जैसी धार्मिक पुस्तकें लिखकर मुसलमानी आक्रमणों से उत्पन्न समाज-संकट को रोकने के लिए आचार-विचारों को कड़ा करने वाली तत्कालीन प्रवृत्ति में योग दिया है।[2]

विद्यापति के समय में हिन्दू जाति पर जो संकट था, वह ठीक वैसा ही हिन्दी के भक्तिकाल में भी बना रहा, ऊपर से इतना अन्तर अवश्य हो गया था कि भक्तिकाल में हिन्दू राजा प्रतिरोध शक्ति भी खो बैठे थे। अतः भक्तिकाल के कवियों की नारी-भावना ठीक विद्यापति की सी रही, और उन्होंने भी विद्यापति की भाँति ही प्रेम, शृङ्गार, भक्ति विरक्ति, तथा समाज सुधार के विचार प्रकट किये। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी सभी इस दृष्टि से विद्यापति जैसे ही हैं। हाँ भक्तिकाल में विरक्ति की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई थी, जिससे नारी निन्दा के वाक्य भक्तिकाल में ही अधिक मिलते हैं। वैसे घोर शृङ्गारी कहे जाने वाले विद्यापति की 'पुरुष परीक्षा' की चरम प्रतिपाद्यता भी विरक्ति की उक्तियों में ही है।[3]

किन्तु वस्तुतः, भक्तिकाल की नारी-भावना को उसकी पृष्ठिभूमि सहित समझने के लिए विद्यापति की नारी भावना को समझ लेना अनिवार्य है। अतः हम विद्यापति के नारी चित्रण पर किंचित विस्तार से विचार करेंगे।

विद्यापति द्वारा शृङ्गार का उदात्तीकरण :

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन,[4] कुमार स्वामी,[5] जनार्दन मिश्र,[6] आदि विद्वान् विद्यापति को

१. सून सेज हिय सालय रे
पिया बिनु घर मोय आजि।
विनति करों सहलोलिनि रे
मोहि देह अगिहर साजि ॥७॥
—विद्यापति पदावली श्री बेनीपुरी संपादित विरह, पद सं० १८६
२. डॉ० रामरतन भटनागर—विद्यापति पृ० ६
३. पुरुष परीक्षा—विर्वेन्द्रि, निस्पृह तथा लब्धसिद्धि की कथाएँ।
४. Grierson—Maithili Crestomathy p. 36
५. Kumar Swami—Songs of Vidyapati
६. 'विद्यापति, पृष्ठ ४७
तथा, मिलाइये—
श्री नागेन्द्र नाथ गुप्त का पटना विश्वविद्यालय में सन् १९३५ में दिया गया भाषण।

रहस्यवादी कवि मानते है। इसके विपरीत विनयकुमार सरकार,[1] डॉ० सुभद्रा झा,[2] तथा शिवप्रसाद सिंह[3] उन्हें शृङ्गारी कवि मानते हैं। रहस्यवादी मानने के लिए जो तर्क दिये गये हैं, उनमे मुख्य यही है कि वह समय ही रहस्यवादी भावना का था किन्तु हम देखते हैं कि विद्यापति मे तत्कालीन रहस्यवादी प्रतीक कही नही मिलते। उनके काव्य मे हठयोग, सहज समाधि, षट्चक्र, कुंडलिनी, माया, ब्रह्म, सद्गुरु, सबद, अनाहत नाद, 'महामुद्र' आदि कुछ भी नही है। उनके प्रेम में न गुह्य उपासना है, न प्रतीकवाद।[4] शुक्ल जी तो विद्यापति को कृष्णभक्त भी नही मानते। उनके अनुसार वे शैव थे, और कृष्ण-भक्त नही हो सकते थे।[5] श्री शिवनन्दन ठाकुर भी इसी मत के है।[6] किन्तु शैव और वैष्णव भक्तो का वैमनस्य विद्यापति के समय में आरम्भ ही नही हुआ था। वायु पुराण,[7] विष्णुपुराण,[8] आदि मे शिव और विष्णु को एक ही माना है। 'प्राकृत पैंगलम,[9] में 'जयति हर, जयति हरि' एक साथ आये है, तथा सेनवंशीय राजा विजयसेन द्वारा निर्मित प्रद्युम्नेश्वर मन्दिर के शिलालेख में विष्णु और शिव की मिश्र मूर्ति का सुन्दर वर्णन है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी यही विचार है कि विद्यापति

---

१. Love in Hindu Literature p. 20-21

२. Dr. Subhadra Jha—Songs of Vidyapati p. 183-185

३. शिवप्रसाद सिंह—विद्यापति, पृष्ठ ५७-५८

४. डॉ० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

[प्रथम भाग, पृ० ५०७, ५०८, ५०६]

'उन्होने शृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधाकृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ भी नही रह गया है—वयःसंधि, नखशिख अभिसार, मान, विरह आदि से कवि की भावना इस प्रकार संबद्ध हो गई है मानो नायक-नायिका के कार्य-व्यापार कवि की वासनामयी प्रवृत्ति के अनुसार हो रहे है। विचार इतने तीव्र हैं कि उनके सामने राधा और कृष्ण अपना सिर झुका कर उन्ही विचारो के अनुसार कार्य करते हैं। आलम्बन विभाव में नायक कृष्ण और नायिका राधा का मनोहर चित्र खीचा गया है। उसके बीच मे ईश्वरीय अनुभूति की भावना नही मिलती। एक ओर नवयुवक चंचल नायक है और यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति के लिए राधा नायिका।—कृष्ण और राधा साधारण पुरुष स्त्री हैं।—यौवन—शरीर के आनन्द ही उनके आनन्द हैं। विद्यापति के इस बाह्य संसार में भगवत भजन कहाँ, इस वय-संधि में ईश्वर से संधि कहाँ, सद्यः स्नाता मे ईश्वर से नाता कहाँ, और अभिसार मे भक्ति का सार कहाँ। उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नही। उससे हृदय मतवाला हो सकता है, शान्त नही। हम उन भावो में आत्मविस्मृत हो सकते हैं, पर हममें जागृति नहीं आ सकती।'

५. रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, नव्य सस्करण :

६. महाकवि विद्यापति, पृ० १६४

७. वायु पुराण २५।२०

८. विष्णु पुराण १।८।२१

६. प्राकृत पैंगलम्, पद ५६८।२१५

शिव और विष्णु दोनों के भक्त थे।[1] विद्यापति ने एक पद में शिव-विष्णु की समवेत वन्दना की है।[2] डॉ० रामरतन भटनागर का यह निष्कर्ष पूर्णतः समीचीन है कि विद्यापति का शृंगार उदात्त होकर भक्ति में परिणत हो गया था।

उन्होंने लिखा है—"भक्तिपदों में उन्होंने में रसिकता, कला-प्रदर्शन और पाण्डित्य का पीछा नहीं छोड़ा है। परन्तु उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी है। वे संसार के दुख-सुख के निरीक्षक हैं। और उथल-पुथल के युग में हिन्दू संस्कृति की नदी को नियमित प्रवाह देकर चिरंजीवी करना चाहते हैं। भागवत की प्रतिलिपि करने की बात से यह स्पष्ट है कि उन पर वैष्णव धार्मिक आंदोलन का प्रभाव पड़ चुका था परन्तु उस समय तक यह आन्दोलन अत्यन्त प्रारम्भिक रूप में था और विद्यापति शैव-भक्तों के बीच में रह रहे थे एवं स्वयं शैव थे। अतः वैष्णवों के कृष्ण के सच्चे रूप से परिचित होते हुए तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते हुए विद्यापति शृङ्गार शास्त्र के आधार पर कृष्ण-कथा का एक विचित्र महल उठा सके। ऐसा करते समय उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने युग की प्रवृत्ति को समझ लिया था। भले ही पदावली रचते समय विद्यापति में वैसी धर्म-भावना न रही हो, जैसी बाद के वैष्णवों ने उनके पदों में पाई, किन्तु यह तो अस्वीकार ही नहीं किया जा सकता की इनमें इतनी भावुकता, तन्मयता और अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न करने की शक्ति थी कि वैष्णव भक्त और साधक उन्हें आध्यात्मिक संकेत के रूप में ग्रहण कर सके।"[3] विद्यापति ने राधा की वन्दना में पद लिखे भी हैं, और उनमें लक्ष्मी को राधा के चरणों पर न्योछावर हुआ बताया है।[4] यही कारण है कि व्रजबलि कवि गोविन्ददास तथा कृष्णदास आदि विद्यापति को प्रेम भक्ति का कवि मानते हैं, जिनके पद श्री चैतन्य ने तन्मयतापूर्वक सुने और गाये।[5] वस्तुतः बात यह है कि नखशिख वर्णन केवल शृङ्गारी कवियों ने ही नहीं, भक्त कवियों ने भी किये हैं। किन्तु हम रूपासक्त कवि को शृङ्गारी, और रूपोपासक कवि को भक्त कहते हैं। रूपोपासना का तत्व विद्यापति की भक्ति की ओर उन्मुख करता रहा और उन्होंने उस सौन्दर्य की झाँकी देखी-दिखाई, जो प्रतिक्षण नवीनता धारण करती है, और जिसके निरन्तर दर्शन से भी कभी तृप्ति नहीं हो पाती।[6]

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ३६

२. "भलहरभल हरि— भो नारायण भो सूलपानि", विद्यापति की पदावली पद २३२ [प्रार्थना और नचारी]

३. डॉ० रामरतन भटनागर—विद्यापति पृ० १४

४. विद्यापति की पदावली : रामवृक्ष बेनीपुरी—द्वारा सम्पादित : पद संख्या २ पृ० ४

५. "कर्णामृत विद्यापति श्री गोविन्द।
दुहुँ श्लोक गीते प्रभुर कराय आनंद॥"
चैतन्य चरितावली ३।५

६. "सखि कि पूछसि अनुभव मोए
सेहो पिरित अनुराग बखानिए
तिलतिल नूतन होए॥

विद्यापति के कृष्ण-कीर्तन सम्बन्धी पद[१] उन्हें कृष्ण-भक्ति की कोटि में रखने के लिए पर्याप्त है। इन पदों ने सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भक्ति काव्यों को प्रेरणा दी होगी।

ऋग्वेद,[२] अथर्ववेद,[३] छान्दोग्य उपनिषद,[४] श्रीमद्भागवत,[५] कथावस्तु जातक,[६] मज्झिम निकाय,[७] गीत गोविन्द,[८] उज्ज्वलनीलमणि,[९] आदि ग्रंथों में रति को भक्ति का एक उपादान माना गया है। वात्स्यायन कामसूत्र में काम को धर्मार्थ का साधक माना गया था।[१०] कामशास्त्र का भक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा।[११] वज्रयान सम्प्रदाय का पंच मकार-सेवन, त्रिपुर-सुन्दरी के रूप में पराशक्ति का महत्व, चैतन्य देव का परकीया-प्रेम भाव को भक्ति का साधन मानना, और तन्त्रवाद में रति को आध्यात्मिक रंग दिया जाना आदि अनेक हेतु थे जिनसे भक्ति में शृङ्गार अनुस्यूत होता चला गया। नाथसिद्ध काव्यों, जैन काव्यों, पाली-प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य और प्राचीन व्रजभाषा काव्यों में शृङ्गार की ऐसी ही प्रतिष्ठा होती रही, जिसके परिणामस्वरूप विद्यापति को राधा का स्वरूप प्राण-प्रतिष्ठा-सम्पन्न प्रतिमा जैसा पूर्वजों की थाती के रूप में प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने सजा-सँवार कर प्रस्तुत किया। यह इतना सुन्दर बन पड़ा है कि विनय कुमार सरकार के मत में—"ऐन्द्रियता का मानवीय सम्बन्धों के साथ इतना सुन्दर सम्मिश्रण और इतने ऊँचे स्तर का चित्रण भारतीय साहित्य में विद्यापति के अतिरिक्त और किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है।"[१२]

विद्यापति की राधा :

विद्यापति की राधा-कृष्ण कथा में अपनी निजी विशेषता है। राधाकृष्ण में काव्य-

---

जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
से हो मधुबोल स्रवनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल॥

विद्यापति की पदावली-भावोल्लास पद १२८

१. विद्यापति की पदावली-प्रार्थना और नचारी पद सं० २५२ से २५५
२. १०।१२६।२५
३. ६।५।२७।२८
४. २।१३।१
५. ३।२०।२२
६. २३।२
७. भाग १ पृ० १५५
८. श्लोक ३
९. कृष्णवल्लभा ५
१०. फलभूतश्च धर्मार्थयोः।
११. द्रष्टव्य—डॉ० शिवप्रसाद सिंह विद्यापति पृ० २७।३१
१२. Love in Hindu Literature p. 20-21

शास्त्रीय नायक-नायिका भाव का आरोप कर विद्यापति ने सौन्दर्य का यह घन-विग्रह निर्मित किया है।

बालिका राधिका में वयःसंधि का प्रस्फुटन विद्यापति पदावली का आरम्भ विन्दु है। राधा अंगों का उभार देख कर कुतूहल-चकित होती है।[१] यौवन का प्रथम पद-निक्षेप उसकी अल्हड़ चेष्टाओं पर विराम लगा देता है, तथा चित्त एवं व्यवहार में विचित्रता उत्पन्न कर देता है।[२] शैशव और यौवन की यह भेंट उसके भोलेपन में लजीलापन भरने लगी है।[३] यहाँ ध्यातव्य यह है कि विद्यापति की राधा वय में कृष्ण से छोटी है। कृष्ण पहले से तरुण हैं, राधा की तरुणाई का विकास दिखाया गया है।

तब कवि को राधा के सौन्दर्य-चित्रण का अवसर मिलता है, और वह नखशिख वर्णन और सद्यःस्नाता-चित्रण के द्वारा राधा के 'अपरुप' का अंकन करता है, जिसकी झाँकी मार्ग में पाकर कृष्ण काम-शर-विद्ध हो जाते हैं।[३] इस प्रेम विह्वलता का विशद चित्रण, 'प्रेम-प्रसंग' में कवि ने किया है। एक क्षण के इस मिलन ने वेदना का संसार बसा दिया। मेघ-

---

१. सैसव जोवन दुहु मिलि गैल।
लवन के पथ दुहु लोचन लेल ॥२॥
× × ×
निरजन उरज हेरब कत वेरि।
हसइ में अपन पयोधर हेरि ॥८॥
पहिल बदरि-सम पुनि नवरंग।
दिन दिन अनंग अगोरल अंग ॥१०॥
विद्यापति की पदावली—वयःसंधि, पद ४

२. प्रगट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रकट अब तन्हिक लेल ॥८॥
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचन क धैरज पद तल जाव ॥१०॥
वही, वयःसंधि ॥पद ६॥
तथा
चंचल चरन, चित चंचल भान।
जागल मनसिज मुदित नयान ॥८॥
वही, वयःसंधि ॥पद ५॥

३. खनेखन दसन छटा छुट हास। खने खन अधर आगे गहु वास ॥४॥
चउंकि चलए खनेखन चलु मन्द। मनमय-पाठ पहिल अनुवन्ध ॥६॥
हिरदय-मुकुल हेरिहेरि थोर। खने आंचर दए खने होए लोर ॥८॥
बाला सैशव तारुन भेंट। लखए न पारिअ जेठ-कनेठ ॥१०॥
वही, वयःसन्धि ॥पद सं० ६॥

माला ने बिजली की भाँति इस दृष्टि-मेल ने हृदय को चीर डाला।[२] पवन-स्पर्श से वस्त्र खिसक गया तो राधा की स्निग्ध देह दिखाई दे गई। ऐसा लगा जैसे कनकलता निरवलम्ब रूप से पृथ्वी पर संचारित हो रही हो।[३] राधा तुरन्त अपने हाथों से कुचों को छिपाती है।[४] यह सौन्दर्य आँखों में ऐसा गड़ा कि नेत्र अब हटते ही नहीं हैं।[५]

राधा लज्जावश सिर झुका कर मुख फेर लेती है।[६] तो भी क्या हुआ, उसके चरणों का जावक भी तो पावक की भाँति हृदय और शरीर को दग्ध कर रहा है।[७] धैर्य अब कैसे

---

१. पथगति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मन मनसिज पूरल सधान॥
वही, प्रेमप्रसङ्ग ॥पद सं० २७॥

२. सजनी भल कए पेखल न भेलि।
मेघमाल सय तड़ित लता जनि
हिरदय सैल गई गैन॥
वही, प्रेम-प्रसङ्ग ॥पद सं० २८॥

३. ससन-परस खसु अम्बर रे
देखल धनि देह।
नव जलधरतर संचर रे
जनि बिजुरी रेह॥२॥
आज देखल धनि जाइत रे
मोहि उपजल रंग।
कनकलता जनि संचर रे
महि निर अवलम्ब॥
वही, प्रेम-प्रसङ्ग ॥पद सं० २६॥

४. अम्बर बिघट अकामिक कामिनि
कर कुच झाँपु सुछन्दा।
कनक-सभु सम अनुपम सुन्दर
दुइ पंकज दस चन्दा॥२॥
वही, प्रेम-प्रसङ्ग, पद सं० ३१

५. मन मोर चंचल लोचन बिकल भेल
ओनहि अनइत आई॥४॥
—वही।

६. आड़ बदन कए मधुर हास दए
सुन्दरि रहु सिर नाई॥६॥
—वही

७. चरन जावक हृदय पावक
दहइ सब अंग मोर॥८॥ वही, प्रेम प्रसङ्ग ॥पद ३२॥

रहे ![1] उधर राधा को भी तो यह स्वप्नों का नया संसार सा लगा। उसने सखी से इस अपूर्व सौन्दर्य-राशि का वर्णन अनेकानेक रूपकों में किया। फिर भी क्या यह वर्णन पूरा हो सका ? देखते-देखते ही तो उसका ज्ञान लुट चुका था।[2] वह उसे देखने में सब कुछ भूल गई, खिसकते हुए वस्त्रों को सँभालने की सुधि भी तो नहीं रही।[3] प्रिय-दर्शन के सात्विक भाव-जन्य स्वेद से ललाट का प्रसाधन बह गया। रोमांच हुआ, और हर्षोत्फुल्लता से चोली फट गई, चूड़ियाँ मुरक गईं।[4] यह सब हुआ किन्तु लज्जा ने उसके नेत्रों पर आवरण डाल दिया, यद्यपि उलट-पलट कर कृष्ण को देखने के प्रयत्नों में उसके पैर काँटों से छिद भी गए।[5] और यह सब अत्यन्त भोलेपन के साथ वह अपनी सखी से कह देती है। इस अदम्य प्रणयोच्छ्वास में भी वह भारतीय मर्यादा-निष्ठ कन्या की भाँति अपनी लज्जा-रक्षा के लिए विधाता से प्रार्थना करती है।[6] पर अपनी विवशता से वह व्यथित होती

---

१. धैरज गैल भागि।

वही प्रेम-प्रसङ्ग ॥ पद संख्या २३

२. ए सखि रंगिनि कहल निसान।
हेरइत पुनि मोर हरल गिआन ॥१४॥

वही, प्रेम प्रसङ्ग ॥पद सं० २६॥

३. सामर सुन्दर ए बाट आएत
तें मोरि लागलि आँखि।
आरति आँचर साजि न भेले
सब सखी जन साखि ॥२॥

वही, प्रेम-प्रसङ्ग ॥पद सं० ३६॥

४. तनु पसेव पसाहनि भासलि,
पुलक तइसन जागु।
चूनि चूनि भए कांचुल फाटलि,
बाहु बलआ भाँगु ॥८॥

वही, प्रेम-प्रसङ्ग ॥पद ३८॥

५. तीर तरङ्गिनी कदम्ब कानन
निकट जमुना-घाट।
उलटि हेरइत उलटि परलओं
चरन चीरल काँट ॥६॥

वही, प्रेम-प्रसङ्ग ॥ पद संख्या ३७ ॥

६. कि कहब हे सखि इह दुख ओर।
बाँसि-निसास-गरल तनु भो ॥२॥
हठ सयं पइसए सूवन माझ।
ताहि खन विगलित तनमन लाज ॥४॥

है,[1] प्रिय-दर्शन-सम्भाषण-लालसा उसमे अस्थिरता उत्पन्न करती ही है। वह कामदेव से कहती है कि कृष्ण को आते-जाते कौन नहीं देखता, पर तेरा पुष्प-शर अन्य किसी को नहीं बेधता, मुझे ही तेरे पांच-पांच बाण क्यों घायल करते हैं ?[2] और यह तब है जब कि मैं कृष्ण को केवल बाएँ नेत्र के अर्ध भाग (कटाक्ष) मात्र से देखती हूँ, क्योंकि दाहिने नेत्र से तो दुष्ट-जन-परिवाद भय से, और बायें नेत्रार्ध से परिजनों के कारण कृष्ण को नहीं देख पाती।[3]

ऐसी अवस्था में दोनों ओर दूतियों की सहायता ली जाती है। दूती को गुरु रूप मानने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। कृष्ण की दूती उनकी धूलि-लुंठित[4] व्यथा-विधुर अवस्था का चित्र राधा के सामने खोलती है।[5]

विपुल पुलक परिपूरए देह।
नयन न हेरि हेरए जनु केह ॥६॥
गुरुजन समुखहि भाव तरंग।
जततहि बसन झाँपि सब अंग ॥८॥
लहु लहु चरणा चलिए गृह माझ।
आजु दइव बिहि राखल लाज ॥१०॥
वही, प्रेम प्रसंग ॥ पद संख्या ४१॥

१. तन मन बिबस खसए निबि-बंध।
कि कहब विद्यापति रहु धन्द ॥१२॥
वही, पद ४१

२. मनमथ तोहे की कहब अनेक।
दिठि अपराध परान भए पीड़सि
ते तुअ कौन विवेक ॥२॥
× × ×
पुर बाहिर पथ करत गतागत
के नहि हेरत कान।
तोहर कुसुम-सर कत हुँ न संचार
हमर हृदय पंच बान ॥६॥
वही, प्रेम प्रसंग ॥पद संख्या ४३॥

३. दाहिनि नयन पिसुनगन बारल
परिजन बामहि आध।
आधनयन-कोने जब हरि पेखल
तें भेल अत परमाद ॥४॥
वही, प्रेम प्रसंग ॥पद संख्या ४३॥

४. वही, दूती, पद संख्या ४८

५. वही, दूती पद संख्या ४५ तथा ४६

उनकी अनन्यता प्रदर्शित करती है।[१] विरह-भुजंगिनि-दंशित[२] कृष्ण के हृदय की चिकित्सा राधा के अभिसार से ही संभव है,[३] ऐसा कहती है और साथ ही यह भी कह देती है कि यदि श्रीफल के गुण-ग्राहक को गँवा दिया तो फिर पछतावा ही हाथ रह जायगा,[४] तुम ग्वालिन के मट्ठे के मूल्य की रह जाओगी।[५]

इधर राधा की दूती भी कुछ ऐसा ही उपक्रम करती है। वह कृष्ण से कहती है कि राधा तुम्हारे लिये रोया करती है, रात दिन जाग कर तुम्हारा नाम जपती रहती है, उसका ताप निरन्तर बढ़ रहा है।[६] कुहू-शशि के समान वह इतनी क्षीण हो गई है कि उठ भी नहीं सकती। सखियाँ हाथ पकड़ कर उठाती हैं।[७] वह पृथ्वी पर लोटती है, उसाँसें लेती है, क्षण-क्षण मूर्च्छित होती है, अब तो तुम्हारे कर-स्पर्श के बिना जी नहीं सकती।[८] तरुवर और लताएँ असंख्य हैं, किन्तु सभी फूलों में मधुर मधु नहीं होता। फूलों में भी विशेष फूल होते हैं। संसार में उसी फूल का खिलना सार्थक है जिस पर भौंरा मँडराए।[९] पारिजात और केतकी कितने पुण्य हैं, किन्तु मधुकर मालती का ही सेवन करता है।[१०]

इस प्रकार राधा-कृष्ण का प्रणयोत्कर्ष विद्दी-पदीपन[११] और महाभाव[१२] अथवा अधिरूढ़ महाभाव[१३] की स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

दूतियों के प्रयत्न से मिलनेच्छा कर्त्तव्य के पग नापती हुई 'नोक झोंक'[१४] की वचन-विदग्धता में विकसित होती है। तब राधा और कृष्ण को सखियाँ रूप-सज्जा की शिक्षा देती हैं, जिससे वे मिलन के अवसर पर परस्पर अभूतपूर्व आकर्षण उत्पन्न कर सकें।[१५] राधा का

---

१. वही, दूती, पद ४६
२. वही, दूती पद ४८
३. वही, दूती पद ४८
४. वही, दूती, पद ५०
५. वही दूती पद ५० :—
दिन दिन आगे सखि ऐसनि होए वह
घोषिनि घोर क भुले ॥८॥
६. वही दूती पद संख्या ५२
७. वही, दूती, पद संख्या ५३
८. वही, दूती, पद संख्या ५४-५५
९. वही, दूती, पद संख्या ५६
१०. वही, दूती, पद संख्या ५७
११. उज्ज्वल नील मणि
१२. चैतन्य चरितामृत
१३. विश्वनाथ चक्रवर्ती उज्ज्वल नीलमणि किरण
१४. विद्यापति की पदावली पद संख्या ५८ से ६१
१५. वही, पद संख्या ६२ से ६४ तक

धैर्य भी वे हटा देती है।[1] कृष्ण को अपने गुण दिखा कर रति-परिपाटी का निर्वाह करने की शिक्षा देती है।[2]

इस पूर्वराग-विरह के पश्चात् मिलन होता है। दुःख के बाद सुख प्राप्त होता है।[3] दुःख में शुद्ध होकर स्नेह प्रणय बन जाता है। विद्यापति के अनुसार राधा का प्रेम वह कुन्दन है जो दुःसह आँच में तप कर भास्वर होता गया है।[4] प्रथम मिलने के अनुभवों का अंकन विशदता से किया गया है। राधा कमल-पत्र स्थित जलबिन्दु की भाँति काँप उठती है। अग्नि चाहे जलाती हो पर काम तो उसी से सरता है।[5] विद्यापति की विशेषता यह है कि उन्होंने शालीनता का सदा ध्यान रक्खा है। कृष्ण-समागम के अनुभव सखियों के आग्रह के पश्चात् राधा सहज आदेव के साथ इतना ही बता पाती है कि जब कृष्ण ने हँस कर आलिंगन किया तो उसे ऐसा लगा मानो प्रेम के पौधे पर फूल खिल उठे हैं। परन्तु नीवी बन्धन हटाने के बाद क्या हुआ, इसकी तो उसे सुधि ही नहीं।[6]

प्रथम समागम से उत्पन्न विश्रम्भ राधा में छद्म-मिलन और अभिसार की इच्छा उत्पन्न कर देता है, क्योंकि चोरी से किया हुआ प्रेम लाख गुना अधिक आनन्द देता है।[7] अभिसार मार्ग की बाधाओं और कष्टों की कसौटी पर प्रेम की परीक्षा लेता है, यही कारण है कि विद्यापति ने राधा को अभिसारिका भी बनाया है। इस प्रकार प्रेम-कौतुक का यह वातावरण निरन्तर उल्लास और विकास का अभिवर्द्धन करता है।

इसी क्रम में राधा को कृष्ण के बहु-प्रियत्व का परिचय मिलता है और वह 'मान' कर बैठती है। मान की विविध स्थितियों का चित्रण विद्यापति ने किया है। राधा कृष्ण की रतनारी आँखों और उनके पर-नारी-अंगराग-चर्चित वक्षस्थल को देखकर कुपित होती है।[8] कृष्ण सफाई देते हैं कि यह तो पशुपति-पूजा में जागने आदि के कारण है,[9] पर राधा इस

---

१. वही, पद संख्या ६६

२. वही, पद संख्या ६८ से ७१ तक

३. "दुख सहि सहि सुख पाओल ना"

विο की पदा—मिलन, पद संख्या ७२

४. विद्यापति की पदावली, विरह पद संख्या २१०
तथा मान, पद संख्या १३२ चरण २

५. जइसे डगमग नलिन क नीर, तइस डगमग धनि क सरीर।
भन विद्यापति सुनु कविराज, आगि जारि, पुनि आगि क काज॥१२
वही, मिलन॥ पद संख्या ४७॥

६. हँसि हँसि पहु आलिंगन देल मनमथ अंकुर कुसुमित भेल।
जब निविबन्ध खसाओल कान, तोहर सपथ हम किछु जदि जान॥८॥
वही, सखी सम्भाषण॥ पद संख्या ६५

७. चोरी पिरीति होए लाख गुन रंग॥

८. विद्यापति की पदावली, मान, पद १३३ से १३५

९. वही, पद संख्या १३६

बहानेवाली को समझती है, और तब कृष्ण को स्त्री-रूप धारण कर कौतुक करके उसे मनाना पड़ता है।[1] मान से प्रेम की एकाग्रता, तन्मयता और अनन्यता का बोध होता है। मान हृदय की क्षुद्रता और ईर्ष्या भाव से जन्म पाता है, किन्तु इसकी प्रतीति सहिष्णुता, उदारता और तितिक्षा की अनुभूति जगाती है। भावनाओं का परिष्कार होकर शृङ्गार का उदात्तीकरण होता है, और रति श्रद्धा में पर्यवसित हो जाती है। अपार्थिव, आध्यात्मिक रूप में प्रेम होता है। उधर कृष्ण भी कभी-कभी मान करते हैं। उनका मान राधा के हृदय को आत्मग्लानि की अग्नि से शुद्ध करता है, क्योंकि वह इसके लिए अपने को ही दोषी मानती हुई कहती है—क्या मैं सन्ध्या की एकाकी तारा हूँ या भादों की चौथ का चन्द्रमा हूँ, जो प्रभु कलंकित समझ कर मेरी ओर हँसकर नहीं देखते।[2] एक ही पलंग पर प्रिय हैं, पर मेरे लिए तो दूर देश-सा हो गया है।[3] राधा कृष्ण को समझाती है कि जहाँ प्रेम-रस है, वहाँ कलह भी है। अतः पुनःप्रीति जोड़ ली जाती है। तुमने तो मेरे गुण कुछ न देखे, सौत ले आये। विष-वृक्ष को भी रोप कर काटना नहीं चाहिये।[4] यह विपरीत मान कैसा? मान तो स्त्रियाँ करती हैं, न कि पुरुष। यह सुन कर कृष्ण लजा जाते हैं।[5] इस प्रकार दोनों के ये मान समाप्त होते हैं, और संयोग की सान्द्र, सघन, मांसल सौन्दर्यानुभूति उल्लसित होती है।

मिलन-सुख की चंचल-अस्थिर बेला के वैपरीत्य में विरह की काली त्रियामा अधिक स्पष्टता से उभरी है। कृष्ण का जाना राधा का सर्वस्व लुट जाना है। गोकुल-चकोर का वह चाँद चोरी चला गया है।[6] राधा सोचती है मैं तो दूसरे के धन से धनी थी, उस धन से तो अब कुब्जा रानी बन गई है।[7] यदि मुझे यह ज्ञात होता तो मैं जोगिनी बन कर साथ चली

---

१. वही, मानभंग १६२-१६३
अधिक चोरी परसयं करिअ एहे सिनेह क सोत ॥८॥
वही, अभिसार, पद संख्या ११४

२. की हम साँझ क एक सर तारा भादव चौथिक ससि
इथि दुहु माझ कओन मोर आनन जे पहु हेरसि न हसि ॥२॥
वही, मान, पद संख्या १५८

३. एकहि पलंग पर कान रे।
मोर लेख दूर देस मान रे ॥६॥
वही, मान, पद संख्या १५६

४. वही, मान, पद संख्या १५७

५. भनइ विद्यापति विपरित मान
राधा बचन लजाएल कान ॥
वही, मान, पद संख्या १५६

६. गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा ॥
वही, मान, पद संख्या १६०

७. आनक धन से धनवंति रे कुबजा भेल रानि ॥
वही, विरह, पद संख्या १६०

जाती ।[१] वह 'कुलिस हिया' जिसका पथ जोहते नयन अंधे हो चले,[२] आ जाये तो संदेश देने वाले कौए को कनक-कटोरा भरकर खीर-खांड का भोजन दूं ।[३] इस प्रकार विरह की सभी दशाओं की तीक्ष्ण अनुभूति करती हुई राधा दिन काट रही है । प्रिय बिना यौवन धूल है,[४] यद्यपि इससे भी अधिक तो यह है कि पानी पर तैल बिन्दु की भांति उसके अनुराग ने प्रसार पाया था, किन्तु रेत के जल की भांति उसका सुहाग क्षण भर में सूख गया ।[५] महीना बरस के समान हो रहा है और जीवन की आशा छूट रही है ।[६] ऋतुएँ और महीने इस वेदना को निरन्तर बढ़ाते चले जा रहे हैं ।[७] प्रकृति में विपत्रता के बाद नवलपत्रता आती है, किन्तु विरहिणी के नेत्रों की बरसात आने के बाद जाती नहीं ।[८] अब तो कोयल की कुहक, मधुकर की गुंजर; कुसुमित कानन की सुषमा भी विरह वेदना को तीव्र बनाती हैं, और एतदर्थ वे विकर्षण की वस्तु बन गई हे ।[९] ऐसी विरह-दग्धा कृशगात्री का करुण चित्र विद्यापति ने उतारना चाहा है, पर कवि कहता है कि 'मदन सर धारा' में डूबती हुई राधा को बचाने में वह असमर्थ है ।[१०] विरह-वर्णन में कवि ने अपना हृदय निकाल कर रख दिया है । कवि नायिका को बारम्बार प्रिय-मिलन का आश्वासन देता है । प्रिय-स्मरण करती राधा 'भृंगी गति' को प्राप्त हो जाती है । उसका प्रिय से पूर्ण तादात्म्य हो जाता है । वह स्वयं माधव बन जाती है, और इस प्रकार राधा राधा के लिए ही सब कुछ न्योछावर कर देती है । वह राधा-राधा रटती है, किन्तु सुधि आने पर पुनः कृष्ण के लिए व्याकुल होने लगती है । वह दारुण द्विधा-अग्नि में निरन्तर जलती रहती है ।[११] इस प्रकार विद्यापति की राधा एक साथ ही मांसल नारीत्व की

---

१. वही, विरह, पद संख्या १८६
२. वही, विरह, पद संख्या १६४
३. वही, विरह, पद संख्या १६०
४. सरसिज बिन सर, सर बिनु सरसिज की सरसिज बिनु सूरे ।
जौवन बिनु तन, तन बिनु जौवन, की जौवन पिय दूरे ॥२॥
वही, विरह, पद संख्या १६१
५. तैत बिन्दु जैसे पानि पसारिअ ऐसन मोर अनुराग ।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए तेसन मोर सुहाग ॥४॥
वही, विरह, पद संख्या २०२
६. वही, विरह, पद संख्या २०४
७. वही, विरह, पद सख्या २०८ और २१५
८. विपत अपत तरु पाओल रे पुन नव नव पात
विरहिन नयन विहल विहि रे अविरल बरिसात ।
वही, विरह, पद संख्या २०७
९. वही, विरह, पद संख्या २१३
१०. वही, विरह, पद संख्या २१६
११. अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गन लुबु धाई ॥२॥

प्रतिमा और निश्छल, पावन, साधना-रत उपासिका के रूप में अंकित हुई है।

वियोग की एक दशा प्रोषितपतिकावस्था है। प्रेषितपतिकाओं का कवि ने अपनी सहानुभूति और आश्वासन दिये हैं। प्रिय मिलन की आशा बँधा कर उसे अपना अमंगल करने से रोका है।[1] यह कवि द्वारा एक स्वस्थ परम्परा का श्रीगणेश है।

पदावली में नायिका भेद :

यद्यपि विद्यापति ने पदावली की रचना नायिक भेद के आधार पर नहीं की है, तथापि उसमें नायिकाभेद के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। मुग्धा,[2] कृष्णाभिसारिका,[3] शुक्लाभिसारिका,[4] खंडिता,[5] कलहान्तरिता,[6] विप्रलब्धा,[7] प्रोषितपतिका[8] स्वकीया,[9]

माधव, अयरूब तोहर सिनेह जिबइत गेलि संदेह ॥४॥
भोरहि सहचरि कातर दिढ़ि हेरि छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रट इत आधा आधा बानि ॥६॥
राधा सयं जब पुनतहि माधव माधव सयं जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त विरह क बाधा ॥८॥
दुहु दिस दारू दहन जैसे दगधई आकुल कीट परान।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधा मुखि कवि विद्यापति भान ॥१०॥

वही, विरह, पद संख्या २१७

१. विद्यापति की पदावली में, विरह के पद संख्या १०६-१६१-१६३-१६५-२०३-२०४-२०६-२०७-२०६ आदि के अन्तिम चरण देखिये।

२. वही, प्रेम-प्रसंग, पद संख्या ३६, ३७ आदि
'हेर इत पुनि मोर हरल गिआन'
'की लागि कौतुक देखलौं सखि
निमिष लोचन आध' आदि

३. वही, अभिसार, पद संख्या १०८, १०६, ११० आदि तथा
नव अनुरागिनि राधा। कुछ नहि मानय बाधा॥
मनिमय मजिर पाय। दूरहि तजि चलि जाय॥
जामिनि घनि अँधियार। मनमय हेरि उजियार।

४. वही अभिसार, पद संख्या १२३ आदि

५. वही, मान, पद संख्या १३३ आदि

६. वही, मान, पद संख्या १५३, १५६, तथा :—
क. कि कहब है सखि निज अगयान।
सगरो रैइन गमाओनि मान।
जखन हमर मन परसन भेल
दारुन अरून तखन उगि गेल॥
ख. आज परल मोहि कौन अवराध
किय न हरि हरि लोचन आध।

परकीया,[१] आदि के वर्णन मिल जाते हैं। विद्यापति की राधा स्वकीया है, परकीया नहीं, क्योंकि विप्रलब्धा और कलहान्तरिता दशाएँ स्वकीया नायिका को हो हो सकती हैं।[२]

विद्यापति का नारी-सौन्दर्य चित्रण :

सौन्दर्य का चित्रण विद्यापति ने कामशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र आदि के आधार पर कुछ इस प्रकार से किया है कि उसमें 'नखशिख' वर्णन का रूप प्राप्त होता है। यह कहा जा सकता है कि नखशिख वर्णन की प्रथा विद्यापति के काव्य से ही आरंभ हुई। प्रचलित सभी काव्य-रूढ़ियों या समयो का आत्मसात् करके कवि ने उन्हें मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है। इसकी विवेचना हमारे क्षेत्र से बाहर है, इस पर श्री रामरतन भटनागर ने पर्याप्त विचार किया है।[३]

विद्यापति की राधा का सौन्दर्य वह पारस है जो प्रकृति के रूप में कनक-रमणीयता भर देता है।[४] जायसी ने पद्मावती में भी ऐसा ही पारस रूप देखा है।[५] विद्यापति ने

---

७. पयरहि अयलहुँ तरनि तरंग।
पथुलागत सहस भुजंग॥
निसिथ निसाचर सचर साथ।
मागन कैओ नहिं धयलन्हि हाथ॥
धतकाय अयलहुँ जीव उपेख।
तइयो न भेल मोहि माधव देख॥
तनि नहिं पढलन्हि मदकन रीति।
पिसुन बचन कयलन्हि परतीत॥

८. उठि उठि सुन्दरि जाय छी विदेस।
सपनहु मोर नहिं पाएब उदेस॥
उठइत उठि बैसलि मन मारि।
विरहक मातलि चुप रहे नारि॥

९. डा० रामरतन भटनागर—विद्यापति, पृष्ठ ६६

१. वही, अभिसार, पद ११४, ११८ आदि
'पर-नारी पिरित क ऐसन रीति
चलल निभृत पथ न मानय भीति।'

२. डा० रामरतन भटनागर—विद्यापति, पृष्ठ ६६

३. वही, सौन्दर्यांकन पृष्ठ ६७ से ६०

४. विद्यापति की पदावली, प्रेम प्रसंग, पद संख्या ३५
जहाँ जहाँ पग-जुग धरई। तहिं तहिं सरोरुह झरई।
जहाँ जहाँ झलकत अंग। तहिं तहिं बिजरि तरंग॥
कि हेरल अपरुब गोरी। पइठल हिय मधि मोरी॥
जहाँ जहाँ नयन विकास। तहिं तहिं कमल प्रकास॥
जहाँ लहु हास संचार। तहिं तहिं अमिय विकार॥

प्रचलित उपमानों को कल्पना की तूलिका से ऐसा रंगीन बना दिया है कि उनसे अनुपम चित्र की सृष्टि हो जाती है। चपल भौंह वाली आँखें ऐसी प्रतीत होती हैं मानों चंचल भ्रमर मधु पीकर पंख फैलाये हुए उड़ जाने की मुद्रा में अवस्थित हों।[1] इस प्रकार विद्यापति ने रूढ़ उपमानों के प्रयोग में भी आभिजात्य का परिचय दिया है, क्योंकि उन्हें अतिशयता और ऊहात्मकता में कम-से-कम अंकित किया है, तथा रूप-चित्रण के माध्यम से रूप-शील या रूप की प्रकृति का चित्रण करने का उनका लक्ष्य रहा है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि जैसे आशा-लुब्ध भिखारी कृपण के भी पीछे पड़ता है, उसी प्रकार नेत्र उस कृपण नारी के पीछे लग गये। इसमें 'कृपण' शब्द नारी के शील-सौन्दर्य की व्यंजना करता है।[2] तभी तो श्री दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है, 'भारतवर्ष में उपमा का यश केवल कालिदास को प्राप्त हुआ है। यदि किसी द्वितीय व्यक्ति का नाम लेना हो तो विद्यापति के नाम पर किसी को आपत्ति नहीं होगी। विद्यापति की राधा सौन्दर्य-समूह की चित्रपटी है। उनके विरह के अश्रुओं से सिक्त होकर कवि की कविता, उपमा और सौन्दर्य, सब कुछ नवल मेघ की आभा धारण करता है।[3] श्री शिवप्रसाद सिंह ने विद्यापति के स्वरूप के विषय में कितना ठीक लिखा है, 'वह पार्थिव सौन्दर्य से ऊपर की वस्तु है, विद्यापति इस अपरूप को ही अपना ईश्वर मानते हैं, अपनी सिद्धि मानते हैं। वे इस अपरूप के सामने समर्पण नहीं कर देते, बल्कि इसे जानने की निरन्तर अतृप्त इच्छा से चालित रहते हैं। उनकी सौन्दर्य-कल्पना न तो बिहारी आदि की तरह थकती

जहाँ जहाँ कुटिल कटाख। ततहिं मदनसर लाख॥
हेरइत से धनि थोर। अब तिन-भुवन अगोर॥
पुनु किए दरसन पाव। अब मोहे इत दुख जाव॥
विद्यापति कह जानि। तुअ गुन देहब आनि॥

५. मलिक मुहम्मद जायसी—पदमावत

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीरा॥
—मानसरोवर खण्ड।८।

तथा— बिहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह देखन महँ देखा
होतहि दरस, परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना
—चितौरगढ़ वर्णन खण्ड, दोहा १८ चौपाई ३४

१. सहजहिं आनन सुन्दर रे भौंह सुरेखलि आंखि।
पंकज मधु पिबि मधुकर रे उड़ए पसारलि पांखि॥२॥
—विद्यापति की पदावली, प्रेम प्रसंग, पद संख्या ५

२. तवहिं धाओल दुहु लोचन रे, जतहिं गेलि वर नारि।
आसा लुबुध न तजए रे कृपन का पाछि भिखारी॥४॥
—वही, प्रेम प्रसंग, पद सं० ३३

३. श्री शिवप्रसाद सिंह कृत 'विद्यापति' पृष्ठ १६५ पर उद्धृत 'बंग भाषा और साहित्य' पृष्ठ २२४ का वाक्य।

है, और न तो सूर की तरह समर्पण कर देती है। विद्यापति रूप के सजग द्रष्टा है—विद्यापति रूप के पार्थिव बन्धन में बँधे हुए कवि नहीं है, यदि वे मांसल रूप के बन्धन में बँधे हुए होते तो जन्म भर उसे देखते हुए भी अतृप्ति की बात न करते। वस्तुतः वे इस तमाम खण्डित रूप-तत्वों के बीच प्रवहमान अखण्ड रूप-तत्व के दर्शन की कामना लेकर चले थे।[1] निराला की दृष्टि में तो विद्यापति की सौन्दर्य चेतना चण्डीदास से भी बढ़कर थी। वे लिखते हैं—'विद्यापति सौन्दर्य के सृष्टा भी जबर्दस्त थे, और सौन्दर्य में तन्मय हो जाने की शक्ति भी उनमें अलौकिक थी। कवि की यह बहुत बड़ी शक्ति है कि वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक रख कर उसका विश्लेषण भी करे और अपनी इच्छानुसार उसमें मिलकर एक भी हो जाये। चण्डीदास में केवल तन्मयता की शक्ति ही प्रस्फुटित हो सकी है।[2]

विद्यापति, जयदेव और श्रीमद्भागवत :

विद्यापति ने जयदेव का अनुसरण करते हुए अपनी इस कृष्णकथा में भागवत से अन्तर कर दिया है। शरद के बदले वसन्त ऋतु, पूर्णिमा के बदले वर्षाभिसार,[3] एक रात के स्थान पर दो दिन-रात, कृष्ण का मायापति की अपेक्षा सामान्य मानव-रूप विद्यापति ने ग्रहण किया है। वेणुवादन प्रसंग छोड़ दिया है। जयदेव से विद्यापति का अन्तर इस बात में है कि उन्होंने रीतिशास्त्र को ही कथा का रूप दे दिया है। राधा की वय:सन्धि अंकित की है तथा पूर्वराग और दूती प्रसंग को विस्तार दिया है। पदावली में दूती इतना अधिक स्थान पाती है कि वह रहस्यवादियों के 'गुरू' जैसी प्रतीत होने लगती है।[4]

विद्यापति का सास-ननद चित्रण

विद्यापति के काव्य की नायिका ऐसी कुल-वधू है, जिसे शील और मर्यादा की प्राचीर घेरे हुए है। परिवार, सास और ननद की आँखें उस पर पहरा देती है। ऐसी स्थिति में उसका पति से मिलन भी एकान्त देखकर ही होता है, और पति भी गुप्त रूप से ही उससे मिलता और आलिंगन करता है। कभी-कभी तो पीठ के आलिंगन से ही नायक को सन्तोष करना पड़ता है।[5] विद्यापति ने गार्हस्थिक मर्यादा के भीतर ही नायक-नायिका के सम्भाषण, मिलन आदि

---

१. श्री शिवप्रसाद सिंह—विद्यापति, पृष्ठ सं० १६३
२. पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'प्रबन्ध प्रतिमा' का लेख 'विद्यापति और चण्डीदास' पृष्ठ १५१ प्रथम संस्करण
३. विद्यापति की पदावली—अभिसार, पद संख्या
 ११२, ११३, ११६, १२०, १२१, १२२
४. Dr. Grierson—Journal of Asiatic Society [Bengal 1882] Extra No. 10, Pt. I, page 29
५. सासु सुतल छलि कोर अगोर। तहि छति डीठ पीठ रहु चोर॥
 कत कर आवर कहब बुझाई। धाजुक चातुरि कहल कि जाई॥
 नाहि कर आरति ए अबुझ नाह। अब नहि होयत बचन निरबाह॥
 पीठ आलिंगन कत सुख पाव। पानिक पियास दूध किए जाव॥

कराये है। पुत्र वधू सदा सास के आदेशों का पालन करती है।[१]

ननद भाभी के विषय में अपनी माँ से चुगली करती रहती है, इससे ननद भौजाई में नोक-झोंक भी चलती है। अपने रहस्य को छिपाने के लिए ननद से बातें भी बनानी पड़ती हैं,[२] और सखियों को भी उसे यही शिक्षा होती है कि यदि तुम अपना रहस्य खुलने नहीं देना चाहती तो ननद को खुश रक्खो।[३]

विद्यापति द्वारा नारी-समाज का चित्रण :—

परिवार में नारी की अवस्थिति का अंकन करने के अतिरिक्त विद्यापति ने समाज में नारी के रहन-सहन तथा उसकी सामान्य विचारधारा का भी निरूपण किया है। शिशु-जन्म पर स्त्री-पुरुष सभी खुशियाँ मनाते थे। पैदा होते ही पहले शिशु को मधु चटाया जाता था, फिर उसकी कमर में सूत बांधा जाता था बघनख पहनाया जाता था। बालक के कुछ बढ़ने पर अंगराग, उबटन, काजल, अंजन आदि लगाये जाते थे, पालने के गीत गाये जाते थे। ज्योतिष में नर-नारियों का विश्वास था, अतः जन्म-पत्र भी बनवाये जाते थे।[४]

स्त्रियाँ आभूषणप्रिय होती थीं। सोने-चाँदी के रत्न-जटित गहने पहने जाते थे। किन्तु निर्धन लोग पीतल के गहनों पर सोने का मुलम्मा करवा कर पहनते थे ताकि मर्यादा बनी रहे।[५]

विधवाओं की रक्षा होती थी, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रक्खा जाता था। उनसे छोटे उनकी आज्ञा का पालन करते थे। किन्तु विधवाओं के लिए अनेक निषेध भी थे। पूजा-पाठ में भी वे सधवाओं के साथ नहीं जाती थीं।[६]

स्त्रियों में अनेक अन्धविश्वास प्रचलित थे। इनमें टोने-टोटके, झाड़-फूँक आदि की मान्यता भी प्रधान रूप से थी।[७] भूत-प्रेत के लग जाने में और उनके मंत्रों द्वारा हट सकने में

कत मुख मोरि अधर रस लेल। कत निसबद कए कुच कर देल॥
समुख न जाए सघन निशोसास। किए कारन भेल दसन विकास॥
कोयल सास चलल तब कान। न पूरल आस विद्यापति भान॥
—विद्यापति की पदावली, विदग्ध विलास, पद सं० १६८

१. वही, मान भंग, सं० १६०
२. वही, छलना, पद सं० १३०
३. ननदी सयँ रस-रीति बढ़ाबह गुपुत बेकत नहि होई॥१२॥
—वही, छलना, पद सं० १३०
४. विद्यापति की पदावली, वसन्त, पद सं० १७४
५. पितरक टाँड़ काण दुइ कलौन लहु,
ऊपर चकमक सार। विधवा जन घर राखि॥१२॥
—वही, मान भंग पद सं० १६१
६. जब इह गौरि अराधन जाओब
७. वही, पद, सं० १६१, १६२

नर-नारियो को विश्वास था।[१] कौवे का बोलना प्रिय-आगमन का सूचक माना जाता था।[२] साँझ के तारे और भादो के चौथ के चन्द्रमा को देखना अशुभ समझा जाता था।[3]

सामाजिक कुरीतियों का विरोध :

युवती पुत्री का विवाह बालक से कर देने वाले पिता पर विद्यापति ने बड़ा तीव्र व्यंग किया है जब कन्या के मुख से कहलवाते है कि अपने दूध-पीते जमाता के लिये गाय भिजवा दो। ऐसे अनमेल विवाहो का करुण-प्रसंग विद्यापति के पद से अधिक मार्मिक कदाचित् ही अन्यत्र दिखाई दे।[४] अपने छल प्रपच से युवतियो को कुमार्ग पर ला कर नष्ट कर देने वाली वृद्धा कुटनियो का जैसा विद्रू प चित्र विद्यापति ने अंकित किया है, वैसा कही नही मिलेगा।[५]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सौन्दर्य-उपासक विद्यापति ने जहाँ एक ओर रूप-माधुरी की अभिव्यक्ति की है, वहाँ सामाजिक अत्याचारो के विरुद्ध आवाज भी उठाई है। विद्यापति नारी-हृदय का कोई कोना अप्रकाशित नही छोड़ते।

---

१. वही, पद स० १६२
२. वही पद सं० २२ आदि आदि
३. वही मान, पद सं० १५८
४. वही, बाल विवाह, पद सं० २६३
५. हम धनि कुटनि परिनत नारि।
बेसहु वास न कहों विचारि॥
काहु के पान काहु दिअ सान।
कत न हकारि कएल अपमान॥
वय परमाद धिया मोर मेल।
आहे यौवन कतल चल गेल॥
भागल कपोल अलक भरि साजु।
संकुल लोचने काजर आजु॥
धवला कैस कुसुम करु वास।
अधिक सिंगार अधिक उपहास॥
थोथर थेथा थन दुहु मेल।
गरुअ नितम्ब कहाँ चलि गेल॥
योवन सेस सखाएल अग।
पाछु हेर विललइते अनंग॥
खने खन चोघटे वियट समाज।
खने खने अब हकारलि लाज॥
मनहिं विद्यापति रस नहिं देओ।
हासिनि देइ पति देवसिंह देओ॥
—श्री शिवप्रसाद सिंह कृत 'विद्यापति' पृष्ठ १८५ पर उद्धृत

वीर काल में नारी चित्रण

नरां न ठीणीं नारियां ईखो संगत एह।
सूरां घर सूरी महल, कायर कायर गेह ॥
\+ + +
सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह ॥
—कविराजा सूर्यमल

राजनीतिक परिस्थितियाँ :

राजपूत राजाओं के पारस्परिक वैमनस्य और संघर्षों के कारण आठवीं शताब्दी से ही भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे। महमूद गजनवी (मृत्यु सं० १०८७ वि) द्वारा सोमनाथ मंदिर की लूट होने पर यह स्पष्ट हो गया कि भारत में कोई ऐसी दृढ़ शक्ति नहीं है जो आक्रान्ताओं का प्रतिरोध कर सके। पहले पंजाब सिंध और फिर सन् ११९२ में दिल्ली पर भी मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। थोड़े ही समय में सिंध, पंजाब, काशी, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, मालवा, मगध, बिहार, बंगाल आदि सभी को मुसलमानों ने हस्तगत कर लिया, और तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दि में दक्षिण भारत भी भारतीयों के हाथ से निकल गया। इस पराजय के कारण थे पारस्परिक संघर्ष, ईर्ष्या-द्वेष, संगठन का अभाव, थोथी प्रतिष्ठा, झूठी अहिंसा और विभेदकारी जाति-व्यवस्था। राजपूतों के पतन का सर्व-प्रमुख कारण उनका आपस में लड़कर निर्बल होते चले जाना था। अपने राज्यों की सीमा बढ़ाने तथा अपनी-श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए तो वे लड़ते ही थे, विवाहों के लिए भी झगड़ने लगे। विवाह, जो सहयोग ऐक्य और संगठन का साधन बनना चाहिये था, इन दिनों विघटन का प्रबल हेतु बन गया। नारी युद्धों का कारण और साध्य बना दी गयी। उधर विदेशी आक्रमणों और बर्बर अत्याचारों के कारण नारी को रक्षणीया बना कर घर में बन्द रखने की प्रवृत्ति बढ़ती चली गयी। वह नारी जो बाहर की पराजय के पश्चात् संगठनकारिणी होकर युद्ध की संचालिका बनी थी, अब कर्तव्य-हीन सी होने लगी। फिर भी तत्कालीन नारी ने पुरुषों को शूर-वीरता की प्रेरणा दी है, और विदेशियों के सामने आत्म-सर्मपण करने की अपेक्षा जौहर की ज्वालाओं का अभिनन्दन किया है। यह उसके महान बलिदान और उच्च आदर्श का प्रतीक है।

सामाजिक स्थिति :

वैदिक युग से चले आते सामाजिक विधान एक परिपुष्ट रीति के रूप में राजपूत काल में अवस्थित थे। समाज की चिन्तन धारा में निवृत्ति भावना की प्रधानता थी वर्ण-जाति की संकीर्णताएँ बढ़ रही थीं। अतः स्वाभाविक रूप से नारी उपेक्षणीया होती चली गयी। उप-रिलिखित कारणों से उसकी स्थिति रक्षणीया भी हुई। माता, पत्नी, पुत्री-तीनों ही रूपों में नारी पुरुष की संरक्षा की आस्पद मानी जाने लगी। इस प्रकार नारी की अपनी स्वतंत्रता छिन गयी, वह शौर्य तथा शक्ति की प्रतीक नहीं रह गयी। ऐसी दशा में नर और नारी के

बीच केवल शृङ्गार संबंध ही यह पनप सकता था। नारी की कोमलता, सरलता और सुन्दरता उसे 'शक्ति' का प्रतीक नहीं रख सके, वरन् ये गुण उसके लिए निगड बन गये, और इन्होंने उसे अनुरंजन का साधन मात्र बना दिया। यह एक विडम्बना ही है कि प्रायः समस्त वीर काव्य में कहीं भी नारी शक्ति, दुर्गा, चण्डिका, कालिका के रूप में चित्रित नहीं हुई है, वह केवल रमणीया कामिनी ही है, यद्यपि यह भी सही है कि एतत्कालीन नारी ने पुरुष को शौर्य में दीक्षित किया था और अपनी इन घोर परिसीमाओं में भी वीरत्व का परिचय दिया था। यह भी खेद का ही विषय है कि राज्याश्रित कवियों ने शृंगार का प्रदिरता से जोहर का प्रकाश प्रायः नहीं देखा। राजकवियों ने केवल स्थूल शृंगार को अपना लक्ष्य बना लिया। जातीय चेतना में नारी के सक्रिय सहयोग की ओर से उन्होंने आँखें मूँद ली। नारी की वास्तविक स्थिति केवल तत्कालीन लोक-गीतों में अंकित हुई है, जिनमें उसका विकसोर्जस्वित रूप सामने आया है। साधारण जनता की ये भावराशियाँ अपभ्रंश में उद्वेलित हुई थीं। साधारण नारी वस्तुतः पुरुष के संघर्षमय जीवन की अनुपूरक थी, उसके जीवन का स्पन्दन, उद्गार और प्रेरणा थी। हेमचन्द्र द्वारा संकलित अपभ्रंश काव्य इसका प्रत्यक्ष साक्षी है। ऐसे समय में नारी की स्थिति और मनोदशा क्या थी, यह हमारी निम्नांकित पंक्तियों का विवेच्य है।

पुत्री पर माता पिता का प्रेम

वीर गाथा काल में माता पिता अपनी पुत्री के प्रति पूर्ण स्नेह की भावना रखते थे, उसका यथोचित लालन-पालन करते थे और युवा होने पर उसके विवाह के लिये यत्नरत करते थे। पितृगृह में कन्या को अधिक से अधिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त थी। उन्हें कलाओं में प्रवीण बनाया जाता था, शिक्षा और स्वास्थ्य का प्रबंध किया जाता था। बालिकाएँ अपनी सखियों के साथ क्रीडा-विनोद का आनन्द लेती रहती थी। बड़े घरों में उनके लिये सखी-परिचारिकाएँ नियुक्त थी।[1] माता-पिता यह भी प्रयत्न करते थे कि उन्हें उपयुक्त और मन-पसन्द वर मिलें। एतदर्थ स्वयंवर की प्रथा उस समय में बहुधः प्रचलित थी।

पितृ-गृह की प्रतिष्ठा पर पुत्री का सदा ध्यान :

यही कारण था कि पुत्रियाँ भी माता-पिता को बहुत चाहती थी। रानी रासधरी जी आदि के काव्यों में हम देखते हैं कि नारियां अपने पति के सामने अपने पिता के कुल, रीति-नीति, देश आदि की प्रतिष्ठा सदा ऊँची बनाये रखने के लिए तत्पर रहती थीं, और पितृगृह की अपेक्षा पति-गृह की निम्नता सिद्ध करने का भी प्रयत्न करती थी। चाहे जैसे पति की प्रतिष्ठा में ही उनका सर्वस्व निहित रहता हो, पर पति और पिता की तुलना में पिता को ही वे अधिक प्रतिष्ठापन्न प्रदर्शित करती थी।

नरपति नाल्ह कृत

'बीसलदेव रासो' (सं० १२१२) में भी पति-पत्नी में इसी प्रकार की नोक-झोक चलती है। साभर नरेश को अपने यहाँ निकलने वाले साभर नमक का बड़ा गर्व है। इसकी

---

१. देखिये—पद्मावती समय—भूमिका

विकत्थना वह अपनी पत्नी राजमती से करता है। वह कहती है, 'गर्व क्यों करते हो, तुम्हारे यहाँ केवल नमक निकलता है। उड़ीसा के राजा के यहाँ तो हीरे निकलते हैं।'[१] इसी प्रकार वह अपने पिता को भी अधिक महत्वशाली बताती है।

स्वयंवरण में स्वेच्छा का अंश :

यद्यपि स्वयंवरण शब्द से कन्या की स्वतन्त्र इच्छा का आभास मिलता है, तथापि तत्कालीन स्वयंवर-प्रथा में कन्या की अपनी इच्छा का न्यूनतम स्थान था। कन्या का विवाह यद्यपि स्वयंवर द्वारा ही अपेक्षणीय था, और कन्या द्वारा स्वयं चुनने पर ही होता था, तथापि स्वयंवर में निमन्त्रण देना कन्या के अभिभावकों पर ही निर्भर था, उसमें कन्या की सम्मति नहीं ली जाती थी। इस प्रकार कन्या को उन्हीं व्यक्तियों में से किसी एक को चुनना पड़ता था, जिसे उसके पिता ने पसन्द किया हो। संयोगिता यद्यपि पृथ्वीराज पर आसक्त थी, पर उसके पिता को पृथ्वीराज पसन्द नहीं था इसीलिए उसे निमन्त्रण नहीं भेजा गया। जो भी हो, स्वयंवर के माध्यम से शूर-वीर, साहसी और तेजस्वी वर की प्राप्ति में सहायता अवश्य मिलती थी। जब कोई क्षत्रिय अपनी वीरता का प्रदर्शन कर दिखाता, तभी उसे वर रूप में चुना जाता था।

स्वयं प्रथा और कन्या-हरण :

इस प्रकार ये स्वयंवर कन्याओं की आकांक्षाओं को एक ओर रख माता-पिता की इच्छा को ही प्रधानता देते थे। जब कन्याएँ यह देखती थीं कि उस राजा को तो स्वयंवर का आमन्त्रण ही नहीं भेजा गया है जो शौर्य की खानि, रूप की राशि तथा सर्वगुण-सम्पन्न होने के कारण उसके हृदय का सम्राट् बनने योग्य था, तो वह शुक आदि विशेष दूतों द्वारा राजा के पास अपने हरण के लिए सन्देश भेज देती थीं। परिणामस्वरूप स्वयंवर-काल के मध्य ही कन्याओं का हरण प्रायः कर लिया जाता था। संयोगिता के विषय में भी ऐसा ही हुआ था।

विवाह प्रथा :

कन्या के विवाह का भार तथा उसके उपयुक्त वर की खोज का उत्तरदायित्व माता-पिता पर ही था। माता-पिता प्रायः अपने कुल पुरोहितों को यह भार सौंप दिया करते थे,

---

१. गरबकरि ऊभो छइ सांभर्यो राव।
मो सरीखा नहि ऊर भुवाल ॥
म्हाँ घरि साँभर उग्गहइ ।
चहुँदिसि थाण जेसलमेर ॥
'गरबि न बोलो हो सांभरया राव।
तो सरीखा घणा और भुवाल ॥
एक उड़ीसा को धणी ।
वचन हमारइ तु मानि जु मानि ॥
ज्यूँ थारइ सांभर उग्गहइ ।
राजा तणि घरि उगहइ हीरा खान।'

जो कन्या के लिए कुलीन एवं शील-सम्पन्न वर को ढूँढता और निश्चित करता था। 'पृथ्वीराज रासो'[1] में पद्मावती के योग्य वर की खोज के लिए उसके पिता ने अपने कुल पुरोहित द्वारा वर को निश्चित कर देने पर वाग्दान होता था। उसके पश्चात् विवाह वैदिक-पौराणिक पद्धति पर हुआ करते थे। जो विवाह कन्या के पिता को हराने के बाद बलात् किये जाते थे, उनमें भी विवाह का संस्कार प्रचलित प्रथानुसार ही होता था।[2]

वीर पत्नी का स्वरूप :

एतत्कालीन भारतीय शौर्य पुरुष और नारी दोनों के संस्फूर्त उत्साहों से प्राणवान् हुआ है। पुरुषों को प्राणों की आहुति देने की प्रेरणा प्रदान करने वाली, वस्तुतः, नारी-शक्ति ही है। बाल्यकाल से ही नारी शौर्य के गीत गाती रही है, और भावी पति के भी विषय में उसकी यह कल्पना रहती रही कि पति ऐसा मिले जो दुर्दम गजों को भी सहज ही वश में कर सकता हो।[3] ऐसी शौर्य की साकार प्रतिमाएँ पति के रण-कौशल पर क्यों न गर्व से फूल उठेंगी, क्यों न उनमें से प्रत्येक यह कहेगी—"शत्रु-सेना को खदेड़ते हुए मेरे पति की तलवार चन्द्रवत् चमक रही है।"[4] और उसकी यह प्रेरणा क्या मौखिक ही रही ? नहीं, वह तो स्वयं रण-क्षेत्र की भीमा कराला काली बनने को उतावली रही है। यम धारिणी के केश खींचने का उत्साह उसमें व्याप्त है।[5] ऐसी वीर रमणी कभी यह विश्वास नहीं कर सकती है कि उसका पति भी निर्बलता दिखा सकता है वह तो यही सोचती है कि यदि शत्रु-सेना हारती है, तो उसके पति की वीरता के कारण, और यदि अपनी सेना हारती है, तो उसके पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात् ही हारी हो।+[5] इस प्रकार वीर गाथा काल की नारी युद्ध में पति की सक्रिय सहयोगिनी बनती थी।

---

१. पद्मावती समय—छंद सं० २५ से ३२

२. द्रष्टव्य—आल्ह खण्ड वर्णित अनेक विवाह-वर्णन

३. बार्यहि जम्महि वि गोरि दिज्जस कन्तु।
गय मत्तहं चत्तङ्कुसहं अभि डइ हसन्तु॥

—हेमचन्द्र द्वारा संकलित

४. भागउ दोक्खि निअय बलु पसरि उउ परस्सु।
उम्मिलइ ससिरेह जिव, करि करवाल पियस्सु॥

—वही

५. पइ मइ बेहि विरण गयहि, को जयसिरि तक्केइ।
केसहि लेविणु जम घरिणि भण सुह को तक्केइ॥

—वही

+५. जेइ भग्ग पार कड्डा तो सखहि मज्जु पियेण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो ते मारिअ जेण॥

—वही

वीर पत्नी अपने पतिदेव से यही अनुनय करती है कि हे नाथ मुझे ऐसा देश मत दिखाना जहाँ कायरता के कारण सिर बिकते हों।'[1]

पति के युद्ध में चले जाने पर पत्नी सोचती है कि आज मेरा शृङ्गार करना व्यर्थ है। यदि पतिदेव वीरगति को प्राप्त हुए तो मैं सती हो जाऊँगी, और यदि वे बिना विजयी हुए घर लौटे तो मैं चूड़ियों को भी तोड़-फोड़ दूँगी। ऐसा शृङ्गार मुझे नहीं चाहिए जो पराजय का सूचक हो, मेरा जन्म एक वीर राजपूत कुल में हुआ है।[2]

नारी द्वारा युद्धगामी वीर पति का सम्मान :

डिंगल काव्य में पत्नी द्वारा वीर पति के आदर भाव तथा सत्कार की पूर्ण झलक दिखायी देती है, जब पत्नी अपने पति के युद्ध में चले जाने के पश्चात् उसके पराक्रम तथा शौर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा अपनी सखी से करती है,[3] अथवा अन्यान्य प्रकार से अपने हर्ष की

---

१. कायर री धण यूँ कहै, जानै कंत छिपाय।
सीस बिकै छिण देसड़े, साईं सो न दिखाय॥
—कविराजा सूर्यमल

२. मायण आज न मांड पग, काल सुणी जै जंग।
धारा लागी जै धणी, तो दीजे धण रंग॥
ऊभी गोख अबेलियो, पेला रो दल सेर।
पड़ियो धव सुणियो नहीं, लीधो धण नालेर॥
बिण मरिया बिण जीतियाँ, जो घन आवे धाम।
पग पग चूड़ो पाछटूँ तो रावत री जाम॥
श्री मोतीलाल मेनारिया कृत
—'डिंगल में वीर रस,' भूमिका पृ० २७ पर उद्धृत

३. सखा अमीणी साहिबो, बाँकम सूँ भारियोह।
रण विकसै रितुराज में, ज्यूँ तरवर हरियोह॥
सखी अमीणो साहिबो, निरभै कालो नाग।
सिर राखै मिय सांभ्रम, रीझै सिंधू राग।
सखी अमीणो साहिबो, सूर वीर समरत्थ।
जुध में वामण डंड जिम, इसी बार हत्थ॥
सखी अमीणा कंथ री, पूरी एक प्रतीत।
कै जासी सूर भ्रंमडे कै आसी रण जीत॥
—बाँकीदास

तथा—
सखी नयी धण जीवतां, अरियाँ पायौ चैन।
बलता लीधो गोद में तौ भी मूँछ मुड़े न॥
—कविराजा सूर्यमल

व्यंजना करती है।[१] शत्रु-विजय पर नारी प्राणनाथ के लिए आरती सजाती है।[२] पाणिग्रहण के पति के कर पल्लवों को तलवार पकड़ने के कारण कठोर हुआ देखकर हर्ष गद्गद् होना नारी की वीर भावना का सूचक है।[३] वीर पत्नी उन सब साधनों तथा शस्त्र निर्माताओं का भी अभिनन्दन करती हैं, जो युद्ध में उसके पति के सहायक बने हैं।[४] विजेता पति के तो घोड़े पर भी वह बलिहार जाती है।[५]

---

१. पग पाछा छाती धड़क, कालौ पीलौ दीह।
नेण मिचै साम्हौ सुणै, कवण हकाते सीह॥
गीध कलेजो चील्ह उर कका अंत बिताय।
तो भी सो धक कंत री, मूछां मूंह मिलाय॥
हेली की अचरज कहूँ कंत परा बलिहार।
घर में देखूं दोय कर, रण में होय हजार॥
हूँ हेली अचरज कहूँ घर में बाघ समाय।
हा को सुणतां हलसे, मरणो कोच न भाय॥
रंड हुआ जीवै जिके, सदा न हेरे साथ।
सीहा रे गल साकलै, नै भड़ घाले हाथ॥
घरि पिया सूतो घणी, करलै चकवी काय।
देखीजै मुख दीहरे, मुख दो जाम सिवाय॥
काम कलाली छल कियो, सेज गुमावण राग।
फूल दुबारे छाकियो चीते चोगुण जंग॥
काय उजालो कंकणी, जे मद पीवण जेज।
कंत समप्पै हेकलो कटका टाणि कलेज॥

—कविराज सूर्यमल

२. जे खल भग्गा तो सखी, मोता हूल सज थाल।
निज भग्गा तो नाहरो, साथ न सूनो टाल॥

—कविराज सूर्यमल

३. हथलेवे ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माथ।
लाखां बाता हेकलो, चूड़ो मो च लजाय॥

—कविराज सूर्यमल

४. असि घावण तो पीव पर वारी कार अनेक।
रण भाटकता कंत रे, लगे न भाटक एक॥

—कविराज सूर्यमल

५. कर पुचकारे धण कहै, जाण धणी री जैत।
नारी जण बाधावियो, हूँ बलिहार कुमैत॥

—कविराज सूर्यमल

कायर पुरुष की भर्त्सना :

डिंगल काव्य में वीर पत्नी नहीं चाहती कि उसका पति युद्ध से भाग कर घर आ जाय, और उसे संसार के सामने लज्जित होना पड़े। यदि कोई वीर पत्नी अपने पति को युद्ध से भाग कर घर लौटा हुआ देखती है तो उसकी आँखें क्रोध से लाल हो जाती हैं वह अपने पति को धिक्कारती हुई कहती है कि स्वामी आप मेरे वस्त्राभूषण धारण कीजिये, मैं तो अपने पितृगृह चली आपने मुझे भी जगती में मुँह दिखाने योग्य नहीं छोड़ा। इस प्रकार की धिक्कार उक्तियों में हमें तत्कालीन नारी के वीरत्व के दर्शन होते हैं।[१]

कायर पति पाकर अपने को भी अपमानित समझना :

मृत्यु-भय से रणक्षेत्र से पीठ दिखाकर घर भाग आने वाले पति को देखकर पत्नी की आंखें नीची हो जाती हैं, इस पर वह उसे भी धिक्कारती है।[२] यह वीर नारी कभी नहीं चाहती कि पति उसकी चूड़ियों और पुत्र उसके दूध को जला दें।[३] कायर पति के पास तो वह रहना भी नहीं चाहती इससे तो पीहर में उम्र काट देना ही श्रेयस्कर समझती है।[४]

---

१. की घर आवे यें कियो, हृगियां बलती हाय।
धण थारे धण नेहड़े, लीधो वेग बुलाय॥
दूतां रे वेढा घिया, घर में कधियो जाल।
अब तो छोड़ो आगणों, कंत लुभावो काल॥
अब जीवे भव खोवियो, मो यन मरियो आज।
मोनूँ ओढे कंचुवै, हाथ दिखाता लाज॥
यो गहणों गो वेस अब की जे धारण कंत।
हूँ जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत॥
कंत सुपैती देखतां, अब की जीवण आस।
मो थण रहणै हाय हूँ, घाते मुँहड़े घास॥

—कविराज सूर्यमल

२. क. भोला की डर भागियो, अंत न पहुंचे ऐण।
बीजी दीठां कुल बहू, नीचा करसी नैण॥

—वही

ख. ढोल वरज सब मैज घर, थर नालेर सुधाम।
पावां कंत पधारिया, पांवां हूँत प्रणाम॥

—वही

३. सहणी सबरी हूँ सखी, दो उर ऊलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह॥

—वही

४. वलण अकेली किम बणे, जोवै संसय बीज।
ने दिन जो कायर वणौ, पीहर मेजो पीव॥

—वही

पत्नी की ही नहीं, रंगरेजिन, गंधिन तथा सुनारिन की आशायें भी मिट्टी में मिल जाती हैं, जब वे किसी क्षत्राणी के कायर पति को युद्ध से भाग कर घर आया हुआ पाती हैं।[1] ऐसे पति को क्षत्राणी के हाथ का तकिया अब नहीं प्राप्त हो सकेगा।[2] अधिक क्या वह क्षत्राणी तो ऐसे पति से मिलने के पूर्व ही परलोक सिधार जाना पसन्द करती है,[3] और यदि उसे जीवित रहना ही पड़ा तो वह पति के जीवित रहते हुए भी विधवा के रूप में ही जीवन बितायेगी, क्योंकि कायर तो मृत ही है।[4] जो क्षत्राणियां अपने पतियों से पहले ही स्वर्ग पहुंचकर अपने वीरगति प्राप्त भर्त्ताओं का वहां स्वागत करने को लालायित रहती हों, उनकी ये धिक्कार-उक्तियां उनके हृदय के कोलाहल के कुछ अस्फुट उद्गार मात्र हैं।

माता द्वारा पुत्र को युद्ध की प्रेरणा :

अमर गति को प्राप्त अपने पराक्रमी वीर पति का, अपने पुत्र को स्मरण कराती हुई माता उसे युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती है तथा सिंह आदि संबोधनों द्वारा पुत्र को कर्त्तव्य पालन के लिए सचेत करती है।[5] ऐसी माताओं द्वारा लोरियाँ भी इसी प्रकार की गायी

---

१. झूरे इम रंगरेजणी, कूबा ठाकुर काय।
बसन सती धण रगता, दीवो आस छुड़ाय।।
गंधण कूकी रे गउब, मूँडा आगन भोण।
बलण कढ़ायो अतर घण, मुहंगो लेसी कोण।।
सोनारी झूरे कहे, रे ठाकुर कुल खोय।
मुज घडाइ खोवणा, तुझ गडाई होय।।
—वही

२. कत लखीजै दोहि कुल, नथी फिरंती छांह।
मुड़ियाँ मिलसी गीदवो, बले न धण री बाह।।
—वही

३. कंत भला घर आविया, पहरीजै मो बेस।
अब वण लाजो चूड़ियाँ, मत दूजै मैटेस।।
—वही

४. दर जण लवी अणियाँ, आणी जे अब मूझ।
तब टोटे मौनूँ दया, दूण सिवाई तुझ।।
मणिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवां किसा बणाव।।
—वही

५. हूं बलिहारी राणियाँ भ्रूण सिखावण भाव।
नालो बाढण री छुरी, भरटे जाणियो साव।।
रण खेती रजपूत री, वीर न भूले बाल।
बारह बरसां बापरो, लहै बैर लंकाल।।

जाती है। पुत्र को पालना झुलाते हुए भी माता यही गीत सुनाती है कि हे पुत्र, अपनी भूमि किसी को मत देना। प्राणों की बलि देना ही क्षत्रियों का धर्म है।[१] रणवीर पुत्र से ही माता को निर्भयता प्राप्त होती है।[२]

इसी प्रकार पुत्री से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अवसर पर जौहर करने या सती हो जाने के लिए प्रस्तुत रहे। कवियों[३] के अतिरिक्त लोक गीतों में भी इसी भावना के दर्शन होते हैं।[४] जिस प्रकार वीर माता-पिता नवजात पुत्र में वीरता के लक्षण[५] देखकर प्रसन्न होते

मन सोचै आणै मसी मो मै बालकमाय।
वैर पराया बाहुड़ै, जठै न धर रा जाय॥
—वही

१. इला न देणी आपरी, हालरियाँ हुलराय।
पूत सिखावै पालणो, मरण वड़ाई मांय॥
—कविराजा सूर्यमल

२. कैल रहै नित काँपती, कायर जणे कपूर।
सीहिण रण सांकै नहीं, सीहं जणे रण सूर॥
—बाँकीदास

३. क. सूरातन सूराँ चढ़ै, सत सतियाँ सम दोय।
आड़ी धाराँ उतरै, गणै अनल नूं तोय॥
—वही

ख. ऊभी गोरख अवेखियो पेलाँ रो दल सेर।
पड़ियो धव सुणियो नहीं, लीधो वण नालेर॥
हूँ पाछे आगे हुवे, आणो नाह घरेह।
जे बाल्ही धण जीव हूँ, आगे मुझ करेह॥
—कविराजा सूर्यमल

४. क. पुत्रोपदेश के लोक गीत
रेशम री तो डोर हिंडोले,
हालरियो हुलरावे ओ,
मरवा रा मीठा गीतड़ला,
यूँ मायड़ गावै ओ,
थने पवड़ायो॥
हाँ रे थने घवड़ायो,
डूंगड़ ला री थान राखे ओ,
थने घवड़ायो॥
हाँ रे थने घवड़ायो,
आजमा थारी आन राखी ओ
थने घवड़ायो॥

ख. पुत्री को उपदेश के लोकगीत :—
नानी थन हलराऊँ सुणजे
मायड़रा वैण सराई जे यू॥
तू उण जायण री जायोड़ी,
जिणरो दूध उजायो यूँ।
मार्या दुशमण रण छोड़ने,
थारे बीरे संख बजायो यूँ॥
दीवो कर जगदंब रे आई,
जोत जलावत बोली यूँ।
पिव रे संग मैं बलने बेटी
सतिया नाम धराई जे यूँ
थन भीलाडूँ गंगाजल में

है।[1] उसी प्रकार वीर-पुत्री भी उन्हें सुख देती है।[2] पुत्रों में भी वे आरंभ से ही वीरता के लक्षण देखना चाहते है,[3] और उन्हें भी वीरता की ही शिक्षा देते हैं।[4]

दूधड़ला री धारा पड़ता,
भाटा पड़ा फाटै ओ,
टाबरिया री वेगां आगे
बैरी नाठे ओ
दूध पूजायो।
भोली रण में शीश भूल्यो
सीसो घरे ल्यायो ओ,
तीनां लोकां लोथी रो
रातंबर छायो ओ,
दूध पूजायो॥

लाड लडावत बोली यूँ।
देवलिये कूकू रा पगला,
बेटी बल पुजवाई जे थूँ॥
माथो गूँथ्यो फूकी रे,
चोटी गूँथत बोली यूँ।
पिव रे हेत में सुण जे बेटी,
चोटी ज्यूँ गुथ जाइजे थूँ॥
थनै चूरमो जीमा हूँ
गास्या देवत बोली यूँ।
घरे पामणा आवे जद
आंख्यां री पलक बिछाई जे थूँ॥

—श्री हनुवंत सिंह देवड़ा : डिंगल साहित्य मे नारी : पृ० २८-२६ पर उद्धृत
—डिंगल साहित्य मे नारी पृ० ७८-८० पर संकलित

५. हूँ बलिहारी राणियाँ भ्रूण सिखावण भाव।
नाली बाढ़ण री छुरी, झपटै जणियो साव॥
—कविराजा सूर्यमल

१. क. आज पतासा वंटीजे कुंवरो रे कीको आयो ओ।
ढालोड़े ढोलां रे ढमके, गीत मरण रो गायो ओ॥
बोल्यो बाबा जी री बगतर मने पेरणीयो आयो ओ।
तरवार तोलणो पेल्यां ही माथा बाढ़णियो जन्म्यो ओ॥ —लोकगीत

ख. बाप कट्यो मायड़ बली घर सूनो जाणीह।
पूत अगूड़ो चूंखनै राजे निगराणीह॥
—डिंगल साहित्य में नारी, पृ० ३३ पर उद्धृत

२. धी हँसती जद होवती आंख्या आगल आग।
बेटी ने आभो बलण सुत नै वाली खाग॥
—डिंगल साहित्य में नारी, पृ० ८० पर उद्धृत

३. हूँ बलिहारी राणियाँ, सांचो मरम सिखाये।
जांवा हृदे लापणे, हरखे धी हुण लाय॥
—कविराजा सूर्यमल

४. क. सो गुण वारूं देखजे बेटी रा गुण होय।
परणतो पीछे रही बलवा आगे होय॥
ख. सुत मरियो बखतर पहर ब्याहण दूध सवाय।
ढोणी मल मल धोड़िया बहू बलवा को जाय॥

स्पष्ट है कि इस युग के कवियों ने नारी को मानव-कर्त्तव्य की प्रेरणा-भूमि के रूप में चित्रित किया है। वह वीरों के उत्साह का सूत्र है। युद्ध-व्यवसायी यौवनोद्धत योद्धा को वह कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ करने वाली एक मधुर वाणी है। पुरुष को वासना-रूप दुर्बलता के आश्रय को उदास बना कर उसने शौर्य-प्रदर्शनेच्छा में परिवर्तित कर दिया है, और इस प्रकार एतत्कालीन नारी पुरुष को विमूढ़ नहीं करती, पथभ्रष्ट नहीं करती, वरन् युगाई धर्म-पालन में प्रवृत्त करती है।

सतीप्रथा तथा जौहर-प्रथा :

पति की मृत्यु पर नारियाँ इसलिए सती हो जाती थीं, क्योंकि एक सर्वमान्य विश्वास था कि स्वर्ग में पति अपनी पत्नी की प्रतीक्षा करता है। अतः पति के पास शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना नारी अपना धर्म समझने लगी थी। युद्ध में मृत्यु होने पर स्वर्ग मिलता है—ऐसी मान्यता सर्वत्र बद्धमूल थी, और ऐसे पति से स्वर्ग में मिलना नारी अपना कर्त्तव्य समझती थी।[1] समाज में भी सती होने वाली नारी को श्रद्धा का पात्र समझा जाता था।[2] यह प्रथा चाहे कितनी भयावह रही हो, इससे दो लाभ प्रत्यक्ष थे—एक तो पुरुषों को असीम स्फूर्ति प्राप्त होती थी, जिस प्रेरणा के बल पर वे विस्मयकारी रण-कौशल प्रदर्शित करने में समर्थ होते थे। दूसरे, पराजित होने की दशा में जाति को शत्रु-पक्ष से अपमानित नहीं होना पड़ता था। आरियों के लुटेरे जब नगर के नगर को जौहर-ज्वाल से भस्मीभूत देखते थे तो दाँतों तले उँगली तो दबाते ही थे, साथ ही उनको यह अवसर ही नहीं मिलता था कि भारतीय नारियों को अपमानित कर सकने का तनिक भी दम्भ भर सकें।[3]

ग. सुत रो खग अलगी पड़ी धड़ पड़ियो जिण वेल।
बहुरे हथ कलतां थकी नह पड़ियो नारेल॥
—डिंगल साहित्य में नारी, पृ० ७७,७८, पर उद्धृत

१. सुर पुर तक निभ वावसी या जोड़ी या प्रीत।
सखी पीव रै देसड़े बलवा री रीत॥
—डिंगल साहित्य में नारी, पृ० ५७

२. क. चन्द उजाले एक पख बीजे पख अँधियार।
बल दोय पख उजालिया चन्द्रमुखी बलिहार॥ पृ० ५४

ख. टोप पहर सुत्त कहियो बहु सूरमी सिवाय।
इण गूँथ्यों सिर खोलियो संग बलेवा जाय॥ पृ० ७०

ग. सुत रो सिर सिव गल लियो कटियो रणरै दोह।
बहू बली अंध की रही भसमी सीस चढ़ोह॥ पृ० ७१

घ. सुत पड़ियो रण घर बिचा बहू अन बरै बीच।
गहँडो वाला हथ जलै खग वाला हथ बीच॥ —वही पृ० ७३

३. पदमिन तेरे रूप को रह्यो अनूपम हाल।
मैं निरख्यो रावल रतन के जौहर की ज्वाला॥
—कविवर केसरी सिंह सोन्याणा।

तत्कालीन नारियाँ सती होने से पूर्व हाथ मे नारियल लेती थी और अपने पति की अरथी के आगे आगे सती होने के लिए श्मशान पर जाती थी ।[१]

पति के वीरगति प्राप्त कर लेने पर पत्नी चिता सजाती है । इससे पहले वह रणक्षेत्र में मँडराती हुई चील से प्रार्थना करती है कि मेरे पति की आँख मत निकालना, वे चाहतो हैं कि वे अपनी पत्नी की जीवित दाह-क्रिया साक्षात् देख सकें ।[२] जीते जी स्वेच्छया जल मरने की यह वीरता तलवार से लड़ने वाली वीरता को अपेक्षा कहीं अधिक साहसपूर्ण थी ।[३]

इससे स्पष्ट है कि पति की मृत्यु पर सती हो जाने मे ही तत्कालीन नारी का परम गौरव माना गया था ।

इस युद्ध काल मे भारतीय नारी ने असीम शौर्य का प्रदर्शन किया था । उसके शौर्य में अभय, त्याग और सर्वस्व बलिदान की लहर आ गयी थी । यदि वह उस समय माया-मोह के चक्कर में ही पड़ी रहती तो देश का पतन अतिशीघ्र हो जाता, और बाद मे भी हिन्दू-जाति में जीवन का स्पन्दन न हो सकता । यह भारतीय नारी की संचारित की हुई प्रेरणा ही थी, जिसने हिन्दू-जाति को सदा ही स्वतंत्रता-प्रेमी बनाये रखा है । उस समय की वीर नारी अपने पति को स्वयं रणोद्यत करती थी, उसका समरवेश स्वयं सजाती थी, और उसको आन-बान पर मर मिटने की प्रेरणा देती थी ।[४]

इतना ही नहीं, वे स्वयं भी स्वतंत्रता के हेतु बलिदान हो जाती थी । यदि वे अपने पति को रणाग्नि में झोक देती थी, तो स्वयं भी उनसे भी पहले जौहर की ज्वाला में चलने के लिए सहर्ष प्रस्तुत रहती थी । वे अपने पति का युद्ध मे काम आना पसन्द करती थी, पीठ दिखाना नहीं—

---

१. देखिये—उद्धरण, ३ ख, पृ० २१६

२. समली और सिसक भख, जंबुक राह म जाह ।
पण घण रो किम पेख ही, नयण बिणट्ठा नाह ॥
—कविराजा सूर्यमल

३. क. पार्गां वाला सूरमा लागाँ कटे जरूर ।
बैठ अगन बीच बोलणा साड़ी वाला सूर ॥
—श्री नाथूदान

ख. सुत मरीयो बखतर पहर व्याहण दूध सवाय ।
झीणी मलमल ओढ़िया बहू बलबा को जाय ॥
सुत री खग अलगी पड़ी धड़ पड़ियो जिणू वेन ॥
बहुरे हथ बलता थको नह पड़ियो नारेल ॥
—डिंगल साहित्य में नारी, पृ० ७७

४. पाछा फिरि मत झाँकियो पग मत दी ज्यो टार ।
कट भल जाज्यो खेत में, पर मत आज्यो हार ॥

जगनिक के आल्हखण्ड (सं० १२३०) से भी तत्कालीन नारियों की ऐसी ही मूर्ति प्रत्यक्ष होती है ।

भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजतु वय सिंह जब भागा घर एवंतु॥
—हेमचन्द्र संकलित दूहा

इस अभिलाषा में कितना बलिदान, कितना त्याग और कितना स्वदेशानुराग भरा है।

नारियों के वस्त्राभूषण

तत्कालीन सुहागिन नारियाँ, विशेष कर राजस्थान में कुहनी तक की आस्तीनों वाली कंचुकी तथा कुरतियाँ पहनती थीं। पूरी आस्तीनों वाली कुरतियाँ पहनने से विधवा स्त्रियों का बोध होता था[1] घाघर और लूगड़ा सामान्य वस्त्र थे।

आभूषणों में वलय तथा हाथी दाँत की चूड़ियों की प्रमुखता थी। हाथी दांत की ये मोटी चूड़ियाँ कलाई से कुहनी तक तथा उससे भी ऊपर तक पहनी जाती थीं इन्हें चूड़ा कहा जाता है। यह सधवा स्त्रियों का सुहाग चिन्ह समझा जाता था।[2] शीश पर शीशफूल अर्थात् 'बोरड़ा,' गले में हार, कमर में 'तगड़ी,' पैरों में जौंझर और पादांगुलियों में 'बिछुए' नामक आभूषणों का प्रचार था। इनकी परिपाटी अभी तक राजस्थान में विद्यमान है।

बहु विवाह और सपत्नी-ईर्ष्या :

भारतीय गौरव-सूर्य के अस्तंगामी होने के साथ ही नारीत्व की भावना वासनामयी होने लगी। जयदेव का 'गीतगोविन्द' तत्कालीन इस स्थिति का परिचायक है। विद्यापति आदि में भी यही वासना-प्रवृत्ति रही। फिर वीरगाथा काल में तो नारी का और अधिक सामाजिक पतन हुआ। उस काल में नारी हरण की एक वस्तु ही गई थी। न उसकी स्वतंत्र सत्ता थी, न कुछ गरिमा। एक ही राजा द्वारा अनेक रूपवती स्त्रियों के साथ बहु-विवाह प्रथा वीरगाथा काल में बराबर बनी रही। चित्र रेखा, पृथाकुमारी, इच्छिनी, शशिव्रता, संयोगिता तथा पद्मावती नाम की अनेक स्त्रियाँ पृथ्वीराज की रानियाँ थी। बीसल देव भी एक पत्नी के होते हुए अन्य विवाह करने के लिए निकल पड़ा था। इसी प्रकार सर्वत्र होता था। एक पत्नीव्रत का वो रामचन्द्र द्वारा स्थापित आदर्श कहीं देखने को भी नहीं मिलता था।

एक ही राजा की ये अनेक रानियाँ परस्पर ईर्ष्या द्वेष-संकुल रहती थीं, जनभाषा में कहें कि 'सौतियाडाह' रखती थीं। प्रत्येक पत्नी यही चाहती थी कि पति केवल उसी का होकर रहे, अन्य विवाह न करे। बीसलदेव रासो की नायिका राजमती तथा पृथ्वीराज की पत्नी

---

१. दरजण लंबी अंगियाँ, आणीजै अब मुझ।
तब टोटे मौजूँ दया, दूण सिवाई तूझ॥२२॥
—कविराजा सूर्यमल—'डिंगल में वीर रस' में उद्धृत

२. नीदाणो गिण टेकलौ, पुली न छेड़ी पीव
जाय पुजावौ पाव हो, चूड़ो धण चिरजीव॥१०
कंत भला घर आविया, पहरीजै यो बेस।
अब धण लाजी चूड़ियाँ भव दूजे भेटेस॥२१॥
कविराजा सूर्यमल—'डिंगल में वीर रस' में उद्धृत

पद्मावती के बारहमासो के रूप में कथित विरहोक्तियाँ इसकी पुष्टि करती हैं। कवयित्री हरिजी रानी चावड़ी जी ने अपने पति जोधपुर-नरेश के अनेक विवाह करने पर मंगल-गीतों की रचना करते हुए अपनी दमित अन्तर्वेदना को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया था।[1]

राजपूत राजा तुच्छातितुच्छ महत्वाकांक्षाओं के लिए तलवारें चलाने को सन्नद्ध रहते थे। यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी कि विवाह करने के लिए भी युद्ध का आश्रय लिया जाने लगा, और अब कन्याओ का विवाह उनकी अपनी इच्छा से स्वयंवरण द्वारा नहीं, वरन् शक्ति के दबाव से होने लगा। शक्तिशाली राजा अपने अन्तःपुर हरण की हुई स्त्रियों से भरने लगे। निसर्गतः ही अन्तःपुर का वातावरण विलासमय होने लगा, जिसमें वहाँ नियुक्त की हुई चारणियाँ भी अपने मान, रिझावन, विरह, मिलन आदि के गीतो से रंग भरने लगी। अनेक स्त्रियों की प्रेम-लतिकाओं का आधार केन्द्र एक ही पुरुष का कृपा-वृक्ष होने के कारण इस चारणी साहित्य में यह दिखायी देता है कि सभी रानियाँ नायक की प्रेमपात्री बनने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती हुई तत्प्राप्ति का पूर्ण प्रयास करती थी, जिसके क्रम मे आत्म-विह्वलता के साथ ही सपत्नी-स्पर्धा और ईर्ष्या भी पल्लवित होती थी। हँसते-हँसते जौहर की आग का प्रालिंगन करने वाली नारियाँ विरह से कातर-त्रस्त हुई काय-दुर्बल और आत्म-निर्बल दिखायी पड़ती थीं। चारणियों और भाटणियों के इस साहित्य में नारी को विरह-दिवस गिनती हुई प्रदर्शित किया गया है। दिन गिनते गिनते उनकी उँगलियों पर घाव हो गये है।[2]

इस प्रकार युद्ध काल की नारी में सबलता और दुर्बलता का अपूर्व मिश्रण हुआ है। एक ओर वह मान-मर्यादा पर वीरतापूर्वक सर्वस्व होम कर सकती है, तो दूसरी ओर, अपने पत्नी-बहुल पति के प्रेम की याचना करती हुई आँसू का संसार ही बनाती रहती है। एतद्युगीन नारी सौन्दर्य, सबलता और अबलता की साकार प्रतिमा बन गयी है।

नारियों के पर्वोत्सव :

पति के विजय-लाभ पर विजयोत्सव तथा प्रसन्नता के अन्य अनेक अवसरों पर पर्व मनाने की सुयोजनाएँ भी नारियों द्वारा सम्पन्न हुआ करती थी। ऐसे प्रसन्न समयों पर स्त्रियाँ

---

१. चाली मृगा नैणिया जी चम्पा व्याहियाँ।
उठे लाल तम्बडा तणियाँ ॥
पनी सुमरे सगरा साथी।
ज्यूँ माल्या रा मणियाँ ॥
रसीलोराज नींद मदमाती।
मुख समान रंग बणियाँ ॥
फेर बंधावण चालो सखी।
पिव केशरिया बणियाँ ॥
—श्री रामदेवीप्रसाद कृत 'महिला मृदु वाणी', में उद्धृत।

२. जे मह दिण्णा दिहेअड़ा, दइये पवसन्तेण। +
ताण गणन्तिय अंग लिउ जज्जा आउ नहेण ॥
यही भाव हमें मीरा तथा अन्य परवर्ती कवियों में भी मिलता है।

घरों में शुभाकांक्षा से चौक पूरती थीं, अपने वीर पति के चरण धोती थीं। देव-पूजा में सुपारी आदि शुभ वस्तुओं का प्रयोग होता था। मंगलगान से निनादित होता हुआ घर कलश एवं तोरण सुसज्जा से जगमगा उठता था। साथ ही अनेक प्रकार के वाद्य भी बजाये जाते थे।[1]

शृंगार-पर्वों में श्रावणी तीज का बड़ा महत्व था। पति-मिलन का यह सुखद पर्व प्रत्येक नारी के लिए असीम मंगलोल्लास का दिन होता था। इस समय का विरह अधिक कष्टदायी होता था।[2]

शकुन-विचार :

शकुन-विचार भी तत्कालीन नारियों के ध्यान का विशेष विषय होता था। छींक आना, बिल्ली का आगे आना या रास्ता काटना, साँप दिखाई देना आदि को नारियाँ अपशकुन समझती थीं।[3] इस अन्ध विश्वास की परिपाटी अब तक स्त्री समाज में स्थान किए हुये हैं।

अन्ध विश्वास :

सारी जनता की जन्मान्तरवाद में पूर्ण आस्था थी।[4] यही नहीं, स्वर्गलोक में वीर

---

१. माणिक मोती चउक पुराय
पाँव पखाल्या राव का। राजमती दई बीसल राव ॥
हुई सोपारी मनि हरख्यो छइ राव। बाजित्र बाजह नीसांणो घाव
गढ़ माँहि गूढ़ी ऊछली। घरि घरि मंगल तोरण च्यारि ॥
× × ×
परणवा चाल्यो बीसल राव। पंच सखी मिलि कलस बंधावि।
मोती का आपा किया। कुं कुं पाका पान ॥
अमलो समलो आरती। जाई वधेरई दियो मिलांण ॥
बीसल देव रासो, पृ० ८ और १२

२. वेगानी पधारो म्हारा आलीजा जी हो।
छोटी-सी नाजक धोण रा पीव ॥
ओ सावणियो उमंगरयो दे।
हरि जी ने ओढ़न दिखाती चीर।
इण ओसर मिलयो कद होसी।
लाडी जी री थां पर जीव ॥
छोटी-सी नाजक धण रा पीव ॥
—हरि जी राणी चावड़ी जी

३. चाल्यो छलो गोंणो नम्र मंझारि। आड़ी आवज्यो ईंण दार।
सौंड़ तड़कज्यो जीमउद अंग। सामही जोगणी काल भुयंग ॥
वाट फाटे मन्जारड़ी। सामही छींक हुवई कपाल।
आड़ी मुग्धी आवज्यों। गोरड़ी फाउ प्रीयं पाछो हो वाल।
बीसलदेव रासो पृ० ५६-६०

४. डॉ० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १४६

नारी अपने वीरगति प्राप्त पति से मिलने जाने के लिए सती होने को उत्सुक रहती थी। इसी प्रकार के अन्य अनेक विश्वास प्रचलित थे।

कवि परम्परा में शृंगार-चित्रण :

तत्कालीन राजाओं का विलास-जघन्यता की कोटि तक पहुँच गयी थी। उन्होंने अपना शौर्य विलास के लिए नियुक्त कर दिया था। वस्तुतः वह शौर्य नहीं शौर्य था, जिसके कारण वे नारियों का हरण करते थे और अपने अन्तःपुरों को स्त्रियों से भरते चले जाते थे। न स्त्री में स्वयं की और न उसके माता-पिता की ही इच्छा वर के चुनाव में चल सकती थी, वरन् जो शक्तिधर लड़की को लूट ले जाता, वही उससे विवाह का अधिकारी बन बैठता था। यह प्रथा केवल क्षत्रियों में ही थी, तथापि इस दृष्टि से तो गर्हित ही रही कि समाज और राज के व्यवस्थापकों में ही इससे अव्यवस्था फैल रही थी। उन राजाओं और वीरमन्यों की मनोवृत्ति का परिचय आल्हखण्ड की इस पंक्ति से मिल जाता है—

जाइ घर देखहिं सुघर महरिया।
ताइ घर परहिं बरोना जाय॥

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि काव्यों में शृंगार का संयोग पक्ष प्रचुर और प्रबल रहा। विप्रलंभ स्वल्प रहा और उसमें भी पूर्वराग का ही विधान विशेष रूप से रहा। पति-प्रवास जन्य वियोग भी यदि रहा तो उसी दशा में जब कि पति महोदय किसी नये संयोग-शृंगार का श्रीगणेश करने के लिए घर से निकल पड़े हों।

वीर गाथा काल के संयोग शृंगार वर्णन में सौन्दर्य-चित्रण की प्रमुखता है—ऐसे सौन्दर्य की जो केवल शारीरिक है और काम के उद्दीपन का हेतु मात्र है। यह सौन्दर्य-चित्रण कभी भी किसी मानसिक उठान तक नहीं ले जाता और न कभी किसी आध्यात्मिक सत्य की झाँकी ही दिखाता है। वयःसंधि वाले सौन्दर्य-अंकन भी इसके अपवाद नहीं हैं। मानना यही पड़ेगा कि इन कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि अति स्थूल थी और तत्कालीन समाज भी केवल युद्ध या विलास की दो सीमाओं के बीच में ही डगमगाता-झूलता रहता था।

पृथ्वीराज रासो में शशिव्रता की वय.संधि केवल शारीरिक नव-विकास में दिखायी दी विद्यापति की भाँति उसमें नवल भावों का उदय तनिक भी नहीं है।[1] इसी प्रकार पद्मावती

---

१. जल सैसव मुद्ध समान भयं रवि बाल बहिक्कम ते अथयं॥
वर सैसव जोबन सन्धिअतो। सुमिलें जनु बित्तह बाल जतो॥
जु रही लगि सैसव जुब्बनता। सुमनो ससि रंजन राजहिता॥
जु चलैं मुरि माल्ल अंकुरिता। सुमनो मुर बेस मुरी मुरिता॥
पत्त पुरात्तन झरिय पत्त अंकुरिय उट्ठ तुच्छ।
ज्यों सैसव उत्तरिवे चढ़िय, वैसह किसोर कुच्छ॥
सीतल मन्द सुगन्ध आइ रितुराज अथान।
रोम राइ संग कुच नितब बुद्ध सरसान॥
बढ्ढे नसीत कठि छीन है लज्जमान टंकनि फिरै।
ढंकै न पत्त ढकै कहे बन बसन्त मन्त जु करै॥ —पृथ्वीराज रासो

का रूप-लावण्य कुछ काव्य-समयों में बँधकर रह गया है,[१] इच्छिनी का रूप-सौन्दर्य उत्प्रेक्षा शैली पर[२] और संयोगिता का सुषमा-संभार उपमान शैली पर[३] कतिपय काव्य-प्रयुक्त तुलनाओं में सीमित-समाहित होकर रह गया है। 'राजमती' का सौन्दर्य भी इसी ढंग से अंकित है। क्या हुआ यदि कवि ने नयी उपमा देते हुए नायिका की उँगलियाँ मूँगफली-जैसी बता दीं या दो एक घुमती हुई अन्य उपमाएँ दे दीं।[४]

---

१. मनहु कला ससिभांन कला सोलह सोवन्निय।
बालवेस ससिमा समीप अंम्रित रस पिन्निय॥
विगसि कमल स्त्रिग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हरि कीर अरु बिंब मोतिनख सिख अहि घुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंसगति बिह बनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिया मनहुँ काम कामिनी रचिय॥
—पृथ्वीराज रासो

२. कुन्दन ओपित अंग भंग अनु चन्द किरनि सि।
बेनी सुभग भुजंग, फूल मनि सीस सीस धिर॥
पट्टिय घुंटित मैन तिमिर कज्जल छवि छयंनिय।
मुख जुग गोसा धनुख, वदन राका रुचि स्यंनिय॥
सुक नास नैन फूले कमल कुवु कंठ कोकिल कलक।
कुल्लह सुचित फंदन मनहु फंद मुडि रक्खिय अलक॥
नयननि कज्जल रेख निरख तिवखन छवि कारिये।
श्रवननि सहज कटाच्छ चित्त कर्षण णरणारिय॥
भुज मृनाल कर कमल उरज अर्बुज कालीय फल।
जंघ रंभ कटि स्यंघ गमन दुति हंसकरी छल॥
देव अरु जक्खि नागिनि नरिय गरहि गर्व दिक्खत नयन।
इंछिनी दिक्खि लज्जा सहज किंतिक सक्ति सक्खिय वयन॥
—पृथ्वीराज रासो

३. कुंजर उप्पर सिंघ सिंघ उप्पर दो पव्वय।
पव्वय उप्पर भृंग, भृंग उप्पर ससि सुम्भय॥
ससि उप्पर एक कीर, कीर उप्पर मृग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोवंड संघ कंद्रप्प वयट्ठौ॥
अहि मयूर महि उप्परह हीर सरस हेमन जरयो।
सुर भवन छंडि कवि चन्द कहि तिहि धोखै राजन परयो॥
—पृथ्वीराज रासो

४. क. ससि वदनी जीरयो मान गयंद। आपडीया रतनालियाँ॥
मोहरा जाणें भमर भगाय। मूँगफली सी आंगुली॥
बीसलदेव रासो पृ० ६६

पश्चात्कालीन 'क्रिसन रुक्मणी री बेल राठ प्रिथीराज री कही' (सं० १६३७) में भी रुक्मिणी का रूप वर्णन ऐसा ही है।[1] 'ढोला मारवणी चउपई' (स० १६०७) तथा उसके ढोलामारू रा दोहा' नामक अन्य रूपान्तरों मे भी उमादे के सौन्दर्य-चित्रण मे यही पद्धति अपनाई गई। कविराय के 'सुन्दर सिणगार' (स० १६८८) नायक काल शास्त्र निरूपक ग्रन्थ में भी सौन्दर्य-चित्रण की कोई विशेषता नही प्रदर्शित की गयी। यदि कहीं कुछ आगे बढ़े तो इतने ही कि पातिव्रत्य-भाव आदि भी अंकित कर दिये।[2]

इन सब सौन्दर्य-समूहों का एक मात्र लक्ष्य होता है—कामोद्दीपन, योगियों तक के मन को हर लेना।[3] मुग्धा नायिका चित्रण भी अपने लक्ष्य मे इससे अधिक नही जा सका।[4] समस्त ऋतु-वर्णनों का सार भी यही है। प्रकृति भी केवल काम को जगाने वाली है, संयोग में मिलन-स्फूर्ति भरती है, वियोग मे विरह की आकुल तृषा जगाती है।[5]

ख. कूबड़ की बेड़ी, सोयले जंजीर
जीवन राखो चोर ज्यूं। पगी पगी स्वामी लागू हु पाय॥
वही पृ० ८२

१. आरंभिक पद।

२. पृथ्वीराज-भगिनी पृथा कुमारी का गुण समन्वित सौन्दर्य-चित्रण—
मति मध्याश्रय वाम विनो प्रौढ़ा अधिकारी।
लच्छिओज सदज्ज रूप रति बरन सुसारी॥
धीरत्तन सियसार विरह मन्दोदरि दारी।
पतिवरता रुकमनी गिनी रुधनि अधिकारी॥
सा पृथीराज भगिनी प्रिथा देव जायसम जग्य किय।
आनन्द रूप आनन्द कथ सोम नन्द जस बर लिय॥
—पृथ्वीराज रासो

३. बेस्या वंछित भूप रूप मनसा, शृंगार हारावली।
सोयं सुरति लच्छिअच्छित गुन, बेली सुकामावली॥
का बर्नें कवि उक्ति जुक्ति भनयं त्रैलोक्ययं साधनं।
सोय बालति रत्त उप विद्रुम कामोद जोगेसर॥
रूप नंदि कटाच्छ कूल तरयौ भायं तरग बरं।
हावं भाव ति मीन ग्रासित पुनं सिद्ध मनं भंजनी॥
सोयं जोग तरंग रुव तिवर त्रैलोक्य न ता सम।
सोय साह सहावदीन ग्रहिय अनग क्रीड़ा रस॥
—चित्ररेखा का सौन्दर्य-पृथ्वीराज रासो

४. बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, क्रिसन रुक्मणी री बेल, पद १५६ से १७६

५. पृथ्वीराज रासो के विरहात्मक ऋतु वर्णन, बीसलदेव रासो के राजमती विरह के ऋतु वर्णन या बारहमासा क्रिसन रुकमणी री बेल, पद स० १८७ से २६८ तथा ढोला मारूरा दूहा आदि

संयोग-वर्णन रूप से विलासी राज-समाज की मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब है। इसमें रागा-नुरंजन और भाव विकास कम से कम, और रति-संग्राम का वर्णन अधिक से अधिक मिलता है। पृथ्वीराज रासो में[1] तथा अन्यत्र भी ऐसा ही है।

वियोग-चित्रण

पृथ्वीराज रासो के शृङ्गार रस में पूर्वराग का पर्याप्त सहयोग लिखा गया है। अनेक राज-कन्याएँ पृथ्वीराज के पराक्रम, वीरता, सुन्दरता आदि गुणों के कारण पृथ्वीराज के वरण की इच्छा संजोएँ हुए हैं और उसके प्रति आत्मसमर्पण का भाव भी रखती हैं।[2] इस प्रकार इस युग में बहु-पत्नित्व समाज में ही नहीं, अपितु ललनाओं के हृदय में आदरणीय स्थान रखता है। 'क्रिसन रुक्मणी री बेल प्रिथीराज री कही' आदि में भी पूर्वराग का सुन्दर अंकन हुआ है।

पति-प्रवास जन्य विरह के वर्णन ने पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो तथा ढोला मारू रा दूहा आदि में विस्तार पाया है, अन्य काव्यों में इसका अंकन हुआ है।[3] ऋतुओं ने इसे उद्दीप्त किया है। संयोग की सुखदायी प्रकृति इसमें मनस्तापकारी बन जाती है।[4] चिन्ता,

---

१. दिट्ठ दिट्ठ लग्गी समूह, उत्तकंठ सुभग्गिय।
निपलज्जानिय नयन मयन माया रस पग्गिय ॥
छल बल कल चहुआन वाल कुंअरप्पन भंजे।
दोष त्रीय मिट्टयो, उभय भारी मन रंजे ॥
चौहान हथ्थ बाला ग्रहिय, सो ओपम कविचन्द कहि।
मानो कि लता कंचन लहरि मत्त बीर गजराज गहि ॥

२. सुनत श्रवन प्रथिराज अस उमग बाल विधि अंग।
तन मन चित्त चहुवान पर वस्यो सुरत्तह रंग ॥
+ + +
विलपि अवास कवरि वदन मनौ राहु छाया सुरत।
झपति गविष्यि पल पल पुलकि विपत पथ दिल्ली सुपति ॥

३. देखिये—श्रीरामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास
श्री रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

४. वही रत्ति पावस्स वही मग्गवान धनुष्पं।
वही चपल चमकात वही वगपंत विरप्पं ॥
वही घटा घनघोर वही पपीह मोर सुर।
वही पृथी अवकास वही रवि ससि निसि वासुर ॥
सोई अवास जुगनिपुरह वोई सहचरि मंडलिय।
संजोगि पंपपति कंत विन मुहि न कछू लग्गत रलिय ॥

जड़ता, व्याधि,[1] शरीर का भुरना,[2] यहाँ तक कि मूर्च्छा[3] आदि दशाएँ विरहिणी को निरंतर अनुभूत होती हैं।

आश्चर्य होता है कि युद्ध की वह सिंहिनी कैसे प्रणय की ऐसी मृगी बन गयी थी, जिसे अनंग-व्याध का पुष्प-शर ही इतना बोध गया कि उसे स्वयं का ही ध्यान न रहा।[4] हृदय के मूल भावों का दमन कैसे हो सकता है!

संयोग—वियोग चित्रण की यह परम्परा आलोच्य काल मे चलती रही। यद्यपि भक्ति की सहज प्रवृत्ति और विचारधारा के कारण उसमें आध्यात्मिकता का सन्निवेश हो गया, आत्मनिवेदन की मात्रा बढ़ती गयी, और रूप-चित्रण भावानुभूति का साधन बन गया। उदाहरणार्थ, हम कह सकते हैं कि जगनिक (सं० १२३०) के आल्हखंड मे जो शृंगार युद्ध का हेतु और लक्ष्य बना था, वही भक्तिकाल में माधुर्य भक्ति का अंग बन गया, राधा, रुक्मिणी

---

१. सौ कोसां बिजली खिवे, जिण सू किसो सनेह।
मनरी तृष्णा जद मिटै, आगण वरसे मेह॥
—पृ० ८६ पर उद्धृत 'डिंगल साहित्य मे नारी'

अ. 'किसन रुकमणी री वेल राज प्रिथीराज री कही'—१५६ से १७६ तक

ब. 'ढोला मारवणी चउपही' तथा 'ढोला मारूरा दूहा' आदि मे

स. 'माधव काम कन्दला चउपई'

द. 'कुतुब सतक'

ई. 'जलाल गहाणी री बात'

२. अ. बइसती दाख बीजोरड़ी। इणि दुख झूरई अबूला बालि॥ पृ० ६५
ढावा हाथ को मूदड़उ। आवरण लागो जीवणी बाह॥ पृ० ७५
—वीसलदेव रासो

३. प्रथ पयान पोमिनि परधि, घटि साहस घटि एक।
मुकय केलि पियूष पिय, जतन करहि सखि केक॥
जतन करहि सखि केक, हाव करि जय जय जपहि।
रत कष्ट कर भिडि, धरकि धरहर जिय कंपहि॥
इह प्रयान तप करत, परी संजोगि धरा धपि।
सखी करत सब जतन, चलतं पयान तहा तप॥ —पृथ्वीराज रासो

४. बिलखि खवास कूँवरिवदन, मनो राहु छाया सुरत।
\+ \+ \+
संदेस सुनत आनंदनैन उमगीय बाल मनमथ्य सेन॥
—'डिंगल में वीर रस' पृ० १६, १७ पर उद्धृत,
\+ \+ \+
हरखी मोटे मोद बाधड़ी कंथ भरती,
बिछड़ा जे मत नेथ सपना सेण मिलती।
—पृ० ६१ डिंगल साहित्य में नारी

आदि की विह्वलता भक्ति की साधिका सिद्ध हुई। बीसलदेव रासो में विरह की जो करुण-कातर विवृति हुई थी, वह भक्तिकाल में दैन्य के आर्त्त स्वर में पर्यवसित होने लगी।

ऋतु वर्णन और नारी

डिंगल के रासो-साहित्य में प्रकृति का चित्रण स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ है। प्रकृति को शृंगार (संयोग और वियोग दोनों) की उद्दीपिका के रूप में ही अंकित किया गया है। बीसलदेव रासो में बारहमासे तथा षट्ऋतु वर्णन का विशेष महत्व है। ढोला मारवणी री चउपही, ढोला मारू रा दूहा, माधवानल प्रबन्ध दोग्धबन्धु, क्रिसन रुकमणी री वेल आदि में प्रकृति का यही रूप मिलता है। हम अब पृथ्वीराज रासो के आधार पर उद्दीपन-रूप प्रकृति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

पृथ्वीराज की प्रत्येक पत्नी एक-एक ऋतु का वर्णन कर और वियोग का प्राबल्य जता कर राजा को संयोगिता हरण के लिए जाने से रोकती है। आम्र मंजरियाँ, भ्रमरावलि, समीरण प्रवाह तथा कोकिल-काकली वसन्त ऋतु में,[1] वायु के प्रचण्ड झोंके, सूर्यातप आदि ग्रीष्म में,[2] घन गर्जन, सतत जल वर्षण, भेकों की कर्णभेदी ध्वनि, केकी की कूक, दामिनी की दमक तथा पपीहे की पी-पी पुकार पावस में,[3] मान सरोवर में मराल-विचरण, शशिकला-समुदय और मनसिज शर प्रणिपात शरद में,[4] निशि वासर शीत प्रकम्पन, और अनंग-तरंग-

---

१. मवरि अब फुल्लिय, कदंब रयनी दिघ दीसं।
भंवर भाव भुल्लें, भ्रमंत मकरंदय सीसं॥
वहत्त बातउज्जलति, मोर अति विरह अगनि किय।
कुहू कुहंत कल कंठ, पत्र राषण रति अग्यिय॥
पथ लग्गि प्रानपति बीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु।
दिनदिन अवद्धि जुब्बन घटै, कंत बसंत न गम करहु॥

२. षीन तरुनि तन तपै, बहै निस बात रयनि दिन।
दिसि चारयौ परजले, नहिं कहौं सीत आथ षिन॥
जल जलंत पीवत्, रुहिर निसि बासर घट्टे।
कठिन पंथ काया कलेस दिन रयनि संघट्टे॥
त्रिय लहै तत्त अष्पर कहै, गुनियन ग्रब्ब न मंडियै।
सुनि कंत सुमति संपति बिपति, ग्रीषम गेह न छंडियै॥

३. घन गरजै घर हरै पलक, निस रैन निघट्टै।
सजल सरोवर पिष्षि, वियौ ततच्छन घन फट्टै॥
जल बद्दल बरषंत, प्रेम पल्लहौ निरंतर॥
कोकिल सुर उच्चरै, अंग पहरंत पंच सर॥
दादुरह मोर दामिनि दसय, अरि चवस्य चातक रटय॥
पावस प्रवेस बालम न चलि, विरह अगिनि तन तप घटय॥

४. पिष्षि रयन ग्मिमिलिय, फूल फूलंत भ्रमर घर।
श्रवन सबद नहिं सुभै, हंस कुरलत मानसर॥

अभियान हेमन्त में,¹ फाग-क्रीड़ा, नर-नारियों की मदमत्त किलोलें और प्राणियों की अवल स्फूर्ति आदि शिशिर ऋतु में,¹ ये सब ऐसे प्रबल हेतु है जो शृंगार भाव की चरम उद्दीप्ति देकर अबलाओं के लिए पति-वियोग को परम असह्य बना देते है।

डिंगल की कवयित्रियाँ :

वीरता और शृंगार के इस युग में जैसे कवि थे, वैसी ही कवयित्रियाँ भी थी। कतिपय उल्लेखनीय कवयित्रियों के निम्नांकित परिचय से उनकी कविता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

झीमा चारणी—१५-१६ वी शताब्दियों का मध्यवर्ती भाग बीकानेर की यह चारणी संगीत और सौन्दर्य की कोमलता तथा कूटनीति और वीरता की पटुता से युगपत् संश्लिष्ट थी। उसकी वीरता की अनेक कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं, किन्तु उसकी रचनाएँ अपनी सखी उमादे और उसके पति कोटधीश अचलदास के प्रणाय शृंगार से ही सम्बद्ध हैं। उनमे है केवल विरह मनोबल, त्याग-विह्वलता और मिलन। वीर रस की रचनाएँ इसने नहीं की।

पदमा चारिणी—सं० १५४२ के लगभग

बीकानेर नरेश के अन्तःपुर में मनोविनोद कराना इसका कार्य था। किन्तु इसकी रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। एक संग्रह ग्रंथ में इसका एक गीत मिला है, जिसकी अनघड़ कथा यह प्रकट करती है कि पावासर-नरेश के, अकबर के एक सेनापति द्वारा वीर गति प्राप्त करने पर उसकी रानियाँ और रखैलाएँ सती हो गयी।

विरजू बाई—लगभग सं० १६८७

जोधपुर के चारण कविराज करनदोन की यह भगिनी किसी राजा के आश्रय में नहीं रही, किन्तु इन्होंने अपने भाई के समान ही राजाओं की प्रशंसा मे पद लिखे है।

कंवल कदव बिगसत, तिमहु हिमकर परजारे।
तुमहि चलत परदेस, नहीं कोइ सरन उवारे॥
निरहन रत्त भर पवसर, अरि अनंग अंगे चढ़े।
जौ कंत गवन सरदै कहै, तौ विरहिनि तिय ह्वे दढ़े।

१. छिन्नं बाबुर सीत दिव्य तिसया शीत जनेतं अने।
सैजं उज्जर बानया वनितया आनंग आलिंगनै॥
यो आला तरुनी वियोग पतन नलिनी हिमन्ते हिमं।
मा मुक्के हिमवंत मत गमने प्रयवा निरालम्बनं॥

२. आगम फाग अवंत, कत सुनि मित सनेही।
सीत अत तप तुच्छ, होइ आनन्द सब सेही॥
नर नारी दिन रैनि, मैन मदमाते डुल्लें।
सकुच न हिम छिन एक, बचन मनमाने बुल्लें।
सुनो कंत सुभ चित्त करि, रयनि गवन किम कीजइय।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, दिन ससिहर किम जीजिइय॥

नथी—(सं० १६७३ के लगभग) टैसीटरी ने इनकी एक हस्तलिखित पुस्तक का उल्लेख किया है, जिनमें अनेक चरण है, किन्तु अभी वह प्रति हमें प्राप्त नहीं हुई है।

राव योधा की सार वाली रानी—ने 'कृष्ण जी री वेली' में रुक्मिणी के सौन्दर्य का चित्रण किया है।

ठकुरानी काकरेची का काव्य प्राप्त नहीं है।

रानी चम्पा दे—(रचनाकाल सं० १६५० वि०) ये बीकानेर नरेश के लघुभ्राता पृथ्वीराज की द्वितीय पत्नी थीं, जिन्होंने अपने पति की भग्न हृदय वाटिका को चम्पक-सौरभ से सुवासित कर दिया। ये अपने पति के समान ही काव्य-रचना कुशल बतायी जाती हैं, जो कभी कभी काव्य-निर्माण में उनकी सहायता भी कर देती थीं। चपल, मुखर चम्पा सर्व प्रकारेण अपने पति की ग्लानि और श्रांति का अपाकरण करती रहती थीं।[1]

रानी रारधरी जी[2]—मारवाड़ के रारधरा प्रदेश के राणा की इस पुत्री का विवाह सिरोही के राव से हुआ था। इसकी राव साहब के साथ परस्पर अपने-अपने जन्म स्थलों के सौन्दर्य के संबन्ध में हुई काव्यात्मक नोक-झोंक डिंगल साहित्य में प्रसिद्ध है। इससे स्पष्ट है कि नारियाँ अपने पितृगृह की प्रतिष्ठा बनाये रखने का सदा प्रयत्न करती रहती हैं जैसा कि बीसलदेव रासो से भी प्रकट होता है।

हरि जी रानी चावड़ी जी—ये जोधपुर नरेश मानसिंह की पत्नी थीं। इनकी एक बात पर राजा 'मान' कर बैठे। इस पर इन्होंने विरह-वेदना की अभिव्यंजना की है। फिर राजा ने अन्य विवाह भी किये, जिन पर इन्होंने यद्यपि मङ्गल गीत गाये, तथापि उनमें इनकी हृदय की मूक व्यथा भी फूट पड़ी है। 'चलो फिर प्रिय के सिर पर केसरिया पाग बाँधें'—यह वाक्य श्रोताओं के हृदय में चुभता चला जाता है।[3]

सभ्यता के अरुणोदय से लेकर भक्तिकाल के ठीक पूर्व तक का निरन्तर विकासमान यह भारतीय नारी जीवन है। इस विवेचना से भक्तिकाल की नारी का तथा भक्तिकाल के साहित्यकारों और विचारकों का नारी जीवन-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट होने में पूर्ण सहायता मिलेगी, क्योंकि भक्तिकाल की नारी इस विकास का मूर्त रूप ही तो है। अब तक का यह प्रतिपादन भक्तिकालीन नारी-समाज की पूर्व-पीठिका है।

---

१. उन्होंने पृथ्वीराज से, जो अपने बालों की सफेदी देखकर खिन्न हो रहे थे, कहा था कि पुरुष तो पकने पर ही सरस होते हैं :—

प्यारी कहै पीथल सुनो धोला दिस मत जोय।
नरां नाहरा पानड़ा, पाकाँ ही रस होय॥
खेड़जु पक्का धोरियाँ, पंथज गड्डाँ पाव।
नरां तुरंगा वनफला, पक्का पक्का साव॥

२. द्रष्टव्य—विशेषतः मुंशी देवीप्रसाद जी कृत 'महिला मृदुवाणी'

३. पुनः देखिये, उद्धरण सं० ४२

चतुर्थ अध्याय

तत्कालीन मुस्लिम संस्कृति में नारी

तत्कालीन मुस्लिम संस्कृति में नारी का स्थान*

इस्लाम ग्रहण करने के पूर्व अरब निवासी स्त्री की भी परिगणना पितृ संपत्ति में करते थे, और पिता की मृत्यु पर पुत्र अपनी सौतेली माँ को पत्नी रूप में ग्रहण करने का अधिकारी होता था। सासों को भी पत्नी के रूप में रख लिया जाता था। इस्लाम ने ये प्रथाएँ बन्द कीं, बहु-पतित्व प्रथा समाप्त की, और पुरुष को पत्नी के भरण-पोषण के लिए उत्तरदायी ठहराया। अरब में बड़ी सरलता से पत्नी पति का परित्याग करके दूसरा पति कर सकती थी। एक स्त्री ने तो चालीस पति किये थे।† स्वयं या माता-पिता के निर्देशन में किसी भी किसी का भी पति रूप में वरण करते रहना, एक सामान्य प्रथा थी। इस्लाम ने इसे भी बन्द कर दिया। इससे यद्यपि स्त्रियों की स्वतंत्रता और विशेषाधिकार का हनन हुआ, तथापि स्त्रियों को जीविका की सुरक्षा प्राप्त हो गयी। इसके अतिरिक्त प्रचलित कन्या-हत्या भी बन्दी की गयी। इससे समाज में स्त्रियों की स्थिति ऊँची हुई।[1]

व्यभिचार-दण्ड—व्यभिचार को रोकने के लिए 'क़ुरान' में कठोर दण्ड-व्यवस्था है। लिखा है, 'परमेश्वर की व्यवस्था में उन दोनों [व्यभिचारी, व्यभिचारिणी] पर तुम दया मत करो। व्यभिचारी और व्यभिचारिणियों में से प्रत्येक को सौ बेंत मारो। और उनकी यातना विश्वासी लोग देखें।'[2] २४:१:२

अविवाहिता स्त्री से व्यभिचार करने पर उतना दण्ड नहीं है, जितना विवाहिता से करने पर है। विवाहिता का शील-भंग करने पर पत्थर मार-मार कर मार डालने का दण्ड निर्धारित किया है।[3]

व्यभिचारी को किसी व्यभिचारिणी से ही विवाह करने की आज्ञा है, इसी प्रकार व्यभिचारिणी का विवाह किसी व्यभिचारी से ही किया जायगा। किन्तु इस्लाम के श्रद्धालु इस दण्ड से मुक्त रहेंगे।[4]

---

* इसका विवेचन श्री राहुल सांकृत्यायन कृत 'इस्लाम धर्म की रूप रेखा' द्वितीय संस्करण, तथा श्री ए० एम० ए० शास्त्री (ईरानी भाषा के प्रोफेसर मैसूर यूनिवर्सिटी) कृत 'आउट लाइन्स ऑव इस्लामिक कल्चर' के आधार पर किया गया है।

† Outlines of Islamic Culture.

१. वही।

२. श्री राहुल कृत अनुवाद 'इस्लाम धर्म की रूपरेखा' पृष्ठ ११४, २४।१।२ और ४ श्री ए० एस० ए० शास्त्री

३. श्री शुस्त्रीकृत Outlines of Islamic Culture.

४. वही।

दासियों को इसी अपराध में इसका आधा दण्ड मिलना चाहिये । ४।४।३[१]

साध्वी की प्रशंसा—कुरान का वचन है 'ससार और उसके आनन्द अमूल्यवान है, किन्तु इनमे भी अधिक मूल्यवान एक नेक पत्नी है । निश्चय ही परमात्मा ने अपनी क्षमा और महनीय पुरस्कार सतोषी पुरुषों और आत्म-त्यागी नारियो के लिये बनाये है ।'[२]

पत्नी-धर्म :—गृहस्थी की देख भाल, रसोई का प्रबन्ध, अपने पति के लिए भोजन पकाना,पत्नी के दैनिक कर्तव्य है । इस्लामी विधि के अनुसार पति के अतिथियों के लिए भोजन पकाने के लिए पत्नी बाध्य नही है । आदर्श पत्नी सतोषी, विनीत, साफ-सुथरी और पति-परायण होती है । अपने लिए तथा बाल-बच्चो के लिए जीविका कमाना इसका नही, पति का कर्तव्य है ।[३]

विवाहने योग्य नारी—'तुम्हारी माता, बेटी, बहिन, फूफी मौसी, भाई की बेटी, बहिन की बेटी, दूध पिलाने वाली माँ, दूध की बहिन, सास, तुम्हारे द्वारा पोसी तुम्हारी स्त्रियो की बेटियाँ, बेटो की बहुएँ, दो बहिनें एक साथ—यह तुम्हे ब्याह के लिए निषिद्ध है ।'

नबी के विवाह योग्य स्त्रियो की भी इस धर्म-ग्रंथ में परिगणना कर दी गयी है । लिखा है 'हे प्रेरित, जिन पत्नियों का तूने स्त्री-धन दे दिया, जो तेरे दाहिने हाथ की संपत्ति हुईं, तेरे चचा, फूफी, मामा और मौसी की बेटियाँ, जिन्होने तेरे साथ प्रवास किया, तथा कोई भी मुसलमान स्त्री जिसने अपने को नबी (प्रेरित) के लिए अर्पण कर दिया, और नबी, तू उनके साथ ब्याह करना चाहे, यह सब तेरे लिये विहित हैं ।[४]

बहु विवाह

मुस्लिम संस्कृति में अनेक पत्नियाँ एक साथ रखना कोई दोष नही माना जाता । शर्त केवल यह रखी गयी है कि उस पुरुष को सब के भरण-पोषण में समर्थ होना चाहिये, तथा वह सब पत्नियों के प्रति पूर्णत. न्याय और समान व्यवहार कर सकें ।[५] 'तो यथेच्छ विवाह करो । दो दो तीन तीन, चार-चार, पुन. यदि भय हो कि इन्साफ नही कर सकोगे तो एक ही ।'[६] ४।१।३

स्वयं नबी ने अनेक विवाह किये थे । दाऊद के ९९ पत्नियाँ तो थी ही, १०० वाँ विवाह उसने एक स्त्री पर आसक्त होकर किया था । उसने उसके पति को लड़ाई पर भेज दिया, जहाँ वह मारा गया । तब दाऊद ने उसकी पत्नी से विवाह कर लिया ।[७]

मुस्लिम विजेताओं ने भी अपने इन आदर्श पूज्य जनो का सर्वत्र अनुकरण किया । जहाँ-जहाँ वे गये, युद्धों के बहाने स्त्रियो की लूट मचाई और नारी-अपहरण एक सर्वसामान्य

---

१. राहुल जी, पृष्ठ ११५, ४।४।३
२. और ७ श्री ए० एम० ए० मुस्त्री के अनुसार ।
३. श्री राहुल कृत अनुवाद—इस्लाम धर्म की रूप रेखा, पृष्ठ ११८
४. इस्लाम धर्म की रूपरेखा पृष्ठ ४०, ३३।६।६
५. श्री मुस्त्री कृत Outlines of Islamic culture
६. इस्लाम धर्म की रूपरेखा, पृष्ठ ११६, ४।१।३
७. वही, पृष्ठ ५५

कार्य बना लिया, जिससे कि वे धर्माज्ञा के अनुसार लूट में प्राप्त स्त्रियों से विवाह कर सकें। मुसलमानों की इस बहु-पत्नी प्रथा ने हिन्दुओं के एक पत्नीव्रत पर तीव्राघात किया।

विधवा विवाह —हमने देखा कि विवाह के लिए निषिद्ध स्त्रियों में :४:४:१: विधवा की गणना नहीं है। अरब में विधवा-विवाह पहले से प्रचलित था। मुहम्मद साहब ने इसे जारी रखा। स्वयं उनकी पत्नियों में एक को छोड़ कर सब विधवाएँ थीं।[१] दाऊद ने भी विधवा से विवाह किया था।[२] आरम्भ से अब तक मुसलमानों में विधवा विवाह धड़ल्ले से होते रहे हैं।

माता :

कुरान की यह सुन्दर उक्ति है कि 'स्वर्ग तुम्हारी माता के चरणों में स्थित है।'[३]

धाय :

दाया, जिसने दूध पिलाया हो, परिवार की एक सदस्या मानी जाय।[४] हम पहले देख चुके हैं कि धाय और उसकी पुत्री से विवाह करना निषिद्ध ठहराया गया है।[५]

दासी की स्थिति :—सच्चे मुसलमान वे हैं 'जो अपनी स्त्रियों और दाहिने हाथ की संपत्ति (दासियों) को छोड़ कर (अन्यत्र) अपनी काम चेष्टा को रोकते हैं।'[६]

:७०:१:२९, ३०:

इस प्रकार 'दासी या लौंडी को इस्लाम ने एक प्रकार की पत्नी ही माना है।[७] स्त्री जाति पर वस्तुतः यह एक नृशंस अत्याचार ही था कि पहले तो उन्हें अपने परिवार से वियुक्त करके छीन लिया जाय, और फिर बलात् उनको पत्नी बना डाला जाय। जो भी हो मुस्लिम संस्कृति में यह विधि द्वारा मान्य प्रथा थी।

स्त्रियों पर पुरुष का स्वत्व :—स्त्री-पुरुष-संबंध पर कुरान की निम्नांकित उपमाओं पर श्री राहुल जी[८] ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है :—

१. 'स्त्रियाँ तुम्हारा वस्त्र हैं, और तुम उनके।' :२:२३:५:

२. 'स्त्रियाँ तुम्हारी कृषि हैं।'

३. 'पुरुष स्त्रियों पर अधिष्ठाता है, इसलिए कि परमात्मा ने किसी को किसी पर बड़ाई दी।' :४:६:१:

इस प्रकार कुरान के अनुसार पुरुषों की, स्त्रियों पर अचल आधिपत्य की स्थापना कर

१. 'आउट लाइन्स ऑव इस्लामिक कल्चर'
२. 'इस्लाम धर्म की रूपरेखा' पृष्ठ ५५
३. थी सुरथी।
४. —वही।
५. कुरान शरीफ ४।४।१
६. इस्लाम धर्म की रूप रेखा, पृष्ठ १११
७. वही पृष्ठ
८. वही, पृष्ठ १२३

दी गयी है। यह स्थिति बड़ी निराशाजनक है। भक्तियुग में मुसलमान हो या हिन्दू सभी इसी विचारधारा के थे।

दाय भाग :

"बहुत से धर्मों में स्त्रियाँ दाय-भाग की अधिकारिणी नहीं समझी जाती। इस्लाम ने उनको उन्हे यदि अरब के उस व्यवहार से, जिसमें उन्हे दासो या विलास सामग्री से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था, निकाला, वही उन्हे दाय-भाग की भी अधिकारिणी बनाया। यद्यपि उनका यह अधिकार पुरुष के बराबर नहीं है, तो भी उस समय की अपेक्षा यही बहुत है।"[१]

स्त्रियो पर अत्याचार न करो :

कुरान के निम्नांकित वचनो से उसके स्त्री-समाज के प्रति उपकार-भाव की अभिव्यक्ति होती है :—

१. "रजस्वला होने के समय तुम स्त्रियो से दूर रहो, और उसके पास तब तक न जाओ, जब तक वह शुद्ध न हो जायें।"[२] (२:२८.१)

२. "हे विश्वासियो (मुसलमानो) यह न्याय नहीं कि तुम बलपूर्वक स्त्रियो को दाय-भाग मे लो, या जब तक उनका दुराचार साफ मालूम न हो जाय, तब तक अपना दिया ले लेने के लिए उन्हे बन्द कर रखो। स्त्रियो के साथ न्यायानुमोदित व्यवहार करो। फिर यदि वह तुम्हे प्रिय न हो, तो इसके लिए (क्या) हो सकता है—कोई वस्तु तुम्हे अच्छी न प्रतीत हो, जिसमें कि परमेश्वर ने बहुत सी भलाई दे रखी है।"[३] (४.३.५)

३. "यदि तुम एक स्त्री के स्थान पर दूसरी स्त्री बदलना चाहते हो, और उसको धन दे चुके हो, और उसमें से कुछ न लौटाओ। (ऐसा करके) क्या साफ अपराध और अपयश लेना चाहते हो ?"[४] (४:३.६)

पर्दा-प्रथा :

पहले अरब मे भी भारत की भाँति पर्दा-प्रथा नहीं थी। ग्रामीण नारियाँ तो पर्दा करती ही नहीं थी, नागरिकाएँ भी निधड़क पुरुषो के बीच आती-जाती रहती थी, सभा-सम्मेलनों मे अपनी रचनाएँ सुनाती थी, तथा कृषि तथा अन्य उद्योगो में वे अपने पति की सहकारिणी होती थी।[५] किन्तु इस्लाम के प्रचार ने अरब देश में स्त्री जाति की इस स्वाधीनता का अपहरण कर लिया। राहुलजी के मत से "इस्लाम में स्त्रियों के संबंध की एक और बात खटकती है, वह है पर्दे की जकड़-बन्दी। इसके द्वारा स्त्रियाँ घोर एकान्त कैद, में डाल दी जाती है, कूप-मण्डूक

---

१. इस्लाम धर्म की रूपरेखा, पृ० ११२
२. वही, पृ० १११
३. वही, पृ० ११७
४. वही, पृ० ११८
५. 'आउट लाइन्स ऑव् इस्लामिक कल्चर'

संतोष न कर उन्होंने स्त्रियों को सात संगीत पर्दे में बन्द कर रक्खा है। कुरान ने तो विशेष शृङ्गार आदि के न दिखाई देने के लिए कुछ विशेष अंगों को ढाँकने के लिए कहा, किन्तु यहाँ लोगों ने सारे बदन को ही ढाँकने पर बस न की, ऊपर से सात तालों के अन्दर भी उन्हें बन्द करना उचित समझा। यह केवल मुसलमान पुरुषों को ही बात नहीं, सच कहते हैं—'गुरु तो गुरु ही रह गये चेला चीनी हो गया।' हिन्दुओं के पुरुषों ने कभी सुना न होगा कि पर्दा प्रथा किस चिड़िया का नाम है। आज भी महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र, द्रविड़, मलाबार आदि आधे से अधिक भारतवर्ष के हिन्दू पर्दा को नहीं जानते। किन्तु जिस प्रकार आज अँग्रेजी राज्य में बहुत से हिन्दू, अँग्रेजों का खान पान, रहन-सहन गौरवपूर्ण समझ उनका अनुकरण करते हैं, वैसे ही कुछ तो स्त्रियों की रक्षा के लिए और कुछ गौरव समझ हिन्दुओं ने मुसलमानों की इस रीति को अपनाकर उसमें और तरक्की की। पहिले पहल इन रीतियों को धनिकों और बड़े आदमी कहे जाने वाले लोगों ने लिया, पीछे बड़े आदमी बनने की इच्छा वाले सभी लोगों ने अपनी स्त्रियों पर इस नये दण्ड-विधान का प्रयोग आरम्भ किया। शरीर में कोमलता की वृद्धि के लिए राजदाराओं को 'असूर्यम्पश्या' तो देखा गया है, किन्तु 'अचन्द्रपश्या' होने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है।''[1]

मुतअ और तलाक—मुसलमानों के एक भाग 'शिया' सम्प्रदाय में मुतअ अर्थात् सावधिक स्त्री-पुरुष-संबंध की प्रथा है। इसके अनुसार स्त्री-पुरुष इच्छानुकूल दो चार दिन या अधिक समय के लिए पति-पत्नी संबंध स्थापित करके पुन. अलग हो जाते है। पति-पत्नी का संबंध-विच्छेद तो समस्त मुसलमान सम्प्रदाय मे प्रचलित है। भक्ति काल को भारतीय नारियों ने ये दोनों प्रथाएँ कभी स्वीकार नहीं की।

---

१. दसनाम धर्म की रूपरेखा पृ० १२३